CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

10.2

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

ublic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-M

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बाबूराम त्रिपाठी

कुमारसम्भवम्

प्रथमः सर्गः

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कुमारसम्भवम्

[प्रथमः सर्गः]

BANSNARAYON SARMA

B. A I

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-C

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

महाकवि कालिदासकृतम्

कुमारसम्भवम्

[प्रथमः सर्गः]

सम्पादक

डॉ० बाबूराम त्रिपाठी

शास्त्री, एम०ए० (हिन्दी, सस्कृत), पी-एच० डी०

संस्कृत विभागाध्यक्ष (नि०)

सेण्ट जॉन्स कॉलिज, आगरा

एव

डॉ० इन्द्रा रानी गुप्ता

एम०ए०, पी-एच०डी०

अध्यक्षा, संस्कृत विभाग

दाऊदयाल महिला महाविद्यालय

फीरोजाबाद (आगरा)

महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

प्रकाशक :

महालक्ष्मी प्रकाशन

पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता

शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा–२८२ ००२

दूरभाष : ६५४१५

बिक्री केन्द्र : कंचन मार्केट (फर्स्ट फ्लोर)

हॉस्पीटल रोड, आगरा–२८२ ००३

© प्रकाशक

मूल्य : दस रुपये मात्र

मुद्रक :

जय प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दो शब्द

प्राय: सभी काव्य रस मर्मज्ञ सुधियों को यह तो सुविदित ही है कि ाव्य के क्षेत्र में और विशेषत: सरस रसाभिव्यक्ति एवं प्रासादिकता ी दृष्टि से महाकवि कालिदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इनकी रचनाओं पर व तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है, और लिखा भी जा रहा है। पर इस वि के काव्य की गहराई और मधुरिमा तक पहुँचने के लिये अब भी और धिक लिखने की आवश्यकता बनी हुई है। इनकी कृति 'कुमारसम्भव हाकाव्य' पर श्री मल्लिनाथ के अतिरिक्त अन्य भी विशदीकृत व्याख्यायें पलब्ध होती हैं, पर इनमें कई व्याख्याएँ अतिविस्तृत हैं और कई अति- ंक्षिप्त तथा क्लिष्ट हैं। इन विद्वान् व्याख्याकारों का ध्यान परीक्षार्थी की ुविधा एवं सुगमता पर उतना नहीं रहा है जितना कि अपेक्षित था। आज ा, संस्कृत के अध्ययन का जितना जैसा स्तर है उसी को लक्ष्य में रखकर ये याख्यायें नहीं की गई हैं, कहीं तो इनमें परीक्षा की दृष्टि से अनावश्यक अतिविस्तार है और कहीं अति संक्षिप्तता, कहीं परीक्षा में प्रष्टव्य अनुवाद े स्थान पर केवल श्लोकों का भावार्थ मात्र ही लिखा गया है, और उसके टिप्पणी भाग को अति विस्तृत करते हुए क्वचित् दो-दो पृष्ठों तक घसीटा गया है। एक व्याख्याकार ने तो प्रत्येक श्लोक के प्राय: प्रत्येक शब्द की व्याकरणात्मक ससूत्र शब्द सिद्धि ही लिख डाली है और इस प्रकार व्याख्या को अनावश्यक रूप से विस्तृत किया है। पर आज के परीक्षार्थी के लिये ऐसी अति विस्तृत अथवा अति संक्षिप्त व्याख्याओं से कितना लाभ हो सकता है। वस्तुत: छात्रों के लिये लिखी गई पुस्तकों को उनके आज के ज्ञान के स्तर के ही अनुकूल होना चाहिये जिससे कि वे लाभान्वित हो सकें और अपना उद्देश्य पूरा कर सकें।

सरलता एवं परीक्षार्थियों की उपयोगिता की दृष्टि से, डा० इन्द्रारानी गुप्ता द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक का टीका भाग विशेष रूप से उपयोगी प्रतीति होता है, क्योंकि इसमें प्रत्येक श्लोक का सन्दर्भ, अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ और विशेष अर्थात् काव्य सम्बन्धी वैशिष्ट्य छन्द अलंकार आदि का निर्देश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कर, समास विग्रह, संस्कृत व्याख्या और संस्कृत सरलार्थ के वाद टिप्प भाग में व्याकरणात्मक शब्द विवेचन आदि सामग्री प्रस्तुत की गई है। इ प्रकार इसमे परीक्षार्थी के लिये आवश्यक प्रत्येक बात को स्पष्ट एवं स भाषा में विभिन्न शीर्षकों में रखकर समझाया गया है। अतः मेरी दृष्टि यह व्याख्या परीक्षार्थियों के लिये विशेष लाभदायिनी सिद्ध होगी।

पुस्तक के आरम्भ में संस्कृत महाकाव्य का लक्षण, महाकाव्यों में कुमा सम्भव का वैशिष्ट्य, कालिदास का स्थिति काल, जन्म स्थान तथा उन जीवन वृत्त आदि पर विचार करते हुए उनके प्रकृति चित्रण, अलंकार योजन भ व, रस, भाषा और शैली आदि पर भी समीक्षात्मक रीति से विच किया गया है, कालिदास के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों के साथ कालिद के कवित्व की तुलनात्मक समीक्षा भी की गई है, और विशेष रूप से भार के साथ उनके काव्य की तुलनात्मक समालोचना प्रस्तुत की गई है, अ पुस्तक अपने में पूर्ण है। छात्र इससे लाभान्वित हो सकेंगे ऐसी आशा है।

—बाबूराम त्रिपा

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	१—६४
१. संस्कृत काव्य	१
२. महाकाव्य का लक्षण	१
३. रचयिता	३
४. कालिदास का स्थितिकाल	३
५. जन्म स्थान	११
६. जीवन चरित्र	१४
७. जीवन दर्शन	१७
८. कुमारसम्भव की कथावस्तु का स्त्रोत	२०
९. कुमारसम्भव महाकाव्य की कथावस्तु	२०
१०. कालिदास का काव्य सौष्ठव	२७
११. कुमारसम्भव का आदर्श काव्य	३०
१२. रसाभिव्यक्ति	३१
१३. काव्य शैली	३५
१४. अलंकार योजना	३६
१५. प्रकृति चित्रण	४१
१६. सौन्दर्य एवं प्रेम चित्रण	४८
१७. छन्दः योजना	५१
१८. अन्य विशेषतायें	५२
१९. कालिदास के पूर्ववर्ती कवि	५३
२०. कालिदासोत्तर कालीन काव्य	५६
२१. प्रस्तुत सर्ग का विषय और वैशिष्ट्य	५९
२२. कालिदास और भारवि	६३
प्रथम सर्ग (मूल पाठ)	१—१३०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भूमिका

संस्कृत काव्य

संस्कृत काव्य साहित्य द्विधा विभक्त है—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक आते हैं। क्योंकि नाटक रंगमंच पर अभिनीत होते हैं, अतः वे जनता द्वारा दृश्य होते हैं। इसके विपरीत श्रव्य काव्य अभिनीत नहीं होते हैं। वे केवल पठनीय और श्रवणीय ही होते हैं। दृश्य काव्यों में पद्य और गद्य दोनों का ही प्रयोग होता है, पर श्रव्य काव्य में या तो केवल पद्य ही रहते हैं, या केवल गद्य ही। पर श्रव्य काव्यों की एक विधा और भी है, जिसमें गद्य और पद्य दोनों का ही मिश्रण रहता है। फिर भी वह दृश्य काव्य नहीं कहा जा सकता, यह भी अन्य श्रव्य काव्यों की भाँति पठनीय और श्रवणीय ही होता है इसे चम्पू काव्य कहा जाता है। इस प्रकार श्रव्य काव्य तीन प्रकार के होते हैं—

(१) पद्य काव्य
(२) गद्य काव्य, और
(३) चम्पू काव्य।

इस पद्य काव्य के भी तीन उपभेद हैं—

महाकाव्य, खण्ड काव्य और मुक्तक काव्य।

इसी प्रकार गद्य काव्य के भी दो उपभेद है—

कथा और आख्यायिका।

प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थ—कुमारसम्भव महाकाव्यम्—पद्य काव्य है और निम्नलिखित महाकाव्य के लक्षण के अनुसार यह एक महाकाव्य है।

महाकाव्य का लक्षण

आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंश्यः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।
एकवंशभवा भूपाः कुशला बहवोऽपि वा ।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
संध्यासूर्येन्दु रजनीप्रदोष ध्वान्त वासराः ।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवन सागराः ।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।   इत्यादि

उपर्युक्त महाकाव्य के लक्षण से मिलता-जुलता महाकाव्य का लक्षण आचार्य दण्डी के काव्यादर्श में भी मिलता है। सम्भव है कि इस महाकाव्य के लक्षण में जितनी बातें बतायी गयी हैं वे सभी अविकल रूप से कुमारसम्भव महाकाव्य में नहीं पायी जाती हों और होना अनिवार्य भी नहीं है, तथापि कुमारसम्भव महाकाव्य में इस लक्षण में परिगणित अधिकांश बातें देखी जाती हैं; यथा—

यह महाकाव्य १७ सर्गों में आबद्ध है, इन सभी सर्गों का परिमाण न तो अधिक विस्तृत है और न अति लघु ही है। देवरूप एक ही धीरोदात्तगुणान्वित नायक है, जो कि कुलीन विजिगीषु और विजेता है। वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण भी है। इसका अंगीरस वीररस है। शृंगार आदि अन्य रस इसके अंग हैं। सभी काव्य गुणों एवं अलंकारों का यथास्थान रसानुकूल प्रयोग है। चतुर्वर्ग के प्रथम वर्ग-धर्म का इसमें प्राधान्य है। क्योंकि तारकासुर का वध देव कार्य है। तारकासुर का वधोपाय और उसका वध इस महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु है जो कि शिवपुराण से ली गयी है और कवि के द्वारा

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत की गयी है। इस महाकाव्य के कथानक के अन्तर्गत प्रसंगानुकूल नदी, पर्वत, ऋतु, विहार, विवाह, रतोत्सव, पुत्रोत्सव, मन्त्र, यात्रा, युद्ध, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रातः, सन्ध्या, वन, समुद्रादि का भी वर्णन है। मुनि, तप, यज्ञ, मृगया आदि को भी प्रसंगतः स्थान दिया गया है। सम्भोग एवं विप्रलम्भ का भी वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग है और सर्गान्त में छन्द परिवर्तित भी कर दिया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत भी है। इसी प्रकार लक्षण में बतायी गयी अन्य बातें भी इसमें पायी जाती हैं। अर्थात् उपर्युक्त लक्षण के अनुसार यह एक सुन्दर प्रामाणिक महाकाव्य है। संस्कृत महाकाव्यों में लघुत्रयी के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों में यह एक श्रेष्ठ रचना है।

रचयिता

कुमारसम्भव महाकाव्य के रचयिता विश्व प्रसिद्ध कविकुल-गुरु महाकवि कालिदास हैं। कालिदास द्वारा रचित लगभग तीस ग्रन्थ बताये जाते हैं, पर ये छह ग्रन्थ ही कालिदास द्वारा रचित माने जाते हैं। शेष कृतियाँ परवर्ती कवियों की ही हो सकती हैं। कालिदास के दो महाकाव्य हैं—कुमारसम्भव एवं रघुवंश महाकाव्य। मेघदूत एक खण्ड काव्य है। इसे सन्देश काव्य या दूत काव्य भी कहा जा सकता है। 'ऋतुसंहार' इनका निबन्धात्मक गीतिकाव्य है। नाटकों में इनका विश्वविख्यात नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् है, इसके अतिरिक्त विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् ये दो नाटक भी प्रसिद्ध हैं।

कालिदास का स्थितिकाल

संस्कृत साहित्य के बाण, भवभूति, राजशेखर, बिल्हण आदि ही कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होने अपनी रचनाओं में अपना कुछ परिचय दिया है, पर शेष कवियों के विषय में हमारी जानकारी बहुत ही सीमित है, और तो क्या, जिस महाकवि की, समस्त प्राचीन और अर्वाचीन, देशी व विदेशी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और जिसे कवि कुलगुरु की उपाधि से विभूषित किया है उन महाकवि कालिदास के स्थिति काल, वंश, स्वभाव, चरित्र एवं जन्म स्थान आदि के विषय में भी हमें आज विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। निःस्पृह कवि ने अपनी रचनाओं में कहीं भी अपना परिचय नहीं दिया है, अपना तो क्या, अपने आश्रयदाता के लिए भी केवल एक दो स्थलों पर संकेत मात्र ही किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ऐसी स्थिति में विश्वसनीय सामग्री के अभाव में उक्त महाकवि स्थितिकाल के विषय में विभिन्न विद्वानों के अनेक मतमतान्तर चल पड़े जिनमें किसी एक पर पूर्णतया विश्वास कर किसी निश्चय पर नहीं पहुँ जा सकता है। इन मतमतान्तरों में जनश्रुतियों का भी बड़ा हाथ है, पर सब ऐतिहासिक तथ्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। प्रामाणिक साम के अभाव में कुछ विद्वानों ने तो अपनी रुचि एवं कल्पना से काम लेकर क के स्थिति काल के निर्णय को और भी उलझन में डाल दिया है, उदाहरण १६वीं शती के वल्लाल कवि ने अपने भोज प्रवन्ध में विभिन्न कालों होने वाले कवियों को जिनमें एक कालिदास भी हैं, महाराजा भोज (११ शताब्दी) के दरबार में एकत्रित कर दिया है। इस प्रकार कालिदास स्थितिकाल विवादग्रस्त प्रश्न बन गया है, पर कालिदास के स्थितिकाल पूर्वोत्तर सीमाओं के विषय में प्रायः एकमत देखा जाता है। इनकी सीमा ईसा के लगभग १५० वर्ष पूर्व निर्धारित की गयी है, क्योंकि य समय, कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक प्रथम नाटक के नाय पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र का है, अतः कालिदास का समय इससे पूर्व नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त 'ऐहोल' के शिलालेख में (३६४ ई कालिदास और भारवि का नामतः उल्लेख है तथा सम्राट् हर्षवर्धन (६० ६४७ ई०) के आश्रित कवि वाणभट्ट के हर्षचरित की प्रस्तावना में कालिदा का स्पष्ट नामोल्लेख पाया जाता है, अतः ७वीं शताब्दी के बाद कालिदा का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार कालिदास का सम १०५ ई० पू० से लेकर ६४७ ई० के बीच ही माना जा सकता है।

इतने लम्बे समय के बीच कालिदास किस शताब्दी में हुए इस सम्ब में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी

'मालविकाग्निमित्रम्' के भरत वाक्य में प्रयुक्त 'अग्निमित्र' पद से शु वंशीय राजा अग्निमित्र का अनुमान कर विद्वानों ने कालिदास को अग्निमि (१५० ई० पू०) का आश्रित कवि माना है। अग्निमित्र विदिशा के राजा जिसका भव्य वर्णन कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में किया है। अतः कालिदा का स्थितिकाल १५० ई० पू० ही मानना उचित है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(१) पर यह कथन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, क्योंकि मालविकाग्निमित्रम् के भरतवाक्य में कालिदास ने किसी पूर्वकालीन नाटक की पद्धति पर अग्निमित्र का नामोल्लेख मात्र किया है, इससे अग्निमित्र और कालिदास का समसायिक होना प्रमाणित नहीं होता, इनके शेष दो नाटकों के भरतवाक्य की पद्धति इससे भिन्न है।

(२) आख्यायिकाओं के आधार पर कालिदास किसी विक्रमादित्य नामधारी राजा के आश्रित कवि थे पर अग्निमित्र को विक्रमादित्य किसी ने भी नहीं माना है।

(३) मेघदूत का विदिशा वर्णन अग्निमित्र कालीन विदिशा की अपेक्षा गुप्त कालीन विदिशा पर ही अधिक घटता है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी

प्राचीन पण्डित परम्परा तथा कुछ आधुनिक विद्वानों की भी यह मान्यता है कि कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के राजा विक्रमादित्य के आश्रित कवि थे; क्योंकि—

(१) जनश्रुतियों की ऐसी मान्यता है।

(२) कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक का नामकरण तथा उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र 'विक्रम' शब्द का सहेतुक प्रयोग भी यही ध्वनित करता है।

(३) आज प्रचलित विक्रम संवत् इसी प्रथम शताब्दी के विक्रमादित्य द्वारा अपने नाम से चलाया गया है।

(४) 'गाथा सप्तशती' 'कथासारित् सागर' में विक्रमादित्य की वीरता उदारता एवं दानशीलता का वर्णन है। इन ग्रन्थों के रचनाकाल की दृष्टि से विक्रमादित्य की स्थिति ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही ज्ञात होती है।

(५) रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर वर्णित 'पाण्डय' राजा प्रथम शताब्दी में ही हुआ है। यह इतिहास प्रसिद्ध राजा था। इसकी राजधानी प्रथम शताब्दी में दक्षिण में उरगपुर में थी।

(६) महाकवि अश्वघोष का स्थिति काल ईसा की प्रथम शताब्दी में ऐतिहासिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। इन अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तथा सौन्दरानन्द काव्यों में कालिदास के 'रघुवंश' एवं 'कुमार सम्भव' कई प्रसंगों, कल्पनाओं एवं शब्दोक्तियों का अपहरण किया है, अतः अश्वघोष पूर्ववर्ती कालिदास अवश्य प्रथम शताब्दी में रहे होंगे।

(७) प्रथम शताब्दी में कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना चुकी थी, क्योंकि भीटा के मृण्मय पदक पर इसके प्रथमाङ्क का एक चित्र अंकि है। यह पदक शुंगकाल का है।

(८) कथासरित् सागर के अनुसार विक्रमादित्य उज्जयिनी नरेश महेन्द्र दित्य के पुत्र थे जिन्होंने शकों को परास्त कर वैदिक धर्म की स्थापना की यह शैव थे और उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर के निर्माता थे। इनके राज्यत्व काल में कालिदास का होना जनश्रुतियों से भी प्रमाणित होता है कालिदास ने अपनी रचनाओं में इन्द्र के पर्याय के रूप में 'महेन्द्र' शब्द का क बार प्रयोग किया है।

(९) कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शिव के प्रति विशेष आस्था प्रकट है, अतएव वे गुप्तवंशी वैष्णव राजाओं की अपेक्षा शैवराजाओं के ही आश्रि अधिक प्रतीत होते हैं।

(१०) गुप्त राजा पाटिलपुत्र के अधीश्वर थे, जबकि कालिदास के आश्र दाता उज्जयिनी के सम्राट थे अतः कालिदास का समय प्रथम शताब्दी मानना उचित है।

(११) महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य सूर्यवंशी राजा थे अतः रघुवंश कवि ने सूर्यवंशी राजाओं को अपना चरितनायक बनाया है।

(१२) रघुवंश के दिलीप और रघु के वर्शन में महेन्द्रादित्य और विक्रम दित्य के वर्णन में पर्याप्त साम्य है।

पर ये सभी मान्यताएँ विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि इनमें से कुछ इतिहास विरुद्ध हैं और कुछ स्वतः अप्रामाणिक हैं; क्योंकि—

(१) कालिदास विषयक सभी जनश्रुतियाँ इतिहास विरुद्ध होने अप्रामाणिक हैं।

(२) प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा का होना इतिहास अब तक प्रमाणित नहीं हो सका है अर्थात् प्रथम शताब्दी में इस नाम का को

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

राजा ही न था, जिसके आश्रय में कालिदास को माना जा सके। इनके ग्रन्थों में प्रयुक्त 'विक्रम' शब्द यदि साधारण अर्थ से भिन्न किसी विक्रमादित्य को ध्वनित करता है तो वह विक्रमादित्य उपाधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए ही प्रयुक्त हुआ होगा।

(३) विक्रम संवत् प्रथम शताब्दी के तथाकथित विक्रमादित्य द्वारा अपने नाम से यदि चलाया गया होता तो तभी से उसका नाम विक्रम संवत् पड़ता, पर छठी या सातवीं शताब्दी तक जिस संवत् का शिलालेखादि पर उल्लेख हुआ है वह तो मालव संवत् है, विक्रम संवत् नहीं, चन्द्रगुप्त द्वितीय की वीरता से प्रभावित होकर ही लोगों ने मालव के स्थान पर विक्रम कहना आरम्भ किया है क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय की विक्रमादित्य उपाधि थी। फलतः तभी से इसे विक्रम संवत् कहा जाने लगा है। मालव इतिहास प्रसिद्ध एक आयुधजीवी संघ था। अतः सिद्ध है कि प्रथम शताब्दी में न तो विक्रमादित्य नाम का कोई राजा ही था और न उसने यह विक्रम संवत् ही चलाया था।

(४) जिस गाथा सप्तशती में विक्रमादित्य के पराक्रम, दानशीलता आदि का वर्णन है वह किसी एक कवि की एक समय की रचना नहीं है क्योंकि उसमें पंचम तथा अष्टम शतक तक के राजाओं का भी वर्णन है अतः वर्तमान गाथा सप्तशती प्रथम शतक की रचना नहीं हो सकती। इसमें जो विक्रमादित्य का वर्णन है वह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लिए ही समझना चाहिए।

कथासरित् सागर 'वृहत् कथा' का संस्कृत रूपान्तर है। यह भी प्रथम शतक की रचना नहीं है। इसमें वर्णित विक्रमादित्य प्रथम शताब्दी का राजा नहीं है। कथासरित सागर की रचना ११वीं शताब्दी की है, इसका मूल रूप 'वृहत्कथा' प्रथम शताब्दी की रचना है। अतः लगभग एक हजार वर्ष के लम्बे समय में इसमें न जाने कितने परिवर्तन हुए होंगे अतः इसके आधार पर कोई कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

(५) इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर वर्णित पाण्ड्य आदि राजाओं के वर्णन से कवि का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि कवि द्वारा वर्णित सभी राजा उसके समकालीन नहीं हो सकते, यदि ऐसा होता तब तो दमयन्ती स्वयंवर के सभी राजा श्री हर्ष के समय में होने चाहिए थे। पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वस्तुतः ऐसा नहीं है और न ऐसा होता ही है। कवि दृष्ट अदृष्ट सभी का प्रायः काल्पनिक एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करता है, इस दृष्टि से इस आधार पर कालिदास को प्रथम शताब्दी का नहीं माना जा सकता है।

पाण्ड्य राजाओं की राजधानी तृतीय शतक में उरगपुर नहीं, मदुरा थी। अतः यह भी कोई इतिहास सिद्ध पुष्ट प्रमाण नहीं है।

(६) कालिदास और अश्वघोष में कौन पूर्ववती और कौन परवर्ती था यद्यपि इसका निर्णय उनके काव्यों के प्रसंग-साम्य या भाव-साम्य आदि से नहीं किया जा सकता तथापि कालिदास ने जो अपने प्रथम काव्य 'ऋतुसंहार' में 'प्रागेव' शब्द का 'किमुत' अर्थ में प्रयोग किया है, वह कालिदास को अश्वघोष से परवर्ती सिद्ध करने के लिए अकाट्य प्रमाण है, क्योंकि अश्वघोष ने अपने काव्यों में इसका प्रयोग किमुत के अर्थ में किया है। कालिदास ने इसे वहीं से लेकर केवल ऋतुसंहार में ही इसका इस अर्थ में प्रयोग किया है, बाद में जब उन्हें पता चला कि प्रागेव का अर्थ किमुत किसी भी कोष में नहीं है तब अपने अन्य ग्रन्थों में इसे छोड़ दिया है। दूसरी बात यह भी है कि अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास की पदावली में अधिक लालित्य है जो कि कालिदास को परवर्ती सिद्ध करने का अच्छा प्रमाण है।

(७) भीटा का मृण्मय पदक शुंगकालीन ही है, यह बात अब तक निश्चित नहीं की जा सकी है अतः इसके आधार पर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

(८) कालिदास शैव अवश्य थे और गुप्त नरेश वैष्णव थे पर उस समय शैव और वैष्णवों में कोई विरोध न था। जब जो जिसको चाहता था स्वीकार कर लेता था। दोनों ही मत हिन्दू धर्म के अंग थे। इस बात के अनेक प्रमाण इतिहास में उपलब्ध होते हैं।

(९) विक्रमादित्य उपाधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ३३५ ई० के लगभग शकों को मार कर उनके राज्य को अपने राज्य में मिलाकर उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया था यह बात तत्कालीन शिलालेखों, सिक्कों तथा इतिहास से पुष्ट है अतः वास्तविक शकारि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था।

(७) कवि की सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी, शैव तथा वैष्णव सभी राजाओं पर एक-सी ही आस्था थी और उसने अपनी रचनाओं में सबको यथोचित

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्थान दिया है। कवि किसी सम्प्रदाय विशेष से आवद्ध नहीं होता और न कालिदास के विषय में ही ऐसा सोचा जा सकता है।

(११) वर्णन साम्य कवि के लिए स्वाभाविक होता है अतः इसके आधार पर किसी कवि को विना किसी इतिहास पुष्ट प्रमाण के पूर्ववर्ती या परवर्ती नही कहा जा सकता।

अतः सिद्ध है कि कालिदास का स्थितिकाल प्रथम शताब्दी नहीं हो सकता।

पाँचवीं शताब्दी

रघुवंश के ही रघुदिग्विजय के अवसर पर रघु ने जो हूणों को पराजित किया है उससे कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह घटना ४५० ई० के लगभग घटित हुई होगी। कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्धगुप्त ने इन्हें परास्त किया होगा जो कि कालिदास का समसामयिक होगा अतः कालिदास का समय पञ्चम शतक मानना चाहिए क्योंकि स्कन्धगुप्त की उपाधि भी विक्रमादित्य थी। पर यह कथन भी प्रामाणिक नहीं, क्योंकि ४५० के पूर्व भी महाभारत अवेस्ता आदि में हूणों का उल्लेख मिलता है। अतः इस आधार पर कालिदास का समय पञ्चम शतक नहीं माना जा सकता।

छठी शताब्दी

फरगुसन महोदय के कथनानुसार ५४४ ई० में हर्ष विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर ३०० वर्ष पूर्व से विक्रम संवत् चलाया था। इसी विक्रमादित्य के दरवार में ९ रत्नों में एक कालिदास भी थे। मैक्समूलर महोदय ने भी यह कहा है कि छठी शताब्दी ही संस्कृत के पुनरुस्थान का समय है। ऐसे काल में ही कालिदास जैसे कवि का होना सम्भव था। पर यह धारणा अब सर्वथा भ्रान्त सिद्ध हो चुकी है; क्योंकि—

(१) फ्लीट की भारतीय शिलालेखों की खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि विक्रम संवत् के पूर्व नवम शतक तक मालव संवत् चल रहा था इसी को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय से विक्रम संवत् नाम दिया गया है।

(२) रघु ने हूण आदि को भारत की सीमा के बाहर ही परास्त किया था वे आक्रमणकारी न थे।

(३) छठी शताव्दी में विक्रमादित्य नाम का या इस उपाधि को धारण करने वाला कोई राजा न था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

(४) यशोवर्धन ने न कि हर्षवर्धन ने हूणों को न कि शकों को परास्त किया था, शकारि तो चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था और कोई नहीं।

(५) संस्कृत की काव्य परम्परा प्रथम शतक से ही विकसित होती आ रही है, पुनरुत्थान का प्रश्न ही नहीं उठता।

(६) ४७३ ई० के मन्दसोर शिलालेख पर वत्स भट्टि की प्रशस्ति में कालिदास की रचनाओं की स्पष्ट झलक विद्यमान है। अतः कालिदास ४७३ ई० के पूर्व हो चुके थे यही मानना समीचीन होगा।

(७) कालिदास के शाकुन्तल पर वात्स्यायन (तृतीय शताब्दी) की स्पष्ट झलक है अतः कालिदास २५० से ४७३ के बीच ही रहे में होंगे।

वस्तुतः कालिदास का स्थितिकाल चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य काल में ही माना जा सकता है; क्योंकि—

यद्यपि विक्रमादित्य उपाधि चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उसके पौत्र स्कन्धगुप्त दोनों ने ही धारण की थी पर शकारि तो केवल चन्दगुप्त द्वितीय ही था स्कन्धगुप्त नहीं, अतः कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय रहे होंगे।

कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१३) के समय में मानने के लिए निम्नलिखित अन्य भी प्रमाण हैं—

(१) 'कुन्तलेश्वर दौत्य' में वर्णित कालिदास का प्रसंग इस बात का प्रमाण है कि यह ३८०-४१३ तक अवश्य रहे थे।

(२) कालिदास ने 'कुमारसम्भवम्' की रचना अपने आश्रयदाता के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य करके की थी।

(३) हरिषेण प्रशस्ति के समुद्रगुप्त (३३६-३७५) के विजय वर्णन में तथा रघुदिग्विजय वर्णन में बहुत कुछ साम्य है। प्रतीत होता है कि कवि ने उस प्रशस्ति को ध्यान में रखकर रघुदिग्विजय का वर्णन किया है।

(४) कालिदास की रचनाओं में वर्णित सुख समृद्धि तथा शान्ति का सम गुप्तकाल के स्वर्ण युग का सूचक है।

(५) 'रघुवंश' में अनेकशः प्रयुक्त इन्दु और चन्द्रमस् शब्द चन्द्रगुप्त के ही द्योतक हैं।

(६) विक्रमोर्वशीय नाटक का नामकरण विक्रमादित्य उपाधिकारी चन्द्रगुप्त का ही सूचक है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(७) ,मालविकाग्निमित्रम्' में वर्णित अश्वमेघ यज्ञ समुद्रगुप्त के अश्वमेघ यज्ञ का व्यंजक है।

(८) कालिदास अश्वघोष व भास के परवर्ती हैं जैसा कि उक्त वर्णन से प्रमाणित है।

(९) वत्सभट्टि ने कालिदास का अनुकरण किया है और कालिदास ने वात्स्यायन का अध्ययन किया था।

(१०) ६३४ ई० के ऐहोल के शिलालेख में कालिदास का नामतः उल्लेख है।

(११) कालिदास ने सम्भवतः मालविकाग्निमित्रम् नाटक वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय और चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता के विवाह महोत्सव पर लिखा था।

(१२) कालिदास ने बहुत्र गुप् धातु का प्रयोग किया है जो कि गुप्त नरेशों का व्यञ्जक है।

इस प्रकार कालिदास का स्थिति काल चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय ही ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है। शेष मत अधिक किंवदन्तियों पर आधृत हैं, ऐतिहासिक पुष्टि के अभाव में इन किंवदन्तियों का कोई महत्त्व नहीं है। यद्यपि इस मत पर भी कई आपत्तियाँ उठाई गयी हैं और कालिदास को प्रथम शताब्दी में रखने का प्रयांस किया गया है, पर इन आपत्तियों का कोई पुष्ट आधार नहीं है। ऐसी सभी आपत्तियों का निराकरण मेरे द्वारा सम्पादित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की भूमिका में किया गया है। जिज्ञासु पाठक इसका विस्तृत वर्णन और विविध आपत्तियों के निराकरण को वहाँ देख सकते हैं।

जन्म स्थान

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल की भाँति ही इनके जन्म स्थान की समस्या भी जटिल है। कुछ विद्वान् इनको बंगाली, कुछ कश्मीरी, कुछ विदर्भवासी तथा कुछ उज्जयिनी निवासी बताते हैं। पर स्थिति काल के निर्णय द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय के आश्रित कवि थे जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, अतः इतना तो निर्विवाद ही है कि इनका अधिकांश समय या जीवन का उत्तरकाल उज्जयिनी में ही व्यतीत हुआ था, पर जन्म स्थान कहाँ था ? यह विचारणीय है। प्रत्येक कवि, अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जन्म भूमि तथा वहाँ के वातावरण से प्रभावित होता है और अपनी रचनाओं में जन्म का संकेत भी करता है, पर कालिदास ने कहीं भी अपने जन्म स्थान का संकेत नहीं किया है, अतः ऐसी स्थिति में अन्तरंग और बहिरंग साक्ष्य के आधार पर ही इसका पता लगाना पड़ेगा।

(१) कालिदास संशोधन समिति का यह कहना है कि बंगाल में एक कालिदास सागर के नाम से सरोवर है जहाँ पर प्रतिवर्ष आषाढ़ प्रतिपदा को उत्सव मनाया जाता है, और वहाँ यह जनश्रुति भी है कि कालिदास की तीन पत्नियों में एक विद्युन्माला नाम की पत्नी थी जिसका कालिदास ने अपने श्रुतिबोध में नामतः संकेत किया है अतः वे बंगाली थे।

(२) कालिदास नाम से भी उनका बंगाली होना प्रमाणित होता है, प्रायः बंगाली काली के भक्त होते हैं और प्रायः उनके नाम भी कालीप्रसाद कालीदत्त आदि होते हैं।

(३) बंगाल में सौरमास गणना प्रचलित है अतएव कालिदास से 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' में दिन का प्रयोग किया है, सौरमास गणना में दिनों की ही गणना होती है, अतः वे बंगाली थे।

पर कालिदास को बंगाली प्रमाणित करने की ये युक्तियाँ वस्तुतः भ्रामक ही हैं, क्योंकि :

(१) कालिदास की रचनाओं में प्रारम्भ में काली देवी की स्तुति नहीं पाई जाती।

(२) उज्जयिनी में कालीदेवी का अब भी मन्दिर है, बंगाली ही काली देवी के उपासक नहीं होते, अन्यत्र अन्य लोग भी होते हैं। हो सकता है कि कालिदास के माता-पिता काली के उपासक हों और उन्होंने कवि को यह नाम दिया हो, पर कालिदास शैव थे जैसा कि उनकी रचनाओं से प्रतीत होता है।

(३) 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' का तात्पर्य "आषाढ़ का प्रारम्भ" मात्र है, इसके चान्द्रमास या सौरमास गणना की खींचातानी भ्रामक है।

प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला ने कालिदास का जन्म स्थान कश्मीर माना है; क्योंकि :

(१) कालिदास की प्रायः सभी रचनाओं में हिमालय का सविस्तर एवं भव्य वर्णन है। कुमारसम्भव का प्रारम्भ ही हिमालय वर्णन से होता है। मेघदूत

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

के यक्ष की निवास भूमि अलका हिमालय पर ही थी। विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा और उर्वशी का मिलन कश्मीर के पास गन्धमादन पर्वत पर हुआ था। रघुवंश के वसिष्ठ मुनि का आश्रम हिमालय पर ही था। शकुन्तला के महर्षि कण्व एवं मारीच का निवास स्थान भी हिमालय पर ही था। इसी प्रकार अन्य जितने तीर्थों, आश्रमों एवं स्थानों का वर्णन इनकी रचनाओं में आया है उनमें से अधिकांश हिमालय पर्वत पर या उसके समीप में ही स्थित हैं, यहाँ तक कि नदियाँ और वन भी। रघुवंश में उल्लिखित निकुम्भ की कथा कश्मीर के नीलमतपुराण में वर्णित है।

(२) कश्मीर के रीति-रिवाजों की भी झलक इनकी रचनाओं में देखी जाती है, इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर उसकी उपमाता सुनन्दा ही 'अज' के गले में जयमाला डालती है, यह कश्मीर की प्रथा के ही अनुसार है।

(३) कालिदास कश्मीर के प्रत्यभिज्ञादर्शन मत के शैव थे इसका प्रमाण इनके नाटकों से मिलता है।

इस प्रकार कालिदास को कश्मीरी सिद्ध करने के लिए अनेक युक्तियाँ दी गयीं हैं, पर इन सबका सयुक्तिक निराकरण किया गया है—देखिए 'अभिज्ञान-शाकुन्तल की भूमिका।'

वस्तुतः कालिदास ने भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों का यथावत् चित्रोपम वर्णन किया है, इस कारण हर एक प्रान्त उनको भ्रमवश अपने ही प्रान्त का समझने लगा है। विदर्भ नगरी, रामगिरि आदि के भव्य वर्णनों ने उनके जन्म स्थान के विषय में यह भ्रान्ति उत्पन्न कर दी है। उनके विदिशा के भव्य वर्णन ने यथा नीचैः गिरि, निर्विन्ध्या, सिन्धु, गन्धवती, गम्भीरा आदि नदियों के वर्णन ने कालिदास को विदिशा निवासी होने का भ्रम उत्पन्न किया है, वस्तुतः कालिदास उज्जयिनी के थे, भले ही उनकी जन्मभूमि वह न हो पर उनका अधिकांश समय उज्जयिनी में ही व्यतीत हुआ था, क्योंकि कालिदास ने अपनी मातृभूमि होने के कारण उज्जयिनी के प्रति जितना प्रगाढ़ अनुराग दिखाया है और उसका विशद तथा भव्य वर्णन किया है उतना अन्य किसी स्थान का नहीं। वे मेघ से कहते हैं कि हे मेघ! यद्यपि उज्जयिनी तुम्हारे मार्ग में न पड़ेगी फिर भी तुम उसे भूलना नहीं, उत्तर दिशा की ओर तुम्हें यदि टेढ़े रास्ते से भी जाना पड़े तब भी उज्जयिनी के भव्य प्रासादों पर क्षण भर अवश्य ठहर कर जाना, यहाँ पर कालिदास ने उज्जयिनी का बड़ा भव्य वर्णन किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है, अलका को छोड़कर इतना भव्य और विस्तृत वर्णन और किसी स्थान का नहीं किया है, पर अलका तो दिव्य नगरी थी, भूलोक की किसी नगरी से कवि का इतना उत्कृष्ट प्रेम न था जितना उज्जयिनी से। अतः यह निर्विवाद है कि कालिदास की जन्म भूमि उज्जयिनी थी, जनश्रुतियाँ भी ऐसा ही मानती हैं।

जीवन चरित्र

कालिदास के स्थितिकाल एवं जन्म स्थान की भाँति ही उनके जीवन चरित्र के विषय में भी अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ सबसे अधिक प्रचलित दन्त कथा यह है कि कालिदास यद्यपि ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुए थे पर माता-पिपा के शीघ्र ही स्वर्गवासी हो जाने पर इनका पालन-पोषण लगभग बीस वर्ष तक एक ग्वाले के द्वारा हुआ था, अतएव ये इतनी अवस्था तक निरक्षर ही रहे थे। दैवयोग से इनका विवाह एक राजकुमारी से हो गया पर उसके द्वारा तिरस्कृत होने पर इन्होंने देवी की उपासना की जिसकी कृपा से ये प्रतिभा सम्पन्न उच्चकोटि के कवि हुए और अपनी पत्नी के 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' इस कथन को लेकर उन्होंने तीन काव्यों की रचना की, कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश। पर इस घटना से कालिदास अपनी पत्नी को माता के समान मानने लगे, क्योंकि उनकी प्रेरणा से ही वे विद्वान कवि बने थे, इससे चिढ़कर उसने इन्हें शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु स्त्री के हाथ से ही होगी, फलतः कालिदास वेश्याओं की संगति में अधिक रहने लगे और एक बार जब वे अपने मित्र कुमारदास से मिलने सिंघल गये थे तो वहाँ राजा द्वारा प्रस्तुत इस समस्या 'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते'' की पूर्ति कर ''वाले ! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्'' उन्होंने एक वेश्या को जो कि राजा से पारितोषिक की अभिलाषिणी थी, निराश कर दिया, फलतः उसने इनका वध कर दिया। जब कुमारदास को यह ज्ञात हुआ तो वे दुखी होकर इनके साथ ही चिता में जल गये।

इसी प्रकार की वहुत सी वेसिर-पैर की दन्त कथाएँ कवि कालिदास के विषय में वल्लाल कविकृत भोज प्रबन्ध में देखी जाती हैं। पर कालिदास के परवर्ती कवियों वाणभट्ट सोड्ढल आदि ने जो कालिदास की प्रशंसा की है वह कवि के पवित्र जीवन को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। कीथ के अनुसार

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कुमारदास का समय ७००-७५० ई० है अतः वह इनके समकालीन नहीं हो सकते। उनके जीवन चरित्र के विषय में प्रचलित सभी जनश्रुतियाँ निराधार हैं। उनके जीवन चरित्र का पता उनकी रचनाओं द्वारा लगाया जा सकता है।

कालिदास ब्राह्मण थे इसमें तो किसी को भी सन्देह नहीं है, क्योंकि उनकी रचनाओं में ऋषियों, तपस्वियों, विद्वानों, यज्ञकर्ताओं, यज्ञों, देव-मन्दिरों आदि के चित्र जितनी तन्मयता से अंकित हुए हैं उतने अन्यत्र नहीं। कालिदास ने विविध विद्याओं का अध्ययन नियमतः किया था, जिसके अनेक उदाहरण इनकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। वे किसी एक सम्प्रदाय के अनुयायी न थे अपितु ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी दैवी शक्तियों पर उनकी समान आस्था थी, फिर भी उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे शैव थे, पर अन्य सम्प्रदायों के प्रति भी उनकी समान रूप से आस्था थी।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के अतरिक्त व्याकरण, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि के वे कुशल ज्ञाता थे क्योंकि उन्होंने इन विषयों के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है। इसी प्रकार उनकी रचनाओं में ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, नाट्यशास्त्र आदि का तथा संगीत, चित्र, वाद्य आदि कलाओं का पूर्ण परिचय मिलता है। यद्यपि कवि ने कुछ ऐतिहासिक तथ्यों, पौराणिक मान्यताओं एवं भौगोलिक प्राचीन स्थितियों में अपनी कल्पना से प्रसंगानुसार हेरफेर किया है, जैसा कि एक कवि के लिए स्वाभाविक ही था, तथापि कवि को स्वदेश के इतिहास, प्राचीन पौराणिक आख्यानों एवं भौगोलिक स्थितियों का सूक्ष्मतर ज्ञान था, इसमें सन्देह नहीं। इसके लिए मेघदूत और रघुदिग्विजम प्रत्यक्ष निदर्शन हैं। कवि को स्वदेश स्थिति का ही नहीं, अपितु बाहरी सीमा प्रान्तों की स्थिति का भी पता था, किस स्थान पर कौन-कौन से प्राकृतिक दृश्य हैं, इन सब बातों के लिए कवि का ज्ञान अगाध है। अतः स्पष्ट है कि कवि ने स्वयं भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पर्यटन कर प्रकृति निरीक्षण के साथ-साथ वहाँ की स्थिति एवं नैतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं का पता लगाया होगा, उनकी रचनाओं के सामाजिक चित्र इसके निदर्शन हैं।

इन सबसे यह तो निःसन्देह ही है कि कवि को नियमित शिक्षा एवं सफल वक्तृत्व प्राप्त थी, तथापि उसके चरित्र के विषय में जो बहुत-सी मनगढन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बातें चल रही हैं, उनकी यथार्थता जानने के लिए फिर भी उनकी रचनाओं की खोज करनी पड़ेगी, क्योंकि यह एक सामान्य नियम है कि जैसा कवि का स्वभाव होता है और जैसा उसका आत्म चरित्र होता है, वैसा ही उसका काव्य बनता है।

कालिदास की रचनाओं से स्पष्ट है कि वे विलासी एवं विनोदी स्वभाव के थे अतएव उनके सभी ग्रन्थों में श्रृंगार रस की प्रधानता है। उनको सुभाषितकारों ने कविता कामिनी का विलास कहा है। उनका हृदय सर्वत्र कोमल और विनम्र है। कवि के लिए सरस, सचेतन एवं विनोदी होना गुण है, अवगुण नहीं, पर उनके जीवनवृत्त के अज्ञात होने के कारण जो उनके चरित्र के विषय में ऊटपटांग बातें गढ़ ली गयी हैं वस्तुतः वे सब तथ्य से परे हैं। कालिदास एक सच्चे सद्गृहस्थ थे, गृहस्थाश्रम पर उनकी अटूट श्रद्धा थी, उन्होंने गृहस्थाश्रम की तुलना मुनि आश्रम से की है और उसे सर्वोपकारकक्षम बताया है। उनकी दृष्टि में पति-पत्नी प्रेम सत्य, सनातन एवं मानव-जीवन का एक विशेष अंग है, योगीश्वर शिव भी इस ओर आकृष्ट हुए हैं। कवि ने पत्नी के प्रति विशेष आदरभाव प्रकट किया है, जिसके बिना धार्मिक कृत्य असम्भव है। पत्नी गृहस्थ के लिए उसका दाहिना हाथ है। गार्हस्थ्य जीवन की सफलता पत्नी पर ही है। अतएव उनके स्त्री पात्रों में कोई भी पात्र ऐसा नहीं है कि आदर्श पत्नी की परिधि से बाहर हो, उनकी आदर्श पत्नी का स्वरूप "गृहिणी सचिवः सखी मिथः, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ"। रघुवंश के 'अज विलाप' में ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। कालिदास के सभी स्त्री पात्र पतिव्रत धर्म के अनुयायी एवं ललित कला प्रेमी हैं। उनका आदर्श है "प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता' 'स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः" इन्दुमती, शकुन्तला, सीता जैसी स्वाभिमानिनी पतिपरायण प्रेममूर्ति पतिव्रताओं के सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत करने वाला कवि कैसा होगा यह अनुमान किया जा सकता है। क्या विलासी व्यक्ति भी ऐसे चित्र खींच सकता था, सुने-सुनाये नहीं स्वानुभूतिजन्य कल्पना के देदीप्यामान चित्र हैं, जिसने गृहस्थ जीवन के सुख का अनुभव न किया हो, वह ऐसे शब्द चित्र नहीं बना सकता, इसे अनुभवी विद्वान् ही जान सकते हैं।

उनकी रचनाओं में जहाँ कभी कोई ऐसा प्रसंग आया है जहाँ सन्तान प्रेम और बाल-क्रीड़ा का चित्र लाया जा सके, कवि ने उसे हाथ से जाने

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दिया है, यहाँ तक कि वह अपत्य-प्रेम को पति-पत्नी प्रेम का विवर्धक मानता है "विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत्" रघुवंश वास्तव में दाम्पत्य प्रेम सन्तति के कारण घटता नहीं, अपितु बढ़ता ही है। यह है कालिदास का अपत्यस्नेह ! क्या सन्तति विहीन गृहस्थाश्रम से दूर व्यक्ति कभी ऐसा सोच सकता है ? जहाँ कहीं भी कवि को छोटे-छोटे बालकों को देखने का अवसर मिला है, वह वहीं, रम गया-सा प्रतीत होता है। बालक रघु की क्रीड़ाएँ इसके निदर्शन हैं रघु० ३-२५। वस्तुतः कवि सन्तान के महत्व को इसकी इहामुत्र उपयोगिता को भलीभाँति जानता था उसमें सच्चे पितृ-हृदय की परख थी, उसके सभी काव्य और नाटकों में आये हुए एतद् विषयक प्रसंग इसके प्रमाण हैं।

जीवन दर्शन

यह बताया जा चुका है कि कालिदास ने धर्म, दर्शन, समाज, नीति, शिक्षा आदि सभी विषयों का नियमित रूप से अध्ययन एवं मनन कर उनका अपनी रचनाओं में उपयोग किया है, अतएव उनके ग्रन्थों में गम्भीर से गम्भीर अध्यात्म विषयक विचार यत्र-तत्र प्रसंगानुसार पाये जाते हैं। यद्यपि इन्होंने अध्यात्म विषय पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है तथापि उनकी विभिन्न रचनाओं के पढ़ने से कोई भी उनके धार्मिक एवं तात्विक विचारों को समझ सकता है।

कालिदास का समय हिन्दू धर्म का सन्धि काल था, अद्यावधि जैन तथा विशेषतर बौद्ध धर्म के प्रवल आघातों से जर्जरित हिन्दू धर्म अब अपने दर्शन एवं स्मृति शास्त्रों के द्वारा एक ओर वैदिक यज्ञानुष्ठानों को शिथिल कर वर्णाश्रम व्यवस्था को पुनरुज्जीवित कर रहा था तथा दूसरी ओर बौद्धों के तत्वज्ञान विषयक विचारों का खण्डन कर वैदिक धर्म की ओर जनता की रुचि उत्पन्न कर रहा था। गुप्त वंश के उदय के साथ-साथ हिन्दू धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ तथा इसी के प्रचारार्थ अनेक काव्यों और नाटकों की रचना हुई है।

कालिदास के समय हिन्दूधर्म के विविध अंगों—शैव, शाक्त, वैष्णव आदि में पारस्परिक विरोध न था। एक ही कुटुम्ब में विविध देवताओं की उपासना चल रही थी। कालिदास के माता-पिता शाक्त थे पर कालिदास शैव थे। उन्होंने सर्वत्र शिव की वन्दना की है। कुमारसम्भव तथा रघुवंश में ऋषिजनों एवं राजा दिलीप के द्वारा शिव की सर्गस्थितिप्रत्यवहार हेतु के रूप में स्तुति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

करायी गयी है और उनको सर्वान्तिर्यामी बताया गया है। उन्हें पूर्ण आप्तका होते हुए भी लोक संग्रहार्थ जन्म लेने वाला एवं कर्म करने वाला बताया ग है। 'कुमारसम्भव' में शिव विवाह के समय स्मृति-विधियों का वर्णन कर उ महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। मोक्ष-साधन के लिए योग सिद्धा कालिदास को मान्य था जैसा कि उनकी रघुवंश की इस पंक्ति "पुरुषं यो समाधिना रघुः" से ज्ञात होता है। गीता में भी इसी योगविधि का वर्णन उपनिषद् और गीता के अनुसार उनकी मान्यता थी कि पुण्य क्षीण होने सबको इस लोक में आना पड़ता है। मोक्ष ही परम साध्य है, अतः उन् शिव से मुक्ति याचना ही की है। मुक्ति साधना का एकमात्र मार्ग कवि दृष्टि में योग-साधना ही है, रघु के उत्तरकाल का वर्णन यही सूि करता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था पर कवि की अटूट श्रद्धा थी, प्रत्येक अपने-अपने व की मर्यादा के अनुसार कार्य करता हुआ दिखाया गया है, उन्होंने सर्वत्र निर्देश किया है कि मनुष्य को यथाकाल सभी आश्रमों का नियमतः पा करना चाहिए। रघुवंश में उन्होंने मानव जीवन को चार भागों में विभक्त प्रत्येक भाग के परम साध्य की ओर इस प्रकार निर्देश किया है—

"शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥"

इससे स्पष्ट है कि वे चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए चतुराश्रम व्यवस्था अधिक महत्व देते थे।

पारिवारिक एवं सामाजिक सुख के लिए उनकी मान्यता है "प्रतिबध्ना हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः" अर्थात् पारिवारिक एवं सामाजिक शान्ति व्यवस्था के लिए पूज्यजनों की आज्ञा का पालन करना आवश्यक है। साथ यह उनकी मान्यता थी कि समाज में प्रौढ़ावस्था में ही विवाह होना चाहिए वाल-विवाह के पक्षपाती न थे। उनकी प्रायः सभी नायिकायें अपनी प्रौढ़ाव में ही विवाह करती हैं जब वे विविध कला प्रवीण स्वेच्छानुसार पतिवर लिए समर्थ हो जाती हैं। मालविका, शकुन्तला, इन्दुमती, पार्वती आदि अपनी प्रौढ़ावस्था में ही पतिवरण करती हैं। पर इससे यह कदापि न सम चाहिए कि वे आधुनिक प्रीति-विवाह के समर्थक थे, यदि ऐसा होता तो शकुन्तला के गान्धर्व विवाह का दुष्परिणाम न दिखाते। बन्धुजनों व गुरु

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ो सम्मति के बिना केवल पारस्परिक प्रेम मात्र से विवाह करना वास्तव में ालिदास की दृष्टि में एक अपराध था, शकुन्तला का उदाहरण इसकी पुष्टि रता है। कालिदास की दृष्टि में कौटुम्बिक सुख का साधन ब्राह्म विवाह ी है। उनकी दृष्टि में केवल बाह्य सौन्दर्य पर टिका हुआ प्रेम चिरस्थायी हीं होता इसीलिए प्रेमीजनों को विवाह के पूर्व गुरुजनों की सम्मति लेना ावश्यक है, जैसा कि उन्होंने रघुवंश में कहा है—"श्री साभिलाषापि गुरोर-ज्ञां, धीरेव कन्या पितुराचकांक्ष।" शकुन्तला के ये वाक्य—'धर्मचरणेऽपि रवशोऽयं जनः न च संनिहितोऽत्र गुरुजनः" भी इसी बात को पुष्ट करते हैं।

कालिदास की तप, तपस्वी, ऋषि, मुनिजनों पर तथा इनकी दिनचर्या एवं नाश्रमों पर बहुत बड़ी आस्था थी, ऋषिजनों को वे निग्रहानुग्रह समर्थ मानते ै। जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, कवि ने अपनी रचनाओं में अपनी इस ान्यता को प्रकट किया है। कवि यद्यपि सामाजिक संगठन एवं सामाजिक उन्नति को अत्यावश्यक मानता है, पर इससे भी अधिक आवश्यक वह आध्या-त्मक जीवन को बताता है। वे वास्तव में एक धर्म प्राण समाज के पक्षपाती थे।

उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि उन्हें सामान्यतः प्रजाहित तत्पर राज-द्धति ही रुचिकर थी। अतएव यद्यपि उनके समय में गणराज्य थे, तथापि उन्होंने उनका वर्णन नहीं किया है। कवि ने अनेक स्थानों पर राजगुणों का र्णन किया है। इसके लिये सबसे अच्छे उदाहरण रघुवंश के प्रथम सर्ग में देखे ा सकते हैं, जहाँ राजगुणों का प्रजा की स्वामिभक्ति का, राजा की प्रजा-ालनतत्परता का सुन्दर उल्लेख है। उनके नाटक भी इसी ओर संकेत करते हैं।

शिक्षा के सम्बन्ध में कालिदास का यह आदर्श था कि शिक्षक के लिए निष्ठावान्, त्यागी तथा उदार होना आवश्यक है। जो पेट भरने के लिए विद्या ा उपयोग करता है, कालिदास की दृष्टि में वह हेय है—'यस्यागमः केवल ीविकार्थं तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।" इसीलिये मालविकाग्निमित्रम् में उन्होंने शिक्षकों के योग्यतानुसार भेद भी बताये हैं। उनकी मान्यता है कि विद्यार्थी को उसकी लगन, बुद्धि और योग्यता देखकर ही विद्या देनी चाहिए क्योंकि सत्पात्रोपहिता विद्या ही फलीभूत होती है।

इस प्रकार इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों ं कालिदास का दृष्टिकोण क्या था और फलतः इससे उनके जीवन दर्शन को मझने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कुमारसम्भव की कथावस्तु का स्रोत

इस महाकाव्य में जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है, भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वती के पुत्र कुमार कीर्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन इस महाकाव्य का कथानक शिवपुराण से लिया गया है, जहाँ यह वर्णित गया है कि तारकासुर से त्रस्त होकर जब देवताओं ने उसके वध का उपाय ब्रह्मा से पूछा तब उन्होंने कहा कि भगवान शिव से उत्पन्न कुमार कार्तिकेय देव सेनापति बनकर तारक का वध कर सकेंगे। ब्रह्मा के इस कथन को मानकर इन्द्रादि देवताओं ने कामदेव की सहायता से भगवान शिव से देवी पार्वती का विवाह कराने का प्रयास किया जिसमें वे सफल हुए और शिव पुत्र कुमार कार्तिकेय ने देव सेनापति बनकर तारकासुर का वध कर देवों को भयमुक्त किया, यद्यपि इस कार्य में कामदेव को शिव की रोषाग्नि से भस्म होना पड़ा। शिवपुराण के इस कथानक का निष्कर्ष इतना ही है कि कोई भी महान् कार्य बिना साहस, उद्योग, उत्साह, शौर्य, त्याग, तपस्या और सहयोग के नहीं हो सकता। भगवती पार्वती ने घोर तप करके ही भगवान शिव को प्राप्त किया था, उनके पुत्र कुमार कार्तिकेय अदम्य साहस, शौर्य और सहयोग से तारक का वध करके ही देव कार्य में सफल हो सके थे।

शिवपुराण के इतने छोटे से कथानक को लेकर महाकवि कालिदास ने अपनी अद्वितीय काव्यप्रतिभा से इस १७ सर्ग के महाकाव्य की रचना की जिसमें प्रथम सात सर्गों तक हिमालय का, पार्वती के परिवार का तथा उनके पूर्वजन्म के वृत्तान्त का एवं इस जन्म में उनके घोर तप एवं शिव प्राप्ति से लेकर विवाह, कामदेव के भस्म होने, रतिविलाप आदि का वर्णन है, आठवें सर्ग में शिव पार्वती का सम्भोग शृंगार वर्णित है। शेष नौ सर्गों के कालिदास रचित होने में विद्वानों की सर्वसम्मति नहीं है; क्योंकि इन सर्गों की शैली प्रथम सर्गों से भिन्न है और कवित्व भी वैसा नहीं है जैसा कि प्रथम सर्गों में देखा जाता है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु

कुमारसम्भव का कथानक उत्तर भारत में स्थित, हिमोष्णीषालंकृत हिमालय के संश्लिष्ट एवं बिम्बग्राही आलम्बनात्मक वर्णन से हायम्भ होता है। हिमालय पर्वत ही भगवान् शिव का लीला स्थल है और कालिदास की कल्पना इसी हिमालय पर उल्लासमयी वृत्ति वाले सभी देवों का आवास है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ाती है। ये देवता इसी पर्वत की विविध कन्दराओं में वास करते हैं और प्सराओं से मिलकर विलास क्रीड़ा में निमग्न रहते हैं। कवि की कल्पना है न हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के चारों ओर घूमते मेघ, वस्त्रों को उतारती ई इन अप्सराओं के लिए अभीष्ट तिरस्करिणी का काम करते हैं। स्वर्ग से तरती हुई गंगा के सीकरों से आर्द्र शीतल वायु देवदारु के तनों को हिलाती ई चारों ओर बहती है और मृगान्वेषी किरातों के मोरपंखों के स्वल्पाच्छा- नों को विश्लिष्ट कर देती है। यद्यपि यहाँ एक ओर इस प्रकार का देवांग- ाओं का निर्व्याजविहार है, सर्वत्र उल्लसित एवं मनोरम वातावरण है, तथापि सी हिमालय पर एक ओर भगवान् शिव अति गम्भीर समाधि में स्थित हैं, न पर इस उल्लासमय वातावरण का कोई प्रभाव नहीं है। इसी अवसर पर र्वतराज हिमालय की पुत्री उमा, जो कि अपने पूर्वजन्म में भगवान् शिव की त्नी सती थीं और जिन्होंने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में भगवान शिव के अप- ान को न सहन कर शरीर त्याग दिया था और अब हिमालय की पुत्री होकर मा नाम से अवतरित हुई थीं, भगवान् शिव की पूजा एवं सेवा के लिए पनी सखियों के साथ; पुष्प-जल-कुश आदि पूजा की सामग्री लेकर उपस्थित ती हैं, क्योंकि पार्वती (उमा) को विवाह योग्य देखकर नारदजी ने हिमालय कहा था कि आप उमा का विवाह भगवान् शिव के साथ कर दीजिए और हिमालय ने भी पार्वती को इसी उद्देश्य से शिव की सेवा के लिए अनुमति दे थी। प्रथम सर्ग का इतना ही कथानक है।

दूसरे सर्ग में, देवताओं को घोर विपत्ति में पड़ा हुआ एवं अपनी रक्षा के ए व्याकुल दिखाया गया है, क्योंकि तारक नामक असुर ने उत्पन्न होकर न्हें त्रस्त कर रखा है। आत्मरक्षा का अन्य कोई साधन न पाकर सभी वता ब्रह्मा के पास गये और उनसे तारकासुर के वध का उपाय पूछा, किन्तु ह्मा भी इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं उसे रक्षण दे रखा था और "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" के अनु- र अब वे उसका वध करने में असमर्थ थे। साथ ही वे यह भी जानते थे कि गवान् शिव, जिनका कि यश सभी देवताओं से बढ़कर है, यदि पार्वती से वाह कर लें और उनसे जो सन्तान उत्पन्न हो, वही इस असुर का वध करने समर्थ हो सकती है। अन्य कोई भी उसका संहारक न हो सकेगा। अतः होंने देवताओं से कहा कि आप लोग ऐसा प्रयास करें कि समाधिस्थ भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शिव पार्वती की ओर आकृष्ट हो सकें और उनसे विवाह कर सकें। यदि हो सके तो उनसे उत्पन्न कुमार इस असुर का वध करने में समर्थ हो सके। ब्रह्मा के इस कथन को मानकर इन्द्रदेव ने भगवान् शिव को उमा की आकृष्ट करने के लिए कामदेव से सहायता करने के लिए कहा।

तृतीय सर्ग में, कामदेव अपने सखा वसन्त तथा अपनी प्रिया पत्नी के साथ शिव की समाधि भङ्ग करने के लिए तथा उन्हें उमा की ओर आ करने के लिए शिव के तपोवन में पहुँचते हैं। कामदेव के पहुँचते ही वहाँ के प्रभाव से सहसा ही उस स्थल का वातावरण बदल जाता है। चारों कामोद्दीपक प्रेममय वासन्तिक सुषमा एवं मधुरता उत्पन्न हो जाती है। निवातनिष्कम्प प्रदीप की भाँति शान्त समाधिस्थ शिव पर इसका कोई प्र नहीं पड़ता, अपितु शिव की इस घोर अविचल समाधि को देखकर कामदेव भयभीत हो जाता है। ऐसी स्थिति में जब भगवती अपनी सखि साथ शिव की आराधना के लिए वहाँ पहुँचती हैं और भगवान् शिव से भावना भरित हृदय से प्रार्थना करती है, तब भगवान् शिव अपने में मनोविकार का अनुभव करते हैं और क्षणमात्र के लिए अपने नेत्र खो इस नवीन वातावरण को देखते हैं। जब इधर-उधर देखते हुए उनकी कामदेव पर पड़ती है जो कि उन पर वाण चलाने के लिए उद्यत था, तब के नेत्र से निकली हुई रोषाग्नि कामदेव को भस्म कर देती है। जब तक भगवान् शंकर का कोप शान्त करने की प्रार्थना करें तब तक कामदेव हो जाता है—

> "कोपं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
> तावद्धि वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।"

इतने ही कथानक के बाद तृतीय अंक समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ सर्ग में, अपने भस्मीभूत पति के लिए रति के विलाप का ब हृदय द्रावक कारुणिक चित्र उपस्थित किया गया है। कामदेव के वसन्त यद्यपि उसे सान्त्वना देने का प्रयास करते हैं तथापि वह नहीं होती और वह वसन्त से चिता सजाने को कहती है, जिससे कि वह होकर अपने पति के पास पहुँच सके। भस्मीभूत पति की ओर दे वह कहती है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः ।
अहमेव दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ।

अन्त में, आकाशवाणी उसे आश्वस्त करती हुई कहती है कि उसका उसके प्रियतम के साथ पुनर्मिलन उस समय हो सकेगा जबकि दयालु भगवान् शिव उमा को अपनी जीवन सङ्गिनी बना लेंगे। रति इसी आशा से जीवित है।

पाँचवें सर्ग में, अपने प्रथम प्रयास में असफल होकर और कामदेव को भस्मीभूत देखकर पार्वती जी अपने सौन्दर्य की निन्दा करती हैं और पुनः तपस्या के द्वारा शिवजी को प्राप्त करने का निश्चय करती हैं। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे अपनी माता से आज्ञा लेकर सखियों सहित शिव के तपोवन में घोर तप करने में संलग्न हो जाती हैं। वे ग्रीष्म काल में घोर पञ्चाग्नि तप करतीं और शीत काल में उदवासतत्परा होकर हिमोत्कर वायु के वेग से भी विचलित नहीं होतीं, वर्षा में वे अनावृत्त शिला पर बैठकर तप करती हैं। उनकी इस प्रकार की घोर तपस्या को देखकर महाकारुणिक भगवान् शिव एक ब्रह्मचारी का वेष धारण कर पार्वती के तपोवन में आते हैं और उनकी मनः स्थिरता की परीक्षा करते हुए वे शिव की अनेक रूपों में निन्दा करते हैं और पार्वती से कहते हैं कि वह शिव प्राप्ति के लिए ऐसा घोर तप न करें, शिव उसके लिए उपयुक्त वर नहीं हैं; किन्तु पार्वती पर ब्रह्मचारी के इस कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे कहती हैं—

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थिरं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।।

अन्त में जब, पार्वती जी वहाँ से जाने लगती हैं तभी भगवान् शिव अपने साक्षात् रूप में प्रकट होकर उनसे कहते हैं—

अद्य प्रभृत्यवनतांगि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्र मौलौ- इत्यादि—पञ्चम सर्ग।

षष्ठ सर्ग में, शिव प्राप्ति के अनन्तर यद्यपि शिव-पार्वती का विवाह निश्चित हो जाता है, तथापि कवि विवाह के पूर्व की धार्मिक विधियों एवं औपचारिक कृत्यों के निर्वाह के लिए अरुन्धती सहित सप्तर्षियों को उमा के पिता के पास इस विवाह को सम्पन्न कराने के लिए भेजता है, उस समय पार्वती भी अपने पिता के पास आन्तरिक उल्लास एवं बाह्य लज्जा के आवरण में लिपटी, लीला-कमल पत्रों को गिनती हुई खड़ी थीं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमल पत्राणि गणयामास पार्वती ।।

गृहस्थाश्रमी प्रायः कन्या के विवाह के विषय में अपनी पत्नियों की इच्छा-नुसार चलने के लिए अभ्यस्त होते हैं, अतः हिमालय ने मैना की अनुमति प्राप्त कर, बड़े सत्कारपूर्वक सप्तर्षियों के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए, उमा को शिव के साथ विवाह की स्वीकृति दे दी ।

सप्तम सर्ग में, विवाह का वर्णन है कवि ने अपने राज दरबारी अनुभव के आधार पर शिव-पार्वती के विवाह का भव्य वर्णन किया है । विवाह-संस्कार के अनुसार जब पार्वती की माता मैना अपनी पुत्री के माथे पर तिलक और मंगल-सूत्र बाँधने लगती हैं, उस समय कवि ने देवी मैना के आनन्द और विषाद के बीच आन्दोलित हृदय का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । मैना इस स्थिति में उद्विग्न एवं अन्यमनस्क होने के कारण मंगल-सूत्र को स्थाना-न्तर में बाँध देती है और सामने उपस्थित धात्री उसे ठीक करती है । भगवान् शिव बारात लेकर हिमालय के घर पहुँचते हैं और विवाहोपरान्त बारात लौट आती है, पर भगवान् शिव ठहरे रहते हैं ।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में यहाँ पर यह काव्य समाप्त हो जाता है, कुछ में अष्टम सर्ग भी मिलता है जिनमें कामशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार कवि ने विवाहित दम्पति के आमोद-प्रमोदों का विस्तृत वर्णन किया है । मास के उपरान्त भगवान् शिव देवी पार्वती के साथ पुनः गन्धमादन पर्वत पर चले जाते हैं ।

शेष नौ सर्ग अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में नहीं मिलते, साथ ही प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की टीका भी यहीं तक मिलती हैं । आगे नौ सर्गों की शैली इससे भिन्न है और न उनमें कालिदास जैसा उच्चकोटि का कवित्व लक्षित है । अतः विद्वानों का अनुमान है कि महाकवि कालिदास ने यहीं तक इस काव्य की रचना कर इसे अधूरा ही छोड़ दिया होगा, अथवा उनकी मृत्यु हो गयी होगी, अथवा हस्तलिखित प्रतियों के अन्तिम नौ सर्ग नष्ट हो गये होंगे, अथवा दिव्य दम्पत्ति, जगत् के माता-पिता भगवान् शिव और पार्वती के इस प्रकार के सम्भोग शृंगार के वर्णन को पढ़कर विद्वानों ने कवि की कुछ आलोचना की होगी, क्योंकि दिव्य दम्पत्ति का और विशेषतः 'जगतः पितरौ पार्वती

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

परमेश्वरौ' का ऐसा शृङ्गारिक चित्रण विद्वत्समाजों में वैरस्योत्पादक ही रहा होगा और अलंकार शास्त्र के नियमों के विरुद्ध भी माना जाता रहा होगा अथवा कवि ने स्वयं अद्भुत एवं चमत्कारपूर्ण कुमार-जन्म के इस उपाख्यान को महाकाव्य के उपयुक्त न समझा होगा और आठ सर्ग के बाद ही इसे समाप्त कर दिया होगा। इस प्रकार की अनेक कल्पनाएँ इस सम्बन्ध में की गयी हैं और यह माना गया है कि शेष नौ सर्ग कालिदास रचित न होकर किसी अन्य विद्वान द्वारा रचित हैं। काव्य को अधूरा समझकर उन्हें इसमें जोड़ दिया गया है।

यद्यपि विद्वानों की इन कल्पनाओं में भी कोई सार नहीं है, क्योंकि इनके विरुद्ध भी अनेक तर्क दिये जा सकते हैं तथापि यह काव्य कालिदास द्वारा अधूरा ही क्यों छोड़ दिया गया था ? इसका भी अब तक कोई दूसरा समाधान नहीं मिल पाया है। अतः कुछ भी हो इस समय इस महाकाव्य के १७ सर्ग उपलब्ध हैं और शेष नौ सर्गों का कथानक इस प्रकार है—

नवम सर्ग में, कवि ने बताया है कि जब कई वर्ष बीत गये और शिव की कोई सन्तान न हुई तथा तारक का अत्याचार और बढ़ने लगा तब देवताओं ने अग्नि को शिवजी के पास भेजा, कपोत का रूप धारण कर अग्नि वहाँ पहुँचे और देवताओं का अभीष्ट उन्हें बताया, जिसे सुनकर परम दयालु परमेश्वर ने अपना तेज अग्नि को दे दिया।

दशम सर्ग में, जब शिव के तेज से अग्नि संतप्त होने लगे तब उन्होंने इन्द्र से कहा कि क्या करना है। इन्द्र ने उन्हें गंगा स्नान का परामर्श दिया। गंगा स्नान कर अग्नि ने उस शिव-तेज को गंगा में डाल दिया।

एकादश सर्ग में, यह वर्णन है कि इसी समय छह कृतिकाएँ गंगा स्नान के लिए वहाँ पहुचीं। गंगा ने उस शिव-तेज को इन कृत्तिकाओं को दे दिया। उन्होंने इसको गर्भ के रूप में धारण किया, पर अपने घर पहुँचने के पूर्व ही उन्होंने उस तेज को शरवण में रख दिया। यहीं शरवण में शिव की तेज-राशि से षण्मुख स्वामि कार्तिकेय उत्पन्न हुए। इस पर जब कृतिकाएँ विवाद करने लगीं तब परमेश्वर शिव एवं भगवती पार्वती वहाँ पहुँचे। भगवात शिव ने पार्वती को कुमार जन्म का सब वृत्तान्त सुनाकर यह मत व्यक्त किया कि कुमार कार्तिकेय शिव के ही पुत्र हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

द्वादश सर्ग में, जब तारकासुर से अति त्रस्त होकर इन्द्रादि देवता भगव शिव के पास आये और उनसे रक्षा के लिए प्रार्थना की तब परम दय आशुतोष शंकर ने कहा कि आप लोग कुमार कार्तिकेय को सेनापति बना युद्ध करें अवश्य विजय प्राप्त होगी।

त्रयोदश सर्ग में, शिव के उपदेश के अनुसार स्वामि कार्तिकेय को सेना बनाया गया और सभी देवताओं के साथ सेनापति कार्तिकेय ने युद्ध के प्रस्थान किया।

चतुर्दश सर्ग में, सेना का, दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का, सेना के प्रस्थान आदि वर्णन है।

पञ्चदश सर्ग में, देवताओं और असुरों के बीच लोमहर्षक युद्ध चित्रण है।

षोडश सर्ग में, इसी युद्ध का सविस्तार वर्णन किया गया है।

सप्तदश सर्ग में, सेनापति स्वामि कार्तिकेय ने तारकासुर का वध क विजय प्राप्त की और सभी देवता अपने स्थान को लौटकर सुखपूर्वक र लगे।

सम्पूर्ण काव्य का इतना ही कथानक है। वस्तुतः आठ सर्गों तक जि उत्कृष्ट कवित्व देखा जाता है जैसी मधुरता एवं रसाभिव्यक्ति, जैसी व्यञ् नात्मक एवं स्वाभाविक मधुर एवं सरल शैली देखी जाती है, उतनी इन अन्ति सर्गों में नहीं मिलती, न इन सर्गों में वह कोमलकान्त पदावली ही है, औ वह सहृदयहृदयावर्जक शैली ही, जो कि प्रथम आठ सर्ग तक देखी जाती अतः युद्धवर्णन जैसे कुछ स्थलों को छोड़कर इन सर्गों का कवित्व कालि जैसा नहीं जान पड़ता अर्थात् इन सर्गों का मूल्य कवित्व की दृष्टि से बहुत कम है, अतः यह कहना ठीक प्रतीत होता है कि इन शेष सर्गों की र कालिदास द्वारा नहीं की गयी थी, इन सर्गों के कथानक में भी कोई विशे नहीं है। वस्तुतः कुमारसम्भव तो अष्टम सर्ग तक समाप्त हो जाता है। सर्गों में उसी बात का अनावश्यक विस्तार सम्भवतः इसलिए किया गया कि इसे महाकाव्य की कोटि में रखा जा सके। किन्तु महाकवि कालि ने इसे अधूरा ही क्यों छोड़ दिया ? इस बात का अब तक कोई समाधान न मिल सका है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कालिदास का काव्य सौष्ठव

महाकाव्यकार के रूप में कवि कुलगुरु कालिदास की दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रथम कुमारसम्भव और द्वितीय रघुवंश महाकाव्य। इनका रघुवंश महाकाव्य तो निर्विवाद रूप से सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है जिसमें रघुवंशी राजाओं का चरित्रचित्रण किया गया है। अलंकार शास्त्रों के अनुसार महाकाव्य के लिए अपेक्षित सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं किन्तु कुमारसम्भव के विषय में अवश्य कुछ भ्रान्त धारणाएँ हैं—

प्रथम तो यही कि अब तक यह सप्रमाण निर्धारित नहीं हो सका है कि इस महाकाव्य के ९ से १७ सर्गों तक का रचयिता कौन है ? विद्वत्समाज की यह धारणा है कि कालिदास ने इसके प्रथम आठ सर्गों की ही रचना कर इसे अधूरा ही छोड़ दिया था। शेष सर्गों की रचना किसी उत्तरवर्ती कवि के द्वारा की गयी होगी।

क्योंकि ईशवीय चतुर्दश शतक में होने वाले प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की जिन्होंने कालिदास, भारवि, माघ, आदि के सम्पूर्ण काव्यों पर विद्याधर की "एकावली" पर और 'नलोदय' पर अपनी विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी हैं, कुमारसम्भव पर प्रथम सात और कहीं आठ सर्गों तक ही टीकायें उपलब्ध होती हैं। यह इसलिए कि सम्भवतः शेष सर्गों को कालिदास रचित न मान कर उन्होंने उन सर्गों पर टीका नहीं की है।

पुरानी हस्तलिखित पोथियों में भी सात या आठ सर्ग ही मिलते हैं और यहीं पर काव्य की समाप्ति भी दिखायी गयी हैं। कुछ पोथियों में अन्य सर्ग भी देखे जाते हैं।

इस सम्बन्ध में यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सात सर्गों तक की रचना के विषय में तो विद्वत्समाज को कोई विशेष आपत्ति नहीं है, पर आठवाँ सर्ग जिसमें कामशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार विवाहित दम्पत्ति के आमोद-प्रमोद का बड़े ही स्पष्ट शब्दों में सम्भोग श्रृंङ्गार वर्णित है, विशेष रूप से आपत्तिजनक है और अलंकारशास्त्र के नियम के विरुद्ध भी है। जगत् के माता-पिता और अपने भी उपास्य देव भगवान् शंकर और पार्वती के विषय में कवि की ऐसी स्पष्टवादिता निस्सन्देह न केवल भारतीय जनों के लिए, अपितु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में भी अत्यधिक वैरस्योत्पादक है। यही कारण है कि अधिकांश हस्तलिखित पोथियों में सात सर्ग ही मिलते हैं।

विद्वानों का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि कालिदास की इस रचना को पढ़कर और देव-दम्पती की ऐसी विलास-क्रियाओं को देखकर एवं पञ्चम सर्ग में तपस्विनी भगवती का कवि द्वारा वर्णित चित्र देखकर भी तत्कालीन विद्वानों ने कवि की कटु आलोचना की होगी और कवि ने भी इससे मर्माहत होकर इसे अधूरा ही छोड़ दिया होगा अथवा इसके अधूरा छोड़ देने का कारण यह भी रहा होगा कि कवि ने स्वयं भी यह अनुभव किया होगा कि यह विषय महाकाव्य के लिए न तो पर्याप्त ही है और न उचित ही है अतः इसे समाप्त कर दिया होगा। किन्तु इस विषय में विद्वानों का यह कथन तो सर्वथा निराधार है कि आठ सर्ग तक की रचना के वाद कालिदास की मृत्यु हो गयी होगी अतः यह अधूरा रह गया होगा, क्योंकि रघुवंश महाकाव्य जो कि कवि का दूसरा महाकाव्य है, निश्चयतः कुमारसम्भव के बाद लिखा गया है जिसके अनेक अन्तः एवं बाह्य साक्ष्य देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार आठवें सर्ग को कालिदास द्वारा रचित न मानने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि पहले आठ सर्गों का स्कन्दपुराण की शंकरसंहिता में उपयोग किया गया है और इस सर्ग से भारवि, कुमारदास, माघ, निश्चित रूप से परिचित प्रतीत होते हैं। अलंकार शास्त्रों में भी इस सर्ग से उद्धरण दिये गये हैं। कवित्व दृष्टि से भी इसमें कालिदास जैसा ही उच्चकोटि का काव्य कौशल है। ९ से १७ सर्गों तक का कवित्व अवश्य एतदपेक्षया हीन कोटि का है और इसमें शंकरसंहिता का ही उपयोग किया गया है। इन सर्गों में कुमारसम्भव नाम से संकेतिक कुमार की उत्पत्ति के बाद उस कथानक को अनावश्यक रूप से आगे १७ सर्ग तक घसीटा गया है जिसमें युद्ध वर्णन को छोड़कर कोई नवीनता नहीं है। इन सर्गों में प्रयुक्त छन्दों में यति भङ्गादि दोष भी हैं और कहीं पाद-पूरक शब्दों का सहारा लिया गया है जो कि कालिदास की प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। इन सर्गों में कहीं-कहीं भाव में भी वैसी ही कृत्रिमता देखी जाती है जैसी कि हम अलंकृति युग के कवियों में पाते हैं। संक्षेपतः कहा जा सकता है कि ये सर्ग अलंकृति युग के कवियों के अधिक समीप हैं, कालिदास जैसा कवित्व इनमें नहीं है। यही कारण है कि प्रसिद्ध टीकाकारों ने इन सर्गों पर न तो टीका ही लिखी है और

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

काव्यशास्त्रियों ने इन सर्गों से उद्धरण ही दिये हैं और न परवर्ती कवियों ने इनका अनुकरण ही किया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदासोत्तरवर्त्ती किसी कवि ने इन कालिदास रचित आठ सर्गों को देखकर इसे महाकाव्य कोटि में रखने के लिए इसमें शेष सर्ग और जोड़ दिये हैं, क्योंकि इन सर्गों को जोड़े बिना यह महाकाव्य नहीं कहा जा सकता था। अतः यह सत्य प्रतीत होता है कि शेष सर्गों का रचयिता कोई अन्य कवि ही रहा होगा।

आठ सर्गों तक की रचना पर भी विद्वानों ने जो आक्षेप किये हैं उसके सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है कि इसमें देवाधिदेव शिव और जगज्जननी पार्वती का विवाह वर्णन एवं कुमार की उत्पत्ति का कथानक कोई साधारण कथानक नहीं है। उसे सर्वसामान्य राजादिक के विवाह के रूप में न देखना चाहिए, और न इसमें युद्ध के देवता कुमार की उत्पत्ति को ही साधारण बच्चों की उत्पत्ति की ही तरह देखना चाहिए। इसी प्रकार इसके अष्टम सर्ग के चित्रण को साधारणजनों की विलास-क्रीड़ा ही न समझनी चाहिए, अपितु इसमें मेघदूत की भाँति कवि की व्यञ्जनात्मक एवं संकेतात्मक दृष्टि पर विचार करना चाहिए। यदि हम इसे स्थूल मानव-काव्य के रूप में न देखें तो हमें ज्ञात होगा कि शिव और उमा के विवाह की कहानी किसी लौकिक उथले प्रेम की कहानी नहीं है अपितु इन दो शक्तियों के संयोग से एक महान दिव्य अलौकिक शक्ति को उत्पन्न कराकर कवि ने तारकासुर से पीड़ित देव-समाज की रक्षा का साधन उपस्थित किया है। ब्रह्मा से भी संरक्षित तारकासुर के वध के लिए ऐसी ही अपूर्व शक्ति की आवश्यकता थी और यह शक्ति, शिव-शक्ति से ही प्राप्त हो सकती थी जैसा कि ब्रह्मा ने भी देवताओं से कहा था। फिर यह आख्यान पुराणों में उपलब्ध था ही, कवि ने उसी के अनुसार इसे काव्य का रूप दिया है। वस्तुतः शिव पार्वती का विवाह और प्रेम, मानवीय विवाह और प्रेम का मौलिक आदर्श उपस्थित करते हैं और देव सम्बन्धी दृष्टान्त द्वारा उनसे वृत्तियों में पवित्रता का आधान करते हैं जो कि मनुष्य का गृहनिर्माण करती हैं और मानव जाति के अस्तित्व को बनाये रखती हैं। (डा० कीथ—संस्कृत सा० का इतिहास)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कुमारसम्भव एक आदर्श काव्य

यह तो निर्विवाद ही है कि कालिदास पर आदिकवि वाल्मीकि का सबसे अधिक प्रभाव है, काव्य क्षेत्र में वे उनके ऋणी हैं। इस बात को कवि स्वयं स्वीकार किया है। इस महाकाव्य की रचना में भी कालिदास का आदर्श ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण ही रहा है। कालिदास के वसन्त वर्णन पर रामायण के किष्किन्धा काण्ड के वसन्त चित्रण की स्पष्ट छाप है। कालिदास ने वसन्त के आगमन पर वासन्तिक शोभा का तथा उससे जन मानसोल्लास एवं पुनर्जीवन के जागरण का चित्र खींचा है, निश्चयतः यह रामायण उक्त स्थल से प्रभावित है। इसी प्रकार रतिविलाप रामायण के तारा-विलाप से तथा तारकवध रावण वध से प्रभावित है, यह युद्ध वर्णन पर भी, यदि कालिदास द्वारा रचित है, रामायण का ही प्रभाव है। केवल ये प्रसंग नहीं, कालिदास के सौन्दर्य और प्रेम चित्रण, विवाह और सम्भोग शृंगार रामायण के आदर्श से प्रभावित हैं। इसी प्रकार कवि की अलंकार योजना भी वाल्मीकि के आदर्श को सामने रखकर चली है। कवि ने कहीं भी अलंकारों का प्रयोग साध्य के रूप में नहीं किया है। भावों को उद्दीप्त करने उनमें चारुता लाने के लिए अनायास उपस्थित अलंकारों का ही कवि ने प्रयोग किया है। यह ठीक है कि कालिदास के समय तक रामायण की अपेक्षा अधिक अलंकारों का विकास हो चुका था, इसी अनुपात में कालिदास ने इनका प्रयोग किया है। ये भाव और भाषा के विकास में स्वतः आ गये हैं, प्रयत्लसाध्य कहीं नहीं हैं।

प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में तो कालिदास आद्योपान्त रामायण के ऋणी हैं। अतएव कालिदास की रचना में प्रकृति का जितना भव्य चित्रण आलम्बन रूप में हुआ है, उतना उद्दीपन रूप में नहीं। कुमारसम्भव का हिमालय वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। भवभूति की तरह कालिदास ने प्रकृति का भयावह रूप उतना अधिक चित्रित नहीं किया है जितना कि उन्होंने उसके मधुर रूप का भव्य वर्णन किया है। उनकी प्रकृति जीवित प्रकृति है और मानव जीवन से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मानव की चिरसंगिनी है। सुख-दुःख में उसका साथ देने वाली है।

वाल्मीकि की तरह ही कालिदास रसवादी कवि हैं। रसाभिव्यक्ति ही उनके काव्य का लक्ष्य है। भाषा और शैली के क्षेत्र में भी वे वाल्मीकि के अनुयायी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

। अतएव उनकी भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहमयी, मधुर एवं सरस है। दीर्घ समासों, श्लेष प्रधान शब्दों एवं सांकेतित शब्द प्रयोगों से रहित है। शैली सर्वत्र प्रासादिक स्वाभाविक एवं सुबोध है, अतः यह कहा जा सकता है कि कुमारसम्भव का आदर्श काव्य रामायण ही रहा है।

रसाभिव्यक्ति

काव्य से सभी सहृदयों को रसानुभूति होती है। पर यह काव्य क्या है और उससे होने वाली आनन्दानुभूति का भी क्या स्वरूप है ? इस सम्बन्ध में अद्यावधि मतैक्य नहीं देखा जाता है। इसको जिसने जितना जिस रूप में समझा है उसने उसे उस रूप में उतना ही बताया है। फलतः "भिन्न-रुचिर्हि लोकः" इस उक्ति के अनुसार इस सम्बन्ध में अब तक सर्वसम्मत सिद्धान्त निर्धारित नहीं हो सका है। वस्तुतः काव्य की आनन्दानुभूति वाणी का विषय हो ही नहीं सकती। काव्य के विषय में आज ही नही, प्राचीनकाल से लोगों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहे हैं। यद्यपि साहित्यवेत्ताओं ने काव्य की व्याख्या की है, उसको कुछ शब्दों की परिधि में बाँधने का प्रयास किया है, पर वह सर्वमान्य नहीं हो सका है।

काव्य की आत्मा क्या है जिस पर आनन्दानुभूति निर्भर है ? इस विषय को लेकर भारत में मुख्यतया पाँच सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं। आनन्दवर्धनाचार्य ने काव्यात्मा को ध्वनि या व्यंग्यार्थ बतलाया है, जबकि आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है। कहीं रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द को ही काव्य कहा गया है, तो कहीं विशिष्ट पद-रचना को ही काव्य की आत्मा माना गया है। इसी प्रकार भामह दण्डी आदि आचार्य अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व मानते हैं तो वक्रोक्ति जीवितकार वक्रोक्ति को ही काव्यात्मा मानने के पक्ष में हैं। इस प्रकार सभी आचार्य अपने मत की पुष्टि में अनेक प्रमाण प्रस्तुत कर काव्य का सर्वस्व निर्धारित करते हैं, पर आज जो मत सर्वमान्य प्रतीत होता है जिसने कि अपनी काव्य परिभाषा में सभी अन्य मतों को यथोचित स्थान दिया है, वह है आचार्य मम्मट का काव्य लक्षण सम्बन्धी मत। मम्मट के अनुसार दोष रहित पर सगुण शब्दार्थ ही काव्य है जिसमें अलंकार यदि स्फुट न हों तो भी वह काव्य कहा जा सकता है, पर उत्तम काव्य वह होगा जो व्यङ्ग्यार्थ प्रधान हो, रस और भाव व्यङ्ग्य ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होते हैं, अतएव मम्मट के अनुसार ध्वनि प्रधान काव्य ही उत्तम काव्य होता है।

कालिदास का भी काव्य-नैपुण्य, किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने की अपेक्षा उसे सूचित या प्रतीतिगम्य अथवा ध्वनित करने में ही अधिक देखा जाता है, उन्होंने अनेक भावों की इसी रूप में व्यञ्जना की है। 'कुमारसम्भव' के इस श्लोक में—

> एवं वादिनि देवर्षो पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
> लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

पार्वती के मनोगत प्रेम एवं आनन्द के छिपाने के प्रयत्न की तथा उनकी कन्याजनोचित लज्जा भाव की कितनी सुन्दर व्यञ्जना की गयी है। प्रस्तुत श्लोक में न कोई अलंकार है और न कोई विशिष्ट पद रचना ही, पर यह व्यङ्ग्य प्रधान उत्तम काव्य है। पार्वती द्वारा कमलपत्रगणना से कवि ने उनके मनोगत भावों की कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। वस्तुतः कालिदास की कलात्मक अभिरुचि इसी प्रकार की व्यञ्जना वृत्ति में सर्वत्र देखी जाती है। उनका यह शब्द-लाघव उनकी उत्कृष्ट काव्य शैली का परिचायक है। उनकी सरस रमणीय रचनाओं में जो नूतन आनन्द की उपलब्धि होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

वस्तुतः रस-सृष्टि में कालिदास अद्वितीय हैं। श्रृंगार रस के सम्भोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही पक्षों को जिस सरस, सुबोध शैली में कालिदास ने अभिव्यक्त किया है वह अन्यत्र किसी भी कवि में न मिल सकेगा। उनका श्रृंगार-वर्णन अद्वितीय है, सर्वथा अनूठा है, श्रृंगार-व्यञ्जना में तो वस्तुतः कालिदास से बढ़कर कोई कवि हो ही नहीं सकता। अन्य करुण वीर आदि रसों की भी कवि ने सुन्दर व्यञ्जना की है। 'कुमारसम्भव' का रति विलाप तथा रघुवश का 'अज विलाप' करुण रस के निदर्शन हैं। भगवान् शंकर की तृतीय नेत्र की ज्वाला से भस्म हुए कामदेव के शरीर के समीप बैठी हुई रति का यह कथन कितना कारुणिक है—

> गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः ।
> अहमेव दशेव पश्य मामबिसह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

रति की मनोदशा का कितना मार्मिक एवं हृदय-द्रावक चित्रण हुआ है, सी प्रकार इन्दुमती के निधन पर 'अज' का यह कथन कितनी गम्भीर करुणा से व्याप्त है—

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

शृंगार एवं करुण रस के इतने सजीव, भावपूर्ण, चित्ताकर्षक एवं भावोत्पादक चित्र चित्रित करने की सफलता का श्रेय कवि की अद्भुत काव्य-ली को ही है ।

इसी प्रकार भस्मीभूत पति को सम्बोधित करती हुई रति के इस म्बोधन में कितनी मार्मिकता और वेदना भरी हुई है । वह उसे पुकारती हुई हती है—

कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् ।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥

जबकि तुमने मेरा कभी अपराध नहीं किया और मैंने भी कभी तुम्हारे तिकूल आचरण नहीं किया है तो फिर अब तुम्हारे लिए सकरुण विलाप रती हुई इस अपनी प्रिया को आप दर्शन क्यों नहीं देते ।

पर जब वह जीवन से बिल्कुल निराश हो जाती है तब काम सखा वसन्त वह पुनः कहती है—

कुसुमास्तरणे सहायतां बहुशः सौम्य गतस्त्वमावयोः ।
कुरु सम्प्रति तावदाशु मे प्रणिपाताञ्जलियाचितश्चिताम् ॥

आप तो सदा हम दोनों की पुष्प शय्या बनाने में हमारे सहायक होते थे । सी प्रकार अब आपसे मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि आप मेरी शीघ्र ता तैयार कर दें जिससे कि मैं उनके पीछे ही जा सकूँ ।

इसी प्रकार कुमारसम्भव के निम्नलिखित श्लोकों में कालिदास के करुणा-वित चित्र देखे जा सकते हैं—

अयि सम्प्रति देहि दर्शनं स्मर ! पर्युत्सुक एष माधवः ।
दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥
तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसम्बाधमुरो जघान सा ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अन्य उपाय न देखकर वह पुनः काम के सखा वसन्त से कितनी क वाणी में कहती है—

तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता वन्धुजनप्रयोजनम् ।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम् ।।

क्योंकि—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।।

इसी प्रकार इन्दुमती के लिए विलाप करते हुए अज के इस कथन कितनी करुणा है—

विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ।।

विलाप करते हुए अज कहते हैं कि सम्भवतः तुम मुझे शठ प्रतारणा कु समझकर ही बिना मुझसे विदा लिए यहाँ से फिर कभी न लौटने के चली गयी हो—

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोक मसन्निवृतये यदना पृच्छ्य गतासि मामितः ।।
गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ।।

श्रृंगार रस के दोनों पक्षों के वर्णन में तो कोई भी कवि उसकी स नहीं कर सकता। कालिदास की सभी रचनाओं में श्रृंगार रस को ही प्रमु दी गयी है। मेघदूत और शाकुन्तल इसके साक्षात निदर्शन है। एक नहीं सै श्लोक श्रृंगार रस के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कुम सम्भव के भी अष्टम सर्ग में सम्भोग श्रृंगार का चित्रण किया गया है, यह उद्धृत यह श्लोक दृष्टव्य है—

व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।
प्रवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ।।
आत्मानालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ।।

इसी प्रकार कवि को जहाँ कहीं भी वीर, शान्त, अद्भुत आदि रसों अभिव्यक्ति का अवसर मिला है, वहाँ भी उनकी रसाभिव्यक्ति-पटुता दर्श

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है। तात्पर्य यह है कि कालिदास रससिद्ध कवि हैं। जिस किसी भी रस का चित्रण उन्होंने किया है, उसका पूर्ण परिपाक हमें उनकी सभी रचनाओं में देखने को मिलता है।

काव्य शैली

रस और भावों के वैशिष्ट्य के साथ-साथ कालिदास की शैली की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी प्रासादिकता। उनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रसाद गुण देखने को मिलता है। आचार्यों ने प्रसाद गुण के सम्बन्ध में कहा है—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धन मिनानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि सूखी लकड़ी को तत्काल ही व्याप्त कर लेती है इसी प्रकार काव्य का जो गुण सहृदयजनों के हृदय को तत्क्षण अर्थात् श्रवण काल में ही व्याप्त कर लेता है, वह प्रसाद गुण है। इस गुण का उपयोग सभी रसों तथा रचनाओं में होता है। वस्तुतः कालिदास की रचनाओं की सर्वलोकप्रियता का एकमात्र कारण उनकी यही प्रासादिक शैली है जो कि सर्वत्र लालित्यपूर्ण एवं परिष्कृत है। कालिदास की सभी रचनाओं में वैदर्भी रीति का ही प्रयोग मिलता है, अतः कालिदास के विषय में यह सूक्ति सर्वथा सत्य है—

"वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।"

वैदर्भी रीति में मधुर-मधुर शब्दों का प्रयोग होता है, रचना सदा लालित्यपूर्ण होती है, समासों का या तो सर्वथा अभाव ही रहता है अथवा समास युक्त बहुत थोड़े ही शब्द रहते है। लम्बे-लम्बे समासों के अभाव के कारण ही कालिदास के काव्य में सरलता एवं मनोरमता देखी जाती है, अतएव पद-श्रवण काल में ही उसका अर्थावबोध हो जाता है।

निम्नलिखित श्लोक कालिदास की वैदर्भी रीति एवं प्रासादिक शैली के सुन्दर उदाहरण हैं।

इतिध्रुवेच्छामनुशा सती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्॥
यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव षङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पुनर्गृहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणांगनासु च ॥
स्थिता क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥
किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥

इसी प्रकार प्रायः सर्वत्र इनकी रचना में छोटे-छोटे समासों का ही प्रयोग मिलेगा । शब्दों की मधुरता तथा उसके रसानुगुण प्रयोग के लिए तो इनकी रचना का प्रत्येक श्लोक उद्धृत किया जा सकता है । इनकी इस प्रासादिक शैली के ही कारण इनका काव्य इतना मधुर, सरल एवं रमणीय दृष्टिगत होता है। कर्कश या श्रवणकटु शब्दों का प्रयोग तो सम्भवतः कहीं नहीं मिलेगा । प्रत्येक शब्द चुना हुआ, सुव्यवस्थित भावानुकूल एवं रसानुकूल ही प्रयुक्त हुआ है। इनकी रचना में क्लिष्ट कल्पना और दुरूह तथा अप्रसिद्ध प्रयोगों का सर्वथा अभाव है । पद-लालित्य के साथ-साथ शब्दों की ध्वन्यात्मकता कालिदास की अपनी अनौखी विशेषता है । वे किसी भी बात का या भाव का लम्बा-चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप से उसकी व्यञ्जना कर देते हैं । कालिदास का यह शब्द-लाघव वस्तुतः उनकी कलात्मक अभिरुचि का परिचायक है।

अलंकार योजना

वस्तुतः "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" के अनुसार काव्य की आत्मा रस ही है, और यह रस सदा व्यङ्ग्य ही होता है और व्यङ्ग्य प्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य कहा गया है । पर कुछ आचार्यों की दृष्टि में 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्' इस उक्ति के अनुसार काव्य में अलंकारों की सज्जा भी आवश्यक है । इस दृष्टि से कालिदास के काव्य में अलंकार सौन्दर्य भी देखा जा सकता है । पर इस विषय में यह अवश्य ज्ञातव्य है कि कालिदास की रचनाओं में उन्हीं उतने ही अलंकारों का प्रयोग है जो कि स्वतः उनकी रचना के प्रवाह में आ गये हैं, कवि ने कहीं भी उनको लाने का प्रयास नहीं किया है, अर्थात् उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक है, कृत्रिम या हठात् प्रयुक्त नहीं । अलंकारों में भी अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों की योजना में अधिक कृत्रिमता रहती है, अतएव कालिदास जैसे रस-सिद्ध कवि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ने केवल उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ वे स्वतः रचना के प्रवाह में स्वाभाविक स्फूर्ति से आ गये हैं, शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत ही कम किया है। यद्यपि कुमारसम्भव में वहुत्र अनुप्रास की छटा देख पड़ती है, पर वह हठात् लाई नहीं गई है कवि की भावाभिव्यक्ति में वह स्वतः आ गई है अन्य शब्दालंकारों में 'यमक' का प्रयोग वहुत ही कम हुआ है, इसे तो कवि ने जानवूझकर ही नहीं आने दिया है, क्योंकि यमक के लिए विशिष्ट शब्द खोजकर लाने पड़ते हैं। अतएव रचना में कृत्रिमता आ जाती है। इसी प्रकार कवि ने श्लेष का प्रयोग भी बहुत ही कम किया है क्योंकि द्वयर्थक शब्दों की योजना के लिए विद्वत्ता ही अधिक आवश्यक है, रसिकता नहीं। श्लेष के प्रयोग में बुद्धि वैभव भले ही देख पड़े पर हृदय से दूर की वस्तु है। महाकवि कालिदास इस प्रकार की बुद्धि प्रधान शाब्दी क्रीड़ा में कभी नहीं पड़े जो कि उनके उत्तरवर्ती भारवि, माघ आदि कवियों में देखी जाती है। निष्कर्ष यह कि इनकी कृतियों में बुद्धि-प्रधान श्लेष, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग बहुत ही कम है।

वस्तुतः कहना तो यह है कि कालिदास के शब्दों की योजना स्वभावतः इतनी सुन्दर वन पड़ी है कि भाषा स्वतः ही ललित एवं अनुप्रासमयी हो गई है और फिर भी उसमें कहीं कृत्रिमता एवं क्लिष्टता नहीं आई है; यथा—

दिशि देवतात्मा। दोग्धरि दोहदक्षे। तुषारस्रुतिधौत रक्तम्। नख रन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः। केसरिणां किराताः। कपोलकण्डूः करिभिः। वनेचराणां वनिता सखानाम्। लाङ्गूल विक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचि गौरैः। मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मनुरूपां विधिनोपयेमे। वन्धु प्रियां वन्धुजनो जुहाव सूर्यांशुभिर्भिन्न मिवारविन्दं वपुर्विभवतं नवयौवनेन। कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य। सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज। पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्। निषेदुः शैलेयनद्धेसु शिलातलेषु।

इत्यादि उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि कालिदास की भाषा स्वभावतः सरस, मधुर एवं अनुप्रासमयी है।

अर्थालंकारों के स्वभावोक्ति एवं वक्रोति ये दो मुख्य भेद हैं। कवि ने इनका विशेष रूप से प्रयोग किया है। स्वभावोक्ति में कवि ने दृष्ट या कल्पित वस्तुओं या व्यक्तियों का यथार्थ एवं रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है। कालिदास की कल्पना का रम्यविलास वक्रोक्तिमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थान्तरन्यास और अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों में देखा जाता है। पृथ्वी से आकाश तक उपलब्ध साधारण जनों के लिए नीरस और उपेक्षणीय पदार्थों में भी सौन्दर्याधान करने वाली कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति ने इन अलंकारों के प्रयोग में भी विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। इन अलंकारों में भी विशेषतया भारतीय आलोचकों ने उपमालंकार के प्रयोग में कालिदास को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। किसी माघ कवि के प्रशंसक ने—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

यह लिखकर उपमा के प्रयोग में कालिदास को सर्वश्रेष्ठ कवि बताया है। यद्यपि कालिदास उपमा के प्रयोग में सर्वश्रेष्ठ है, इसमें सन्देह नहीं, पर उपमा का प्रयोग ही कालिदास की सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण नहीं हो सकता। कालिदास की उपमा योजना, सरलता, रम्यता, विविधता, बहुज्ञता एवं मार्मिकता की दृष्टि से बेजोड़ है सही, पर यही उनकी प्रधान विशेषता नहीं है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनकी संविधान-कुशलता, रस योजना, भावाभिव्यञ्जना ध्वन्यात्मक एवं प्रासादिक शैली भी अद्वितीय ही है। उनकी उपमायें भावानुकूल श्लेष की जटिलता से रहित अनूठी एवं विषयानुरूप हैं। उनकी उपमायें इतनी स्पष्ट एवं नित्य व्यवहार में देखी जाने वाली होने के साथ ही शास्त्रीय विषयों से अनुप्राणित हैं कि उनसे वस्तु का साक्षात् चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है।

पर 'उपमा कालिदासस्य' इस सुभाषोक्ति में उपमा शब्द का प्रयोग उसके प्रचलित व्यापक अर्थ में न होकर सभी सादृश्यमूलक अलंकारों के लिए हुआ प्रतीत होता है, अतः यहाँ उपमा शब्द में हमें सभी सादृश्यमूलक उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों को ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि इन अलंकारों के प्रयोग में भी कालिदास की कल्पना उतनी ही कमनीय है जितनी कि साक्षात् उपमा के प्रयोग में। रघुवंश और कुमारसम्भव में इन सभी अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है। उनका मेघदूत रमणीय उत्प्रेक्षाओं का आगार है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कथन है कि कालिदास ने उपमालंकार से बढ़कर सुन्दर प्रयोग अर्थान्तरन्यास का किया है, अतएव

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नके अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गये है, किसी कवि का थन है—

उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम।
अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते ॥

अर्थान्तरन्यास का सुन्दर प्रयोग उनकी सभी रचनाओं में देखा जाता है कन्तु रघुवंश और कुमारसम्भव में इसकी अधिकता है जैसा कि आगे उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।

कालिदास की उपमायें अद्वितीय हैं इसमें सन्देह नहीं। जब वन से लौटते हुए दिलीप तथा नन्दिनी के स्वागतार्थ आगे सुदक्षिणा उपस्थित होती है तो उन दोनों के बीच नन्दिनी उसी प्रकार शोभा पा रही थी जैसे दिन और रात्रि के बीच संध्या शोभा पाती है। उपमा की यह कल्पना कितनी स्वाभाविक और यथार्थ है। रक्ताभवर्ण स्त्रीलिंग नन्दिनी-संध्या है, तेजस्वी पुल्लिग राजा दिलीप-दिन है तथा स्त्रीलिंग सुदक्षिणा रात्रि के समान है, सर्वांशतः पूर्णोपमा है 'दिनक्षपामध्यगतेव संध्या'। यथार्थता के साथ-साथ उनकी उपमायें प्रसंगानुकूल भी हैं। इन्दुमती अपने स्वयंवर में जिस-जिस राजा को छोड़कर चली जाती थी, उस उसके मुख पर निराशा की कालिमा उसी प्रकार छा जाती थी जैसे राजपथ की वे अट्टालिकायें जिन्हें रात्रिकाल में आगे बढ़ती हुई दीपशिखा ने पीछे छोड़ दिया है। यह कालिदास की सर्वश्रेष्ठ उपमा है। इसीलिये उनका नाम ही 'दीपशिखा' पड़ गया है।

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।

कवि की उपमायें वाण, सुबन्धु और हर्ष की भाँति कहीं भी श्लेष मूलक नहीं हैं जिन्हें समझने में पाठक को सोचना पड़े, वे बड़े सहज साम्य पर ढली हुई हैं। कालिदास शास्त्र पारङ्गत कवि थे, अतएव शास्त्रों के व्यासङ्ग से भी उन्होंने कई सुन्दर उपमाओं की कल्पना की है। नन्दिनी के पीछे-पीछे चलने वाले दिलीप की पत्नी की श्रुति के पीछे-पीछे चलने वाली स्मृति से उपमा दी गयी है, "श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्"। कई स्थानों पर कवि ने अमूर्त कल्पनाओं एवं मनोव्यापारों से भी उपमायें ली हैं। वशिष्ठादि ऋषियों द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रयुक्त उपमायें प्रायः उनके वातावरण, विद्याभ्यास एवं ऋषि-जनोचित अ
तथा व्यवहार से अनुप्राणित हैं। उपमा के कुछ निम्नलिखित प्रयोग द्रष्टव्य

सम्यक् प्रयोगाद परिक्षतायां नीता विवोत्साह गुणेन सम्पत्।
विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव।
पुपोष लावण्यमयन्वि शेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।
प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कार वत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।
तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां महौषधिं नक्तमिवात्म भासः।
उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यां शुभिर्भिन्नमिवार विन्दम्।
स्वरेण तस्याम मृतस्रुतेव, श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि कुछ विद्वानों का कथन है
कालिदास का वैशिष्ट्य उपमा में नहीं अपितु अर्थान्तरन्यास और उत्प्रे
लंकारों के प्रयोग में अधिक देखा जाता है। वस्तुतः कालिदास अलंकार
न थे। उनके काव्य प्रवाह में जो भी अलंकार स्वभावतः आ गये हैं वे
सुन्दर हैं, जबकि कालिदास का उद्देश्य अलंकारों का प्रयोग करना न
कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में ही कई स्थलों पर अर्थान्तरन्यास और उत्प्रे
लंकारों का सुन्दर विन्यास देखा जाता है; यथा—

अर्थान्तरन्यास

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।
क्षुद्रेपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।
ऋते कृशानो र्नहि मन्त्रपूत मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्।
अभ्यर्थनाभङ्गमयेन साधु र्माध्यस्थ मिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।
निनिन्दरूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता। ५/१
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणः। ५/४
काईप्सितार्थ स्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्। ५/६
भवन्ति साम्येऽपि निविष्ट चेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः। ५/३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उत्प्रेक्षा

स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।
अकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ।
तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ।

रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव वाल्ये ।
सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी गतेषु लीलाञ्चित विक्रमेषु ।
शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातु र्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ।
रराज तन्वी नवलोमराजिः, तन्मेखला मध्यमणेरिवार्चिः ।
वलित्रयं चारु बभार बाला, कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेव ।

इसी प्रकार प्रथम सर्ग के श्लोक संख्या ५ परिकर, ६ उदात्त, ८ रूपक, १० परिणाम, विभावना, ११ काव्यलिङ्ग, १५ स्वभावोक्ति, २७ प्रतिवस्तूपमा, ३३ निदर्शना, ३४ परिवृत्ति, ३६ व्यतिरेक, ३७ अनुमान, ४० अतिशयोक्ति ४४ प्रतीप आदि अलंकार भी देखे जा सकते हैं। परन्तु ये अलंकार प्रयत्न-साध्य न होकर रचना प्रवाह में स्वतः आ गये हैं। कवि ने इसी प्रकार अन्य सादृश्य-मूलक दृष्टान्त, रूपक आदि का भी अपनी रचनाओं में सुन्दर प्रयोग किया है। इसलिए यह न समझना चाहिए कि कालिदास का वैशिष्ट्य केवल उपमालंकार में ही है, अपितु यहाँ उपमा का अर्थ सादृश्य मूलक अलंकार ही है। कालिदास चमत्कारवादी कवि न थे अतएव उनके काव्य में विरोधमूलक—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति आदि के प्रयोग क्वाचित्क ही हैं। यही कारण है कि कवि ने श्लेष का भी बहुत कम प्रयोग किया है। वस्तुतः कालिदास रससिद्ध कवि है, उनमें अलंकारों का चमत्कार देखना व्यर्थ है।

प्रकृति चित्रण

अन्य काव्य गुणों के साथ-साथ महाकवि कालिदास का प्रकृति-चित्रण भी अप्रतिम एवं अतिरमणीय है। वस्तुतः कालिदास की कला का विकास ही प्रकृति वर्णन से आरम्भ होता है, और उनकी यह अभिरुचि उत्तरोत्तर परिवर्धित एवं परिमार्जित होती गयी है। कालिदास की सर्व प्रथम रचना ऋतुसंहार है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिसमें कवि ने विभिन्न ऋतुओं से मानवों पर पड़ने वाले प्रभावों का तथा उसके परिणामों का वर्णन किया है। प्राकृतिक दृश्यों पर चेतन धर्म का आरोप कर उनका आलंकारिक वर्णन किया गया है और कहीं-कहीं पर प्रकृति का आलम्बन रूप में भी वर्णन किया है। पर कुमारसम्भव और रघुवंश में कवि के प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण में अन्तर प्रतीत होता है। यहाँ उन्होंने इस तथ्य को प्रस्तुत किया है कि समस्त चराचर सृष्टि में एक ही तत्व समाविष्ट है, और वह चेतन है। मानव के साथ प्रकृति का अविचल सम्वन्ध है। मानव अपने सुख-दुःख का रूप प्रकृति दर्पण में देखता है। प्रकृति भी मानव से संश्लिष्ट है, उसके प्रति वह पूर्ण सहानुभूति रखती है। उसके दुख में वह दुखी होती है और सुख में आनन्द का अनुभव करती है। कोई भी मानव व्यापार प्रकृति के क्षेत्र से वाहर नहीं है। इस प्रकार कवि ने सर्वत्र अपनी रचनाओं में प्रकृति और मानव में घनिष्ठ सम्वन्ध स्थापित किया है तथा प्रकृति का संश्लिष्ट एवं रूप योजनात्मक चित्रण किया है। मेघदूत तो प्रकृति वर्णन का ही काव्य है, उसका पूरा कथानक प्रकृति प्रांगण में ही चलता है। विशेष रूप से 'शाकुन्तल' में तो प्रकृति ही सव कुछ है।

कालिदास के काव्यों में प्राकृतिक एवं दैवी विभूतियों के वीच साम्य स्थापित किया गया है। कुमारसम्भव में एक दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि चन्द्रमा मानो अपनी किरण रूपी अंगुलियों से रजनी नायिका के अन्धकार रूपी केशपाश को हटाकर उसके अर्द्ध निमीलित कमल नेत्र वाले मुख का चुम्बन कर रहा हो।

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥

इसमें सन्देह नहीं कि कवि ने प्रकृति के मधुर एवं भव्य रूप का ही चित्रोपम वर्णन किया है, उन्होंने प्रकृति के भयावह रूप की ओर नहीं देखा है। वस्तुतः वाह्य दृश्यों के रूपयोजनात्मक चित्रण में कालिदास अद्वितीय हैं। उनके विशद एवं सजीव प्रकृति वर्णन को पढ़कर हमारे सामने उसका स्पष्ट चित्र प्रस्तुत हो जाता है। रघुवंश का यह प्रकृति वर्णन कितना सरस एवं हृदयग्राही है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयीयष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र मालासितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचिन्तान्तरेव ॥

यमुना की तरंगों में मिलता हुआ गंगा का प्रवाह ऐसा प्रतीत होता है मानों मोतियों की लड़ी में दैदीप्यमान नीलम पिरो दिये गये हों और श्वेत कमल की माला में मानो बीच-बीच में नील कमल पिरो दिये गये हों।

मेघदूत का यक्ष प्रकृति को अपनी प्रियतमा के रूप में ही देखता है। प्रियङ्गु लता ही उसकी प्रियतमा का कोमल एवं सरस विकसित अंग है। चकित हरिणियों के दृष्टिपात उसकी प्रियतमा के नेत्र कटाक्ष है, चन्द्रमा उसका मुख है, मयूर पुच्छ केशपाश तथा नदियों की लोल लहरें भ्रू-विलास हैं, इत्यादि ।

कालिदास की दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य का माप-दण्ड प्रकृति ही है, केसर वृक्ष के नीचे खड़ी शकुन्तला के कारण वह भी लतासनाथ प्रतीत होता है। क्योंकि शकुन्तला की भुजायें उस लता की कोमल टहनियाँ हैं। अधरोष्ठ की लालिमा किसलय की रक्तिमा है, और अंग-प्रत्यंग पर व्याप्त यौवन ही उसकी कुसुम समृद्धि है।

कवि ने प्रायः सर्वत्र यही मान्यता प्रकट की है कि मानव सौन्दर्य से बढ़कर प्रकृति सौन्दर्य है। मानव सौन्दर्य की अभिवृद्धि प्रकृति सौन्दर्य से ही होती है, और प्रकृति उसके सौन्दर्य का एकमात्र मापदण्ड है।

कालिदास ने प्रकृति को कहीं भी मूक, चेतनाहीन एवं निष्प्राण नहीं माना है, वह उसकी रचनांओं में मानवों के समान ही सचेतन एवं सजीव है तथा उसके सुख-दुख में समवेदना प्रकट करती है। राजा दिलीप को वन में जय ध्वनि करने वाले सेवकों से रहित देखकर पार्श्वस्थ वृक्ष ही मानो पक्षियों की ध्वनियों के व्याज से राजा के लिए जय जय ध्वनि कर रहे थे—

उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ।

वायु से आन्दोलित लतायें ही मानों राजा के स्वागत के लिए उन पर फूलों की वर्षा कर रही थीं और हरिणियों ने भी दयालु राजा के सुन्दर शरीर को देखकर अपने नेत्रों के प्रकाम विस्तार का फल प्राप्त कर लिया था—

विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इसी प्रकार वायु भी आतप क्लान्त अनातपत्र राजा की सेवा रहा था।

प्रकृति और मानव में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति ही मानव आभूषण है। वह अपने को आभूषित करने के लिए प्रकृति से ही उप ग्रहण करता है इसीलिये जब भगवती तपस्या में प्रवृत्त हुई तब उन्होंने अ सभी विलास चेष्टाओं को धरोहर रूप में प्रकृति के पास रख दिया था—

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया, द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च॥

तपस्या में संलग्न देवी की तपस्या की साक्षिणी अन्धकारमयी रात्रियां तो थीं जो कि बिजली की चमक रूपी आँखों से उनके घोर तप को देखती थी

व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैः महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः।

प्रकृति पर तपोनिरता देवी का अटूट प्रेम था अतएव वे तपोनियम श्रान्त होकर भी, अपने आश्रम के वृक्षों में जल दिया करती थीं और वात भाव से उन्हें विवर्धित किया करती थीं—

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।

नीवारधान्य खिलाकर आश्रम के मृग शावकों को पालती थीं अतए निर्भीक होकर उनके आसपास घूमते रहते थे।

अरण्य बीजाञ्जलि दानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः

इसी प्रकार के प्रकृति के साहचर्य के अनेक उदाहरण इस काव्य में मि हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगताम्॥
वने चराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः॥
यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरुषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति॥
भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डबर्हः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान् परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥

महाकवि कालिदास ने हिमालय वर्णन करते हुए आलम्बन रूप में प्रकृति जितना भव्य चित्र प्रस्तुत किया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है ।

इसी प्रकार तृतीय सर्ग में वासन्तिक शोभा और उसके मादक प्रभाव का वि ने कितना मनोमुग्धकारी चित्रण किया है । यह इन श्लोकों में दृष्टव्य है·—

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे ।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान् नामाक्षराणीव मनोभवस्य ॥
बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद् बभुः पलाशान्यति लोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥
लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य ।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलञ्चकार ॥
मृगाः प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः ।
मदोद्धताः प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः ॥
तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।
काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः ॥
मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥
पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत् प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः ।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥

इसी प्रकार वासन्तिक शोभा और चराचर पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को ताते हुए कवि ने प्रकृति का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है ।

कालिदास की रचनाओं में प्रकृति वर्णन दोनों ही रूपों—आलम्बन और द्दीपन में देखा जाता है, पर कवि ने अपने प्रकृति चित्रण में प्रकृति के नोहारी दृश्य का ही वर्णन किया है, बाण की भाँति विंध्यावटी जैसे भयावह श्यों का नहीं । यद्यपि बाण का प्रकृति-चित्रण समस्त संस्कृत साहित्यकारों श्रेष्ठ माना जाता है तथापि प्रकृति के रमणीय रूप का विविध परिधानों चित्रण करने में कालिदास को जो सफलता मिली है वह अन्य किसी कवि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

को नहीं—कुमारसम्भव का हिमालय वर्णन प्रकृति के आलम्बन रूप के चि का उत्कृष्ट उदाहरण है और उद्दीपन रूप के लिए उनका ऋतु संहार नि है। वैसे तो उनकी समस्त रचनाओं में ही प्रकृति के ये दोनों रूप मिल पर उक्त स्थल विशेषतया दृष्टव्य हैं।

वस्तु वर्णन की दृष्टि से कुमारसम्भव एक उच्च कोटि का काव्य हिमालय वर्णन से आरम्भ कर कवि ने इसमें तत्रत्य निवासिजनोपयोगी अ पदार्थों का वर्णन किया है, इससे हिमालय का सर्वोपकारक्षमत्व प्रकट होता ही है, साथ ही वहाँ के निवासी देवजनों के लिए ही नहीं अ वह वहाँ के पशु-पक्षियों आदि सभी जीवों के लिए एक सुखद वातावरण प्र कर उनके उपयोग की सभी वस्तुओं को देकर उन्हें स्वच्छन्द विहार के भी सुअवसर देता है।

हाथी जब अपनी खुजली मिटाने के लिए सरल वृक्षों पर अपने गण्डस्थ रगड़ते हैं तब उनकी खुजली तो मिटती ही है, साथ ही रगड़ने से जब वृक्षों की छाल उखड़ जाती है, तब उनमें से एक प्रकार का जो रस निक है उसकी सुगन्धि से हिमालय के शिखर सुगन्धित हो जाते हैं, किरात इन के नीचे बैठकर अपनी थकान मिटाते हैं :—

"कपोलकण्डूः करिभि र्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभी करोति॥
भागीरथी निर्झरशी कराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः।
यद्वायुरन्विष्ट मृगैःकिरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिवर्हः॥

वायु गंगा के जलकणों को लेकर वहने के कारण शीतल एवं देवदारु के सम्पर्क के कारण सुगन्धित एवं मयूरों के पंखों के उड़ाने के कारण गति से बहता है, इस प्रकार के शीतल मन्द एवं सुगन्धित वायु का सेवन शिकारी किरात अपनी थकान दूर करते हैं।

इसी प्रकार के वस्तु वर्णन सम्वन्धी अन्य श्लोक भी दृष्टव्य हैं :—

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का पूरा कथानक प्रकृति के उन्मुक्त वाता में ही घटित होता है। प्राकृतिक दृश्यों के लिए तथा प्रकृति और मान सम्बन्ध के लिए यह सर्ग दृष्टव्य है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वस्तुतः कालिदास अन्तः प्रकृति के जितने कुशल पारखी थे उतने ही वे वाह्य प्रकृति के सफल चित्रकार थे। उन्होंने प्रकृति सुन्दरी के इन द्विविध रूपों का दर्शन अपने उन्मीलित नेत्रों से स्वयं किया था, उनका प्रकृति चित्रण सुना सुनाया या परम्परा भुक्त नहीं है। उनके प्रत्येक काव्य और प्रत्येक नाटक में प्रकृति एक नवीन परिधान में चित्रित की गयी है। विविधता होते हुए भी उनके चित्रण में स्वाभाविकता एवं यथार्थता भी देखी जाती है। उसमें न कहीं अतिशयोक्ति है और न अति रञ्जना। उन्होंने सर्वत्र प्रकृति-चित्रण में अपने अनुभवजन्य ज्ञान का उपयोग किया है इसीलिए वे प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण कर सके है। कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वसन्त वर्णन के अवसर पर प्रकृति के उद्दीपन रूप का सुन्दर चित्रण देखा जाता है। मानव भावनाओं के उद्दीपक अलंकारों ने इस वर्णन को और भी आकर्षक वना दिया है। वैसे तो कालिदास के प्रत्येक ग्रन्थ में प्रकृति-चित्रण की इस विधा सुन्दर चित्र देखने को मिलते ही हैं, पर कुमारसम्भव का प्रथम और तृतीय सर्ग प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूप का निर्मल दर्पण ही है।

इसी प्रकार रघुवंश के तेरहवें सर्ग में प्रकृति का भव्य रूप देखने को मिलता है। नदियाँ समुद्र में मिलती हैं और समुद्र से उतुङ्ग तरंगें उठती हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रगल्भ नायिका रूपी नदियाँ समुद्र को अपना मुखार्पण कर रही हैं और समुद्र भी बदले में अपना तरंग रूपी अधर दान कर रहा है—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिवत्यसौ पाययते च सिन्धुः॥

निष्पन्दप्रवाहा मन्दाकिनी का कितना सुन्दर चित्रण है—

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा, सरिद् विदूरान्तर भावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥

इसी प्रकार के प्रकृति वर्णन के अनेक सुन्दर उदाहरण कालिदास की रचनाओं में भरे पड़े हैं। वे प्रकृति के सभी पक्षों के वर्णन में सिद्धहस्त हैं, इसीलिए उनको अन्तः प्रकृति के चित्रण में जितनी सफलता मिली है उतनी ही वाह्य प्रकृति चित्रण में भी। वस्तुतः महाकवि कालिदास का-सा भव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सरल एवं मनोहर प्रकृति चित्रण अन्य किसी भी कवि में नहीं देखा जाता। प्रकृति का ऐसा कोई सुन्दर पहलू नही जहाँ तक कवि की दृष्टि न गई हो। वैसे तो महाकवि कालिदास को कविता कामिनी का विलास कहा गया है क्योंकि शृंगार का जितना उदात्त एवं चित्रोपम वर्णन कालिदास ने किया है उतना किसी अन्य कवि ने नही। कालिदास का सर्वस्व शृंगार रस ही है, अतएव इनको शृंगार का कवि कहा गया है, पर उनके प्रकृति चित्रण के वैशिष्ट्य को देखकर वस्तुतः यदि उनको प्रकृति का कवि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

सौन्दर्य एवं प्रेम-चित्रण

प्रायः प्रत्येक कवि में सौन्दर्य एवं प्रेम के सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं। सौन्दर्य और प्रेम वस्तुतः काव्य का जीवन है अतएव इससे कोई कवि अछूता नहीं बच सका है। प्रायः सभी ने इन दोनों तत्वों के सुन्दर से सुन्दर चित्रों को अंकित करने का प्रयास किया है फिर भी कालिदास ने इन दोनों विषयों के वर्णन में जो अपनी अद्भुत काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सच तो यह है कि इन विषयों की सुन्दर कल्पनाओं एवं सशक्त वर्णनों ने ही कालिदास को शृंगार का सर्वश्रेष्ठ कवि बना दिया है।

कालिदास ने प्राकृतिक सौन्दर्य को ही श्रेष्ठ माना है। उनकी दृष्टि में स्वभाव सुन्दर व्यक्ति या वस्तु के लिए बाह्य सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता ही नहीं होती "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्" सहज सौन्दर्य सभी अवस्थाओं में सुन्दर एवं मनोरम लगता है "सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्"। कवि की दृष्टि में कृत्रिम प्रसाधनों से सहज सौन्दर्य विकृत ही होता है विवर्धित नहीं। प्रकृति से बढ़कर मानव के सौन्दर्य के लिए और क्या साधन हो सकता है। क्षण-क्षण में नवता धारण करने वाली प्रकृति में जितना मधुर सौन्दर्य एवं रमणीयत्व दृष्टिगत होता है, मानव सौन्दर्य उसी का एक अंग है। सौन्दर्य के विषय में कालिदास की सर्वत्र ऐसी मान्यता देखी जाती है। जहाँ कहीं जिस किसी भी कवि की रचना में सौन्दर्य चित्रण मिलता है वहाँ प्रकृति के ही द्वारा सौन्दर्य रचना की गई है, अन्य कृत्रिम प्रसाधनों को वहाँ कोई भी स्थान नहीं दिया गया है। कालिदास ने शकुन्तला इन्दुमती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लविका, उमा आदि जिस किसी भी नायिका का जहाँ कहीं भी सौन्दर्य त्रण किया है, वहाँ उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का ही चित्रण है। उनके जितने प्रसाधन हैं वे उन्हें प्रकृति से ही प्राप्त हुए हैं, अन्य कृत्रिम प्रसाधन वहाँ आने पाये हैं। स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन में प्राकृतिक उपमानों का ही उपयोग या गया है। उनकी शकुन्तला तो साक्षात् प्रकृति कन्या ही है उसका तो म ही प्रकृति से हुआ है, अतः उसके सौन्दर्य के लिए अन्य प्रसाधनों की कोई वश्यकता भी न थी।

स्वभावतः सौन्दर्यशालियों के लिए अलंकरण व्यर्थ है; अलंकार तो भाविक सौन्दर्य को अलंकृत न कर स्वयं उससे अलंकृत होते हैं। सौन्दर्य त्रण की दृष्टि से कालिदास न केवल नारी का ही सुन्दर चित्र खींच सके अपितु उन्होंने लता-वृक्षादिकों और पशु-पक्षियों का भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत या है। कुमारसम्भव में एतत् विषयक अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। खिये श्लोक संख्या—१३, ५४, ५५, ५६ आदि।

इसी प्रकार कालिदास का प्रेम चित्रण भी उच्चकोटि का है। चञ्चल न्द्रियज प्रेम पर उनकी आस्था नहीं है। शारीरिक सौन्दर्य ही स्त्रियों का म गौरव और चरम सौन्दर्य नहीं, ऐसी उनकी मान्यता प्रतीत होती है। मदेव के भस्म कर दिये जाने पर पार्वती जी ने मन ही मन अपने शरीर न्दर्य की निन्दा की और फिर घोर तपस्या द्वारा अपने रूप को सफल बनाने निश्चय किया "निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती", "इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां माधिमास्थाय तपोभिरात्मनः"।

कालिदास की दृष्टि से शारीरिक सौन्दर्य की परिणति सच्चे प्रेम में है प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता'। काम यदि कर्तव्य से विमुख करने वाला तो वह हेय है और कर्तव्य की उपेक्षा कर जो व्यक्ति कामवश हो जाता है ह दण्डनीय है। उनकी सभी कृतियाँ इस बात की स्पष्ट घोषणा करती हैं काम कर्तव्य का विरोधी नहीं और यदि वह कहीं ऐसा है तो शिव अर्थात् गल का विरोधी होने से वह भस्म कर दिया जायेगा। अतः स्पष्ट है कि कालिदास ने काम की अपेक्षा कर्तव्य को प्राधान्य दिया है और प्रेम का लभूत कारण शारीरिक सौन्दर्य नहीं अपितु पूर्व जन्म का संस्कार माना है मनो हि जन्मान्तरसंज्ञितज्ञम्"।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इसी प्रकार प्रेम की इतिश्री इसी जन्म में नहीं होती अपितु वह जन्म में भी साथ जाती है "सतीव योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुतांसम भवान्तरेष्वपि"। यह है कालिदास का प्रेम विषयक उच्च आदर्श, उनकी नाओं में ऐसे ही प्रेम की सर्वत्र प्रतिष्ठा की गई है।

कालिदास की दृष्टि में वह प्रेम, प्रेम नहीं, जिसमें कोई वन्धन कोई नियम नहीं, कोई त्याग नहीं, मर्यादा का पालन नहीं। जो प्रेम अक नर-नारी को एक-दूसरे पर मुग्ध करके संयम रहित बना देता है वह प्रेम वाच्य नहीं। कालिदास की दृष्टि में प्रेम की परिणति दाम्पत्य प्रेम में होत भ्रमरवृत्ति में नहीं। अर्थात् प्रेम की सार्थकता विवाह में और विवा सार्थकता सन्तानोत्पत्ति में है।

सौन्दर्य और प्रेम विषयक निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य है—

भगवती पार्वती ने जब यह देखा कि भगवान् शंकर जैसे योगेश्वर बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे तो अरूपहा अतएव उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया है, तब उन्होंने मन ही मन शारीरिक सौन्दर्य की निन्दा की और पुनः तपस्या द्वारा अपने में वह सौन्दर्य उत्पन्न करना चाहा जो भगवान् शंकर जैसे योगी को भी अच्छा क्योंकि चारुता वही है जो प्रियेषु सौभाग्यफला हो।

वस्तुतः तपः साध्य अन्तः सौन्दर्य प्राप्त किये बिना कोई अपने को पूर्ण सौन्दर्यशाली कहने का अधिकारी नहीं है, शारीरिक सौन्दर्य जो कि प्रसाधनों से उत्पन्न होता है, स्थायी नहीं होता, अतएव भगवती ने आग्रह माता-पिता से आज्ञा लेकर तप करने का निश्चय किया और अन्त में, सफलता भी मिली। कालिदास ने अपनी सभी नायिकाओं के ऐसे ही सौ का चित्रण किया है।

प्रेम के सम्बन्ध में भी कवि की यह निश्चित धारणा है कि विना और त्याग के सच्चा प्रेम नहीं मिलता, जैसा कि उन्होंने इस श्लोक के संकेत किया है—

> इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
> अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जब त्याग और तप के बिना सामान्य व्यक्ति और उसका प्रेम भी दुर्लभ होता है तब भगवान् शंकर जैसे योगी को पतिरूप में पाना और उनका अविचल प्रेम पाना, बिना तप के कैसे सम्भव हो सकता था।

सहज सुन्दर के लिए कृत्रिम प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं होती, जहाँ सौन्दर्य है वहाँ वह रहेगा ही, चाहे लौकिक प्रसाधन हो या न हो। तपोनिरता भगवती का मुख जटाओं से भी उतना ही मधुर लगता था जितना कि अलंकृत केशों से, क्योंकि उनमें स्वाभाविक सौन्दर्य था—

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभि रप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते॥

इस श्लोक में भगवती के सहज सौन्दर्य की कितनी मधुर व्यञ्जना की गई है—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे क्रमेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः॥

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण, प्रेम और सौन्दर्य के विषय में, कालिदास की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं।

छन्दः योजना

यद्यपि वंशस्थ, उपजाति, मन्दाक्रान्ता आदि छन्द ही महाकवि कालिदास को अधिक प्रिय हैं तथापि उन्होंने अपना रचनाओं में यथास्थान रस की दृष्टि से रसानुकूल शिखरिणी, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, वियोगिनी आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है। अतः स्पष्ट है कि कवि का सभी प्रकार के छन्दों के प्रयोग पर समान अधिकार है। वे यथास्थान सभी छन्दों के प्रयोग करने में सक्षम हैं, परन्तु भारवि की तरह वे अपने छन्द प्रयोग कौशल एवं छन्दों की विविधता दिखाने में रुचि नहीं रखते। भारवि ने जहाँ किरातार्जुनीय के पाँचवें सर्ग में लगभग सोलह प्रकार के विभिन्न छन्दों का प्रयोग कर अपने छन्दः शास्त्र विषयक ज्ञान का प्रदर्शन किया है, कालिदास ने महाकाव्य के लक्षण के अनुसार एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग कर अन्त में उसे बदल दिया है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि छन्दों के वैविध्य का ज्ञान उन्हें नहीं था, छन्दः शास्त्र विषयक उनकी श्रुतबोध की

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

एक छोटी-सी रचना इसका प्रमाण है कि वे छन्दः शास्त्र विषयक ज्ञान में पूर्ण थे, किन्तु वे इसका प्रदर्शन नहीं करना चाहते थे।

अन्य विशेषतायें

नैतिक तत्त्वों की विवेचना भी कालिदास की एक विशेषता रही है। राजदरबार में रहने के कारण उनको लोक व्यवहार एवं लोकनीति का अच्छा ज्ञान था। इस ज्ञान के फलस्वरूप ही उनके काव्य में स्थान-स्थान पर इतने सुन्दर नीति वाक्य मिलते हैं कि वे सुन्दर सूक्तियाँ बनकर लोक में प्रचलित हो गये हैं। उनकी ये सूक्तियाँ उनके अर्थगाम्भीर्य एवं उनके आध्यात्मिक तथा लौकिक ज्ञान की भी निदर्शन हैं। यह तो उनकी रचनाओं से स्पष्ट ही है कि महाकवि कालिदास प्रकृति के कवि हैं, सब कुछ वे प्रकृति की पृष्ठभूमि में ही कहना चाहते हैं, उनकी सूक्तियों में भी उनका यह प्रकृति प्रेम देखने को मिलता है। इन सूक्तियों में लोकनीतिपटुता के साथ-साथ मधुर व्यंग्य, हास्य एवं स्वाभाविकता भी देखी जाती है और इनमें कवि की भाषा सम्बन्धी समाहार-शक्ति, अत्यल्प शब्दों में गम्भीर एवं विस्तृत भावों की व्यञ्जना तथा जीवन की विविधताओं का चिन्तन भी देखा जाता है। इनकी ये सूक्तियाँ किसी वर्गविशेष या सिद्धान्तविशेष से सम्बन्धित न रहकर सभी के लिए सर्वत्र और सदा उपयोगी हैं। इनके सहारे प्रायः कवि ने सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक रूढ़ियों एवं सांस्कृतिक विचारों पर प्रकाश डाला है। अतएव ये सूक्तियाँ मानव कल्याणपरक एवं ज्ञानवर्धक होने से सबके लिए ग्राह्य बन गई हैं। कुछ निम्नलिखित सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

१. एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।
२. क्षुद्रेऽपि नूनं शरण प्रपद्ये ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।
३. अनन्त पुष्पस्य मधोर्हिचूते द्विरेफमाला सविशेष सङ्गा :।
४. कृते कृशानो र्नहि मन्त्रपूत मर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्।
५. अभ्यर्थना मङ्गमयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे।
६. विकारहेतौ सतिविक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।
७. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।
८. पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।
९. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

१०. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ।
११. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।
१२. भवन्ति साम्येपि निविष्ट चेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ।
१३. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।
१४. यतः सतां सन्नतगात्रि ! संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ।
१५. न रत्न मन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।
१६. मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।
१७. अलोकसामान्यमचिन्त्य हेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।
१८. न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।
१९. न केवलं यो महपोऽपभाषते श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।
२०. क्लेशः फलेन हि पुननवतां विधत्ते ।
२१. प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ।
२२. आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ।
२३. नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ।
२४. स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।
२५. दाग्तिास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ।
२६. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्वुधराश्च योनयः ।

कालिदास के पूर्ववर्ती कवि

यद्यपि संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति का बीज हमें वेदों से प्राप्त होता है, ऋग्वेद में कई ऐसे स्थल हैं जहाँ मन्त्रद्रष्टा ऋषि की वाणी कवि प्रतिभा का परिचय देती है। वेद की कुछ ऋचाओं में तत्कालीन कुछ दानशील उदार राजाओं की स्तुतियाँ हैं जिनमें कवित्व की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है। इसी प्रकार अथर्व आदि संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कुछ काव्योचित गाथायें उपलब्ध होती हैं। वैदिक आख्यानों को लेकर कुछ लौकिक काव्य नाटकों की रचनायें भी हुई हैं। तथापि संस्कृत महाकाव्यों के मुख्य स्रोत वाल्मीक रामायण और महाभारत ही हैं। आदि काव्य रामायण की काव्य-धारा ने ही कालिदास आदि कवियों का मार्ग दर्शन किया है, इसी प्रकार महाभारत के अनेक आख्यानों के आधार पर अनेक काव्य नाटकों की रचना हुई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इन दोनों उपजीव काव्यों के निर्माण के बाद संस्कृत महाकाव्यों की जो धारा प्रवाहित हुई, वह उत्तरोत्तर अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती रही है और न्यूनाधिक रूप में वह अब भी वर्तमान है। रामायण और महाभारत के समय से लेकर कालिदास के समय तक अनेक काव्यों की रचनायें हुई हैं, पर आज प्राय: वे सब काल कवलित हो चुकी हैं। उनके नाम या कुल श्लोकांश यत्र-तत्र सन्दर्भ ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। महाकवि कालिदास ने स्वयं आदि कवि वाल्मीकि का तथा नाटककार भास का स्मरण किया है। सुभाषित ग्रन्थों तथा कुछ आलंकारिक ग्रन्थों में वैयाकरण पाणिनि तथा वार्तिककार कात्यायन को कवि रूप में भी स्मरण किया गया है। पाणिनि (४०० ई० पू०) को 'पातालविजय' तथा 'जाम्बवतीजय' इन दो काव्यों का रचयिता माना गया है। इसी प्रकार महाभाष्य में वाररुच-काव्य 'कंसवध' 'बलिबन्ध' का नामत: उल्लेख किया गया है और कितने ही कवियों के श्लोकांश को उद्धृत किया गया है। इन नामों से तथा यत्र-तत्र इन ग्रन्थों के श्लोकों या श्लोक खण्डों से प्रमाणित है कि वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक संस्कृत काव्यों की रचनायें होती रही हैं। पतञ्जलि (१५० ई० पू०) से लेकर ७८ ई० तक के बीच के समय में जिन काव्यों का प्रणयन हुआ उनका कुछ पता नहीं चलता है। इसके बाद सबसे प्रथम ईसवीय प्रथम शतक के कवि बौद्ध अश्वघोष ही हैं जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों तथा कुछ भारतीय विद्वानों ने माना है, पर अब यह मान्यता अप्रामाणिक मानी जाने लगी है, क्योंकि अब ऐतिहासिक अन्वेषणों द्वारा प्रथम शतक में शकारि विक्रमादित्य का अस्तित्व सिद्ध कर दिया गया है। कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य के राजकवि थे, अब विद्वज्जनों की ऐसी मान्यता है। अत: कालिदास ही संस्कृत के इस काल के सर्वप्रथम कवि हैं। अश्वघोष या तो इनके समकालीन हैं, या परवर्ती।

महाकवि कालिदास के आदर्श आदिकवि वाल्मीकि हैं। कालिदास की शैली में वाल्मीकि जैसी शैली का उदात्त उत्कर्ष है। वही नैसर्गिक कोमल कान्त पदावली है, वही भाव एवं शैली और अर्थगरिमा है और वही भारतीय संस्कृति का उदात्त आदर्श है। स्वयं कवि ने 'रघुवंश' में 'पूर्वसूरिभि:' आदि प्रयोगों द्वारा वाल्मीकि के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। वाल्मीकि के अन्

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वं बाह्य प्रकृति चित्रों ने कालिदास को मानव एवं प्रकृति के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध ही नहीं, अपितु अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा दी है। अर्थात् कालिदास का सर्वविध कवित्व वाल्मीकि से पूर्णतः प्रभावित है।

कालिदास और इनके पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों में सर्वत्र नैसर्गिक, सरल एवं सरल पदावली का प्रयोग है, कहीं भी प्रत्यनपूर्वक भाषा को अलंकृत करने का प्रयास नहीं है। उतने ही और उन्हीं अलंकारों का यत्र-तत्र प्रयोग है जो कि भाषा या भावों के अभिव्यक्तीकरण के प्रवाह में स्वतः आ गये हैं। इसी प्रकार पदावली अकृत्रिम है उसको प्रयत्नसाध्य गुणों द्वारा मनोहर बनाने का प्रयास नहीं है।

काव्य का परम ध्येय जन-मनोरंजन के साथ-साथ लोकमंगल-भावना है और सौन्दर्य की गहरी अनुभूति है। प्रायः सभी काव्यों में प्रकृति मानव की चिरसंगिनी के रूप में चित्रित हुई है। कवि प्रकृति का प्रवीण उपासक है। राज दरबारी होते हुए भी कालिदास की कविता का क्षेत्र प्रकृति प्रांगण ही रहा है, उनकी नायिकायों का सौन्दर्य भी प्रकृति सौन्दर्य है कृत्रिम वस्त्रालंकार नहीं। इसी प्रकृति प्रवण-भावना से कवि ने प्रकृति कन्या शकुन्तला का सौन्दर्य चित्रण किया है। कवि का मेघदूत तो आद्योपान्त प्रकृति काव्य ही है। समस्त रामायण में प्रकृति का यही उन्मुक्त वातावरण दृष्टिगत होता है। कवि के सभी भाव प्रकृति के माध्यम से ही प्रस्फुटित हुए हैं, प्रकृति ही उनकी अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। इस निसर्ग भावना एवं प्रकृति परायणता के अतिरिक्त इन काव्यों में कविता की कमनीयता भी कम नहीं है, परन्तु इस कमनीयता का कारण, अलंकार नहीं, रस है तथा प्रासादिक शैली एवं वैदर्भी रीति है।

कालिदास की सरल शैली को उनके उत्तर कालीन या समकालीन कवि अश्वघोष ने सबसे पहले अपनाया है। समालोचकों ने इन दोनों के कई श्लोकों को कवित्व साम्य की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार हरिषेण, वत्सभट्टि आदि कवियों ने भी कालिदास को ही अपना आदर्श माना है। यद्यपि अश्वघोष पहले दार्शनिक हैं तब कवि, तथापि उन्होंने अपने धार्मिक विचारों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

को सर्व साधारण को हृदयंगम कराने की दृष्टि से ही संस्कृत की कोमल पदावली को अपनाकर दो महाकाव्यों की रचना की है।

स्पष्ट है कि कालिदास और उनके पूर्ववर्ती कवियों में नैसर्गि कमनीयता, प्रकृति परायणता एवं उत्तम कोटि का भाव सौन्दर्य है, जो इनके उत्तरकालीन कवियों में नहीं देखा जाता।

कालिदासोत्तर कालीन काव्य

कालिदास और अश्वघोष के वाद के काव्यों का कथानक रामायण महाभारत से लिया गया है। इन सभी काव्यों में शृंगार रस की प्रधा है। सरल एवं प्रसाद गुण पूर्ण भाषा के स्थान पर क्लिष्ट एवं कृत्रिम प वली का प्रयोग है। इन काव्यों का उद्देश्य भावों की मधुरव्यञ्जना न हो वाह्य शोभा, अलंकारप्रियता, श्लेष योजना एवं शाब्दीक्रीड़ा ही है। अलं के कौशल के प्रदर्शन में व्याकरणादि शास्त्रों के नियमों के परिपालन करने एवं विविध-शास्त्रीय तथा पौराणिक ज्ञान के पाण्डित्य के प्रदर्शन करने में भाषा को अधिकाधिक सजाने में ही इन काव्यों ने अपने कवि कर्म की इय मान ली है। अतएव सर्वत्र काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य गौण हो गया है कला का चमत्कार ही प्रधान बन गया है।

राजाश्रित कवियों द्वारा लिखे गये इन काव्यों पर राजकीय जीवन विलासिता एवं कृत्रिमता की स्पष्ट छाप है, विदग्धता के स्थान पर विद्वत्ता प्रदर्शन है तथा इन काव्यों पर काव्य शास्त्र, अलंकार शास्त्र एवं काम शा का व्यापक प्रभाव है। अर्थात् अलंकार शास्त्र के जो काव्य सम्वन्धी नियम तक निर्धारित कर दिये गये थे उन सभी नियमों के अनिवार्यतः पालन करने इनमें प्रयास है। इसी प्रकार कोई भी शब्द भूलकर भी पाणिनि व्याकरण परिधि से बाहर जाता दिखलाई नहीं पड़ता। यही कारण है कि इन कवि में स्वच्छन्द हृदयोद्‌गार नहीं मिलते अपितु सर्वत्र वे नियमवद्ध ही देखे जाते है फलतः इन काव्यों में वह स्वाभाविकता, सरलता एव नवीनता नहीं जि हम कालिदास कालीन काव्यों में देख चुके हैं। इन वाह्य नियमों में आब होने के कारण ये कवि काव्य के मुख्य प्रयोजन रस की अभिव्यक्ति से विमु हो गये हैं। अतएव इन काव्यों में सूक्तियाँ ही अधिक हैं काव्यत्व उत उत्कृष्ट नहीं है। इस कोटि के प्रथम कवि महाकवि भारवि हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

महाकाव्यों के इतिहास में महाकवि भारवि अलंकृत काव्य शैली के आदर्श माने जाते हैं। कालिदास और अश्वघोष के बाद काव्य को अलंकारों से प्राकृतिक वर्णनों से तथा शाब्दिक चमत्कारों से सजाने की पद्धति के सर्व-प्रथम दर्शन हमें भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' काव्य में मिलते हैं। इस काव्य की अति लघु कथा को कवि ने वर्णनों एवं अलंकारों के आधिक्य से १८ सर्गों तक विस्तृत कर दिया है। कई सर्ग प्रकृति वर्णनों में ही समाप्त हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस नवीन पद्धति के जन्मदाता भारवि को आदर्श मानकर इनके उत्तर कालीन कवियों ने भी अपनी रचनायें इसी अलंकृत शैली में की हैं।

भारवि के बाद के सभी काव्यों में कालिदास जैसी स्वाभाविकता एव मधुर रस व्यञ्जना नहीं है। सर्वत्र वर्णनों का ही प्राधान्य हैं, प्रकृति चित्रण प्रायः उद्दीपन रूप में ही अधिक देखा जाता है। भारवि को आदर्श मानकर चलने वाले अनेक कवि हुए हैं जिनमें भट्टि (रावण वध) कुमारदास (जानकी हरण) और माघ (शिशुपाल वध) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। महाकवि माघ का आदर्श भारवि का किरातार्जुनीय काव्य रहा है। दोनों ही काव्यों की मुख्य कथा महाभारत से ली गयी है और दोनों का आरम्भ भी श्री शब्दों से हुआ है इसके अतिरिक्त अन्य अनेक बातों में इन दोनों काव्यों में साम्य पाया जाता है।

वृहत्त्रयी में जिन तीन महाकाव्यों की गणना की जाती है इनमें इन दो काव्यों 'किरातार्जुनीय' एवं 'शिशुपाल वध' के अतिरिक्त तृतीय महाकाव्य श्री हर्ष का 'नैषधीय चरितम्' है। इस काव्य की भी भाषा एवं शैली भारवि से पूर्णतया प्रभावित है, इन्होंने भी अलंकृत शैली को ही अपनाया है।

प्रत्येक साहित्य की शैली पर परिवर्तनशील युग की चेतनाओं का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के साहित्य में समय-समय पर विभिन्न शैलियाँ दृष्टिगत होती हैं। संस्कृत साहित्य में कालिदास के समय की साहित्य शैली आगे चलकर भारवि के समय में परिवर्तित हो गयी, क्योंकि इस समय की सामाजिक स्थिति और विचारधारायें पूर्वकाल से भिन्न हो गयी थीं। अब काव्य का लक्ष्य भी वह न रह गया था जो कि पहले था। अतः इस समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

का साहित्य तत्कालीन प्रवृत्तियों के अनुसार एक नवीन शैली में विकसित हो लगा था—

(१) जहाँ कालिदास कालीन साहित्य का लक्ष्य जन साधारण के अनु-रञ्जन के साथ-साथ लोक शिक्षा था, वहाँ आज के साहित्य में केवल विद्वज्ज-नानुरञ्जन एवं पाण्डित्य प्रदर्शन ही रह गया था। जन साधारण के लक्ष्य से लिखे गये काव्यों में भाषा स्वभावतः सरल, अकृत्रिम एवं वोधगम्य रहती है पर जब काव्य का लक्ष्य विद्वज़नानुरञ्जन बन जाता है, जैसा कि इस काल में देखा जाता है, तो भाषा भी कृत्रिम, कठिन, श्लेषमयी और अलंकृत हो जाती है। फलतः इस काल के महाकाव्य कालिदास की अपेक्षा कहीं अधिक दुर्बोध हो गये हैं। कालिदास की वैदर्भी रीति के स्थान पर इन काव्यों में सर्वत्र समास-बहुला श्लेषमयी पाञ्चाली रीति का प्राधान्य है।

(२) इस समय के कवियों ने विद्वज्जनों के हृदयावर्जन के उद्देश्य से प्राचीन रसमयी पद्धति और सरल भाषा को छोड़कर अलंकार प्रधान दुर्बोध शैली को अपनाया है जिसका लक्ष्य विषय के स्थान पर वर्णनाप्राचुर्य तथा सरलता के स्थान पर पाण्डित्यप्रदर्शन-मात्र है। अपने काव्य को विविध अलंकारों से सजाने के साथ-साथ कामशास्त्र सम्वन्धी विवेचनाओं को लेकर कल्पना के वहुरंगे चित्र प्रस्तुत करना ही प्रधान उद्देश्य वन गया है, बिना वक्रोक्ति कोई बात कहना मानो अपनी हीनता दिखाना है। यदि अति लघु कथानक को विविध वर्णनों के विस्तार से अत्यधिक विस्तृत न कर दिया तो मानो काव्यकला की पूर्णता ही नहीं हुई। इसी प्रकार यदि वर्णनों में संयोग वियोग के विलासमय जीवन की आकर्षक झाँकी न प्रस्तुत की गयी तो मानो काव्यकला की क्षमता अधूरी ही रह गयी।

इस प्रकार की काव्य शैली के प्रमुख आचार्य हैं, भारवि और उनके अनुकर्ता माघ तथा श्री हर्ष आदि, जिनमें, नैसर्गिकता के स्थान पर कृत्रिमता के ही दर्शन होते हैं। इस प्रकार के काव्य को आदर्श काव्य नहीं कहा जा सकता, भले ही ये तत्कालीन विद्वन्मण्डल का हृदयावर्जन करते हों। इनमें प्रायः सर्वत्र अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन, कल्पनाओं की ऊँची उड़ानें, प्रयत्न-साध्य अलंकारों की सज्जा, नये-नये शब्दों के श्लेषमय तथा विरोधमय प्रयोग, शास्त्रज्ञता तथा स्वपाण्डित्य प्रदर्शन का चमत्कार एवं क्लिष्ट कल्पना का

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

होता है। इन काव्यों में न तो कालिदासकालीन भावानुभूति है, न की अभिव्यक्ति है, और न कोमल कान्त जनमनोहारिणी पदावली है तु सर्वत्र कृत्रिमता तथा वर्णनों का घटाटोप एवं दुरूह कल्पनाओं का घट है। यही कारण है कि महाकवि भारवि द्वारा आरब्ध इस नवीन य पद्धति को आचार्य कुन्तक ने विचित्र मार्ग की संज्ञा दी है।

स्तुत सर्ग का विषय और वैशिष्ट्य

महाकवि कालिदास विरचित "कुमारसम्भव महाकाव्य" का कथानक र भारत में स्थित, हिमोष्णीषालङ्कृत, देवतात्मा नगाधिराज हिमालय संश्लिष्ट एवं विम्वग्राही आलम्वनात्मक वर्णन से आरम्भ होता है। यह त पृथिवी के मानदण्ड की भाँति पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच विद्य-मान है। यह पर्वत जीवनदायिनी गङ्गा यमुना आदि अनेक नदियों, विविध षधियों एवं रत्नों का उद्‌गम स्थल है अतएव यह सबसे बड़ा लोक कल्याण-री है, इसीलिये भारतीय उदात्त परम्परा के अनुसार इसे देव स्वरूप माना या है तथा अन्य देवताओं की भाँति ही इसके पत्नी पुत्र पुत्री आदि की ल्पना की गई है। एक से १७वें श्लोक तक इसकी देवोपम अनेक विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इसकी लोकोपकार क्षमता को तथा इसके लोकोत्तर शिष्ट्य को देखकर ही ब्रह्मा ने इसे अन्य देवताओं की भाँति ही यज्ञभाग कर इसे नगराधिराज पद से विभूषित किया है—

"यज्ञाङगयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारंधरित्रीधारणाक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पित यज्ञ भाग शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥

सभी पर्वतों ने इसे बछड़ा बनाकर गोरूप धरा पृथिवी से उत्तमोत्तम रत्नों एवं औषधियों को दूध रूप में प्राप्त किया था अतएव दूध रूप में सभी रत्नों एवं सञ्जीविनी आदि जीवनदायिनी औषधियों को आत्मसात् कर लेने के कारण राज हिमालय पर विशिष्ट रत्न एवं औषधियाँ पाईजाती हैं। अपने शिखरों पर निवास करने वाली देवाङ्गनाओं के लिये यह सभी शृङ्गार प्रसाधन की सामग्री उपलब्ध कराता है। इसके ऊँचे-ऊँचे शिखर मेघों से भी ऊँचे हैं, अतएव सिद्धजन वहाँ निर्विघ्नतापूर्वक तपश्चरण किया करते हैं। यहाँ वे गजराज भी निवास करते हैं जिनसे गजमुक्ता प्राप्त होते हैं। यहाँ पर उपलब्ध गैरिक सिन्दूर आदि धातुओं के द्रव से भूर्जपत्रों पर लिख कर विद्याधर सुन्दरियाँ अपने प्रियतमों को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सन्देश भेजतीं हैं। कीचक नामक वेणुओं के रन्ध्रों में भरी हुई वायु बाँसु ध्वनि सी प्रतीत होतीं है, जो किन्नरों के गानावसर पर उनकी सहायक बन खुजली मिटाने के लिये जब वन्य गज अपने कपोलों को सरल वृक्षों पर रग तब उनके घर्षण से निकला हुआ सुगन्धित दूध हिमालय के शिखरों को भिन बना देता है। यहाँ पर कुछ ऐसी भी औषधियाँ हैं जो रात्रि प्रकाश देती हैं, इनका प्रकाश कन्दराओं के अन्धकारमय प्रदेश को भी प्रक कर देता है अतएव ये औषधियाँ वनेचरियों के लिये सुरतप्रदीप का देती हैं। हिमालय पर वर्फ जमकर कठोर चट्टनों जैसी हो जाती है उन पर चलने वाली दुर्वहश्रोरिणपयोधरार्त किन्नरियों की स्वाभ विलासमय गति स्खलित नहीं होती। हिमालय की गुफायें सदा अन्धक परिपूर्ण रहती हैं।

हिमालय पर चमरी मृगियाँ या चमरी गायें भी पाई जाती हैं। पूंछ के बाल खूब लम्बे और सफेद होते हैं। ये अपनी पूँछों को इधर हिला कर मानो हिमालय पर चँवर डुलाती हैं और इस प्रकार उसके 'गिरि शब्द को सार्थक करती हैं। हिमालय की गुफाओं के मुख पर लटके हुये अपने प्रियतमों द्वारा वस्त्रापहरण से विलज्जित किन्नरियों के लिये झीने परदे का काम करते हैं। और जहाँ भागीरथी के निर्झर शीकरों वहन करने वाला एवं देवदारु वृक्षों को हिलाने वाला शीतल मन्द सुरचित वायु शिकार से थके हुये किरातों द्वारा आसेवित किया जाता और इसके शिखरों पर सरोवरों में होने वाले कमल सूर्य की ऊर्ध्व किरणों द्वारा विकसित किये जाते हैं। इन उक्त विशेषताओं से वि हिमालय को प्रजापति ने यज्ञ भाग देकर गिरिराज पदवी से विभू किया है।

कुल स्थिति के लिए हिमालय ने मेना नाम की कन्या से विवाह कि कालक्रमानुसार मेना के गर्भ से मैनाक नामक एक पुत्र का जन्म हु जिसने समुद्र से मैत्री करके, इन्द्र के वज्र प्रहार से आत्मरक्षा की। काला में दक्ष पुत्री सती, जो कि भगवान् शिव की पूर्वपत्नी भी थी, दक्ष प्रजा पर रोष के कारण, अपने शरीर को योगाग्नि द्वारा त्याग कर पुनः ज ग्रहण करने के लिये मेना के गर्भ में आयीं। फलतः एक शुभ अवसर पर

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

क कन्यारत्न को जन्म दिया । वस्तुतः इस कन्या का जन्म सभी स्थावर म प्राणियों के लिये सुखकर था अतएव प्रसन्नमन देवताओं ने पुष्प की और सभी दिशायें प्रसन्न एवं स्वच्छ प्रतीत होने लगी। चन्द्रकला मान दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई यह कन्या अपने लावण्यमय शरीरावयवों से भित होने लगी । तदनन्तर उस कन्या का कुलानुरूप नाम पार्वती रखा । और बाद में माता द्वारा 'उमा' कह कर तप से निषिद्ध किये जाने ही पार्वती 'उमा' नाम से विख्यात हुईं । मैनाक नामक पुत्र के होते भी माता-पिता का इस उमा पर विशेष स्नेह था । इस कन्यारत्न को कर हिमालय उसी प्रकार पवित्र एवं सुशोभित हुए जिस प्रकार अत्य-प्रकाश वाली शिखा से दीपक, गंगा से स्वर्ग मार्ग एवं संस्कृत वाणी से न् पवित्र एवं शोभित होता है । बाल सुलभ क्रीड़ाओं में अनुरक्त रहती वह उमा देवी धीरे-धीरे यौवन को प्राप्त हुईं । तदनु शिक्षाकाल में उन्हें न्म की समस्त विद्यायें उसी प्रकार स्वयं प्राप्त हो गईं जिस प्रकार शरद् में गंगा को हंसावली एवं रात में सञ्जीविनी आदि औषधियों को काश प्राप्त होता है । यौवनागम के कारण उनके शरीर के प्रत्येक अंग से थानुरूप कान्ति युक्त लावण्य प्रस्फुटित होने लगा ।

इसके बाद कवि ने उनके यौवन सुलभ शरीरावयवों के सौन्दर्य का क्रमशः किया है । नियमतः देवी-देवताओं का स्वरूप एवं सौन्दर्य वर्णन उनके ों से आरम्भ कर शिरोभाग तक किया जाता है अतएव कवि ने सर्व-देवी के चरणांगुष्ठों की शोभा का वर्णन श्लोक सं० ३३ से आरम्भ है । इसके बाद उनके चरणा गत सविलासगमन का वर्णन कर उनके ा एवं उरुद्वय का वर्णन किया गया है । इन वर्णनों में कवि ने उनके शरीरांगों को अनुपमेय ही बतलाया है' इसी प्रकार कटिपश्चाद्भाग ाजि एवं वलित्रय का भव्य वर्णन किया गया है । उनके बाहुद्वय का करते हुए कवि ने कहा है कि मानो उनके बाहुद्वय शिरीषकुसुम से क सुकुमार थे अतएव पराजित कामदेव ने उमा के इन्हीं सुकुमार बाहुओं व के गले में कण्ठपाश लगाकर अपना बदला लिया था । इसी प्रकार ने आगे उनके कण्ठ, मुख, मन्दस्मित, वचनविन्यास, कटाक्ष, भ्रू, केश-आदि का उच्चकोटि के सुन्दर उपमानों द्वारा वर्णन किया है और अन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

में कहा है कि सकल जगत् का निर्माण करने वाले ब्रह्मा ने मानो स्थान पर सम्पूर्ण सौन्दर्य को देखने की इच्छा से, उत्तमोत्तम चन्द्र, आदि उपमानों का मुख नयन आदि अवयवों में यथास्थान निवेश करके की रचना की थी।

इसके अनन्तर कभी स्वेच्छा से विचरण करने वाले नारद जी ने के पास आकर और वहाँ उमा को देखकर कहा कि यह भगवान् पत्नी बनेगी। नारद जी के कथन पर विश्वास कर गिरिराज हि उमा के लिये अन्य वर प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। किन्तु शिव ने भी उन्हें स्वीकार करने की हिमालय से याचना नहीं की। देहत्याग के वाद से ही भगवान् शिव वहीं पर किसी स्थान पर समा गये थे, उनके गण उनकी सेवा में तत्पर थे। शिव का वाहन नन्दी वर्फ की चट्टानों पर अपने सुरों से प्रहार करता हुआ, सिंह की को न सहन करता हुआ हुँकार भरता था। कवि कहता है कि तपस्याओं का फल देने वाले होकर भी भगवान् शिव न जा कामना से तप कर रहे थे **"स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि तपश्चकार"**।

हिमालय ने यह जानकर उन देवाधिदेव शिव की पहले स्वयं अ पूजा की और फिर सखी सहित अपनी पुत्री पार्वती को भी उनकी करने की आज्ञा दी। यद्यपि समाधिस्थ योगीश्वर भगवान् शिव पार्वती विघ्न स्वरूप ही थीं फिर भी महान् धैर्यशाली शिव ने उन्हें सेवा के लिये अनुमति दे दी। कवि कहता है—**"विकारहेतौ सति येषां न चेतांसि त एव धीराः"**। तदनु भगवती उमा उनकी तपोवे सम्मार्जन करती हुई, पूजार्थ पुष्प चयन करती हुई और कुश आनयन करती हुई उनकी सेवा में तत्पर हो गई।

कालिदास और भारवि

महाकवि कालिदास और महाकवि भारवि के काव्यों को दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि कालिदास के काव्य में जहाँ माधुर्य है, सरल एवं सरस पदविन्यास है, वहाँ भारवि के काव्य में

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ओज है। कालिदास जहाँ बड़ी से बड़ी बात को एक छोटे से वाक्य में प्रकट करने की क्षमता रखते हैं, उनकी भाषा में अपूर्व समाहार शक्ति है, वहाँ भारवि प्रत्येक बात को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रखते हैं। कालिदास में जहाँ भावों को व्यञ्जनात्मक शैली में अभिव्यक्त किया गया है, वहाँ भारवि में वर्णनात्मक एवं तार्किक शैली को अपनाया गया है। कालिदास में जहाँ भावपक्ष की प्रधानता है। भारवि में वहाँ कलापक्ष पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। कालिदास में विदग्धता एवं सरसता है, वहाँ भारवि में पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति और तार्किकता है। कालिदास के काव्यों में जहाँ मधुरता एवं रस प्रवणता है वहाँ भारवि में वाकपटुता एवं कलात्मकता है। कालिदास के भावों के चित्रण में जहाँ मधुरता के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म निरीक्षण भी है जिसके कि उनके भाव हृदयग्राही एवं मनोरंजक बन पड़े हैं, वहाँ भारवि में शुष्क नैतिक उपदेश की प्रवृत्ति तथा वस्तुओं का बाह्य सौन्दर्य निरीक्षण एवं उसका याथातथ्य चित्रण है, अतएव उनके भाव पण्डितों को भले ही अनुरंजित कर सकें पर सहृदयों को अनुरंजित करने की उनमें क्षमता नहीं है। जहाँ कालिदास के काव्यों में शृंगार का प्राधान्य है। शेष रंग यथास्थान अंग रूप में अभिव्यक्त हुए हैं, वहाँ भारवि के काव्य में वीर रंग की प्रधानता है। शृंगारादि अन्य रस प्रसंगतः ही आ सके हैं। कहीं-कहीं तो भारवि शृंगार चित्रण में भी इतने आगे बढ़ गये हैं कि पूरा का पूरा सर्ग ही उसमें समाप्त हो गया है, पर किरातार्जुनीयम् का मुख्य रस वीर ही है। कालिदास में भावों में तीव्रता या प्रभावोत्पादकपा लाने के लिये ही सहज सुन्दर अलंकारों का प्रयोग हुआ है, पर भारवि में कितने ही सर्गों में अलंकारों को बलात् लाकर रखा गया है। भारवि शब्द चित्र में तो प्रवीण हैं ही, अतएव उन्होंने किरातार्जुनीयम् के एक पूरे सर्ग को चित्रों का एक व्यूह ही बना डाला है। वस्तुतः भारवि में वह माधुर्य एवं सुबोधता नहीं है जो कि हमें कालिदास में देखने को मिलती है। कालिदास की भाषा का प्रवाह नैसर्गिक है जबकि भारवि की भाषा में कृत्रिमता है। कालिदास में जहाँ माधुर्य एवं सरलता तथा सरसता है वहाँ भारवि में प्रखरता एवं ओज है।

दरबारी कवि होते हुए भी कालिदास का दृष्टिकोण व्यापक है और सूक्ष्मेक्षिका भी, पर भारवि का दृष्टिकोण एक वर्ग तक ही सीमित है। उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकृति चित्रण में वह सूक्ष्म दर्शन और वे मार्मिक उद्भावनायें नहीं जो कालिदास में मिलती हैं। भारवि की दृष्टि उच्च धनी वर्ग तक ही सीमि है पर कालिदास में समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व है। कालिदास राजवैभव का, आमोद-प्रमोद का और सुख-समृद्धि का वर्णन जितनी सहृदय के साथ अपने काव्यों में किया है, उतनी ही सहृदयता उनके आश्रमों, व नदियों, पर्वतों एवं नगरों के वर्णनों में तथा मुनियों की दिनचर्या एवं उन यज्ञानुष्ठानों के वर्णनों में भी देखी जाती है। साधारण से साधारण मानव नहीं, पशुपक्ष्यादिक भी यथावसर उनके काव्यों में स्थान पा सके हैं।

यद्यपि भारवि में कालिदास जैसी कोमलकान्त प्रासादिक पदावली नीय है, तथापि सुश्लिष्ट पद विन्यास में वे अपनी कुशलता के लिये प्रसिद्ध है "भारवेरर्थगौरवम्" के अनुसार भारवि काव्य में अर्थ गौरव के लिये प्रसिद्ध है, राजनीति पटुता एवं लोक व्यवहार कुशलता का भव्य एवं ओजस्वी वर्णन उनके काव्य की विशेषता है। संवादों में तार्किकता एवं ओजस्विता भारवि के काव्य की दूसरी विशेषता है, भारवि में व्यावहारिक ज्ञान की विद्व अनुभूति देखने को मिलती है। यह ठीक है कि भारवि में कालिदास जैसा रस प्रवाह नहीं है, पर उन्होंने काव्य के जिस क्षेत्र को अपनाया है उन उनकी प्रौढ़ता और कुशलता प्रशंसनीय है, उनमें भावुकता भी है और भा की अभिव्यक्ति की क्षमता भी है।

वस्तुतः महाकवि भारवि एक नये काव्यमार्ग के प्रवर्तक हैं, अतः उन उनके पूर्ववर्ती कालिदासादि कवियों जैसी स्वाभाविकता एवं सरसता ढूंढ़ व्यर्थ ही है। प्रत्येक कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है और अपने सम की लोकरुचि के अनुसार ही लिखता है। महाकवि भारवि ने अपने काव्य लिये जिस विषय को चुना है उसके लिये सरस मधुर नहीं, अपितु ओजस्वि भाषा की ही आवश्यकता थी, उनके वीर पात्रों की भी यही स्वाभावि भाषा थी, रसानुकूल भाषा ही काव्य के लिये उपयुक्त होती है, अतएव भार में रसानुकूल भाषा का ही प्रयोग है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कुमारसम्भवम्

प्रथमः सर्गः

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥

अन्वय—उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य पृथिव्याः मानदण्डः इव स्थितः अस्ति ।

शब्दार्थ—उत्तरस्याम् दिशि = उत्तर दिशा में, देवतात्मा = देवस्वरूप, हिमालयो नाम = हिमालय नामक, नगाधिराजः = पर्वतराज, पूर्वापरौ = पूर्व और पश्चिम दिशा के, तोयनिधी = समुद्रों को, वगाह्य = प्रवेश करके, अर्थात् इन दोनों समुद्रों में प्रवेश करके, पृथिव्याः = पृथिवी के, मानदण्डः इव = मापदण्ड के समान अर्थात् आयाम परिच्छेदक दण्ड के समान, स्थितः अस्ति = विद्यमान है ।

अनुवाद—उत्तर दिशा में देवस्वरूप हिमालय नामक पर्वतराज, पूर्व और पश्चिम समुद्रों में प्रवेश करके अर्थात् पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक अन्तः प्रविष्ट होकर विद्यमान है जो कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह पृथिवी का विस्तारादि परिच्छेदक (विस्तार नापने का) मापदण्ड हो ।

भावार्थ—उत्तर दिशा में विद्यमान देवस्वरूप पर्वतराज हिमालय का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यह पर्वत देवस्वरूप है और सभी पर्वतों में श्रेष्ठ होने के कारण यह पर्वतराज कहलाता है । यह पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र के अन्दर तक फैला हुआ है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो यह पृथिवी के विस्तार का परिच्छेक मापदण्ड हो अर्थात् भूमण्डल के नापने के लिये मापदण्ड अथवा (Measuring Scale) हो ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में, पूर्वा पर समुद्रों में प्रविष्ट हिमालय की पृथिवी के मानदण्ड अर्थात् पैमाना के रूप में सम्भावना की गयी है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा नामक अलंकार है, जैसा कि उसका लक्षण है :—

"सम्भावन मथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्तादःमात्रा पृथिवी" अतः पृथिवी के विस्तार के माप के लिये हिमाल उपयुक्त मानदण्ड है।

अस्ति—का 'अ' माङ्गलिक एवं विष्णुवाचक भी है 'अकारो विष्णुरुद्दिष्टः' अतएव मंगलाचरण के रूप में इसे सर्वप्रथम रखा गया है। हिमालय का वर्णन आरम्भ कर यहाँ वस्तु निर्देश किया गया है तथापि सर्वप्रथम 'अ' के प्रयोग से कवि का मानसिक नमस्क्रियात्मक मंगलाचरण माना जा सकता है।

"यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च, पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥

अन्वय—सर्वशैलाः यम् वत्सम् परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ दोग्धरि (सति) पृथूपदिष्टाम् धरित्रीम् भास्वन्ति रत्नानि महौषधीः च दुदुहुः।

शब्दार्थ—सर्वशैलाः = सब पर्वतों ने, यम् = जिस हिमालय को, वत्सम् = बछड़ा, परिकल्प्य = बनाकर, दोहदक्षे = दोहन कार्य में कुशल, मेरौ = इस नाम से प्रसिद्ध पर्वत के, दोग्धरि स्थिते = दोग्धा अर्थात् दुहने वाले विद्यमान होने पर, पृथूपदिष्टाम् = पृथु नामक राजा के द्वारा निर्दिष्ट = बतायी गयी अथवा पृथु की आज्ञानुसार, धरित्रीम् = (गोरूपधारिणी) पृथिवी से, भास्वन्ति = चमकते हुये, रत्नानि = रत्नों को, च = और, महौषधीः = (प्रभावती) सञ्जीविनी आदि औषधियों को, दुदुहुः = दुहा अर्थात् प्राप्त किया।

भावार्थ—हिमालय के वैशिष्ट्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है सब पर्वतों ने उस हिमालय को बछड़ा बनाकर, मेरू नामक पर्वत के दो (दुहने वाला) होने पर, जो कि दोहन कार्य में निपुण था, पृथु राजा ने कि निर्देश किया था उसी के अनुसार, गो रूप को धारण कर लेने वा पृथिवी से, चमचमाते हुये श्रेष्ठ रत्नों को तथा प्रकाशशालिनी सञ्जी आदि उत्तम औषधियों को दुहा अर्थात् प्राप्त किया।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में 'तुल्ययोगिता' नामक अलंकार है, क्यों यहाँ हिमालय का वर्णन प्राकरणिक है तथा हिमालयगत रत्न और औषधि का वर्णन भी प्राकरणिक है, इन दोनों का 'दुदुहुः' इस दोहन क्रिया से धर्माभि सम्बन्ध है, औपम्य भी यहाँ गम्य है, अतः केवल प्राकरणिक वि तुल्ययोगिता है, जैसा उसका लक्षण है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

"पदार्थानां प्रस्तुताना मन्येषां वा यदा भवेत् ।
एक धर्माभि सम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥

उपजाति नामक छन्द है जिसका लक्षण ऊपर लिखा जा चुका है।

समासादि—सर्वे च ते शैलाः—सर्वशैलाः । दोहे दक्षः तस्मिन्—दोहदक्षे । थुना उपदिष्टा ताम्—पृथूपदिष्टाम् । भास्वन्ति च भास्वत्यश्चेति भास्वन्ति हाँ एक शेष द्वन्द्व समास है, भास्वन्ति पद, रत्नानि तथा महौषधीः दोनों का ी विशेषण है, जहाँ स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में एक शेष रहता है वहाँ पुंसकलिङ्ग ही शेष रहता है और वही एक दोनों की ही विशेषता बतलाता है। हत्यश्च ताः औषधध्यश्च ताः महौषधीः ।

संस्कृत व्याख्या—सर्वशैलाः = सर्वे मन्दरादयः गिरयः, यम् = हिमालय मित्यर्थं, वत्सम् = गोबालम्, परिकल्प्य = विधाय अर्थात् वत्स रूपेण कल्पयित्वा, दोहदक्षे = दोहन कार्यकुशले, मेरौ = 'सुमेरु' नाम्ना प्रसिद्धे पर्वते, दोग्धरि = दोधके, स्थिते = विद्यमाने सति, पृथूपदिष्टाम् = पृथुना प्रदर्शिताम्, धरित्रीम् = गोरूपधरां पृथिवीम्, भास्वन्ति = कान्तिमन्ति, रत्नानि = उत्तम मरकता दिमणीन्, (भास्वतीः = कान्तिमतीः) महौषधीः = सञ्जीविन्यादिकौषधीः, च, दुदुहुः = दुहन्ति स्म, प्राप्तवन्त इत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ—सर्वे मन्दरादयः पर्वताः यं गिरिराजं हिमालयं वत्सत्वे न कल्पयित्वा दोहन कर्मकुशले 'सुमेरु' इत्याख्याते पर्वते दोहनकर्तरि विद्यमाने सति, राज्ञा पृथुना प्रदर्शिताम् गोरूपधराम् पृथिवीम्, कान्तिमन्ति श्रेष्ठ रत्नानि द्युतिमतीः सञ्जीविनीप्रभृतीः उत्तमौषधीश्च दुहन्ति स्म ।

टिप्पणी—सर्वशैलाः—अत्र 'पूर्वकालैकेत्यादिना समासः । दोहदक्षे— दुह धातोः घञि रूपम्, दोहनं दोहः । दोग्धरि—दुह् + तृच्, दोग्धीति दोग्धा तस्मिन् । स्थिते अत्र 'यस्य च भावेन भाव लक्षणमिति सप्तमी । पृथूपदिष्टाम् श्रीमद् भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में नरायणांशभूत पृथु नामक राजा की उत्पत्ति की तथा उनके अद्भुत कार्यों की कथा वर्णित है। तदनुसार वेन नामक एक दुश्शील राजा को जब क्रुद्ध हुये मुनियों ने शाप दे दिया तब राजा के अभाव में पृथिवी दुर्जनों से पीड़ित तथा अकालग्रस्त हो गयी, तब सब मुनियों ने वेन के गतप्राण शरीर का मन्थन किया जिससे परम पराक्रमी पृथु नामक राजा की उत्पत्ति हुई "नारायणांशसम्भूतः पृथुः पृथुपराक्रमः" पृथुराज की आज्ञानुसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तब सभी ने अपने-अपने वर्ग में श्रेष्ठ जनों को दोग्धा एवं बछड़ा बनाकर रूपधरा पृथिवी से स्वाभीष्ट रत्नों, औषधियों तथान्य पदार्थों को प्राप्त किये "सर्वे स्व मुख्यवत्सेन स्वे-स्वे पात्रे पृथक् पयः। सर्वकामदुघां पृथिवीं दुदुहुः पृथुभावितास्" पृथिवी का गो रूप धारण करना भी पौराणिक कथानुसार प्रसिद्ध है "पृथु नमि नरपतिः, बुभुक्षापीडितानां प्रजानां भोजनसिद्धि धेनुरूपिणीं पृथिवीं स्वेप्सितमर्थं दोहयामास" अतः यह सब कथन पौराणिक कथाओं के अनुसार है, कल्पित नहीं। इस कथन से हिमालय का नगाधिराजत्व भी सिद्ध होता है क्योंकि उसने वत्स रूप में पृथिवी के समस्त श्रेष्ठ रत्नों एवं औषधियों को दुग्धरूप में पान कर आत्मसात् कर लिया था अतएव १७वें श्लोक के अनुसार ब्रह्मा ने उसे यज्ञभाग देकर देवत्व एवं शैलाधिपतित्व भी प्रदान किया था।

धरित्रीमित्यत्र अपादानाविवक्षायाम् 'अकथितं चेति गौण कर्मणि द्वितीया'

भास्वन्ति—भास् शब्द से भा अस्ति येषान्तानि इत्यर्थे मतुप्-भास्वन्ति भास्वन्ति च भास्वत्यश्चेति विग्रहे, एक शेष द्वन्द्वे नपुंसकमनपुंसके नेत्यादि नपुंसकैकशेषः, अतएव यह पद रत्नानि तथा महौषधीः दोनों का विशेषण है।

महौषधिः—मह्यन्ते पूज्यन्ते इति महत्यः महत्यश्च ताः औषध्यः ताः महौषधीः रत्नानि और महौषधीः इन दोनों में प्रधान कर्म में तथा धरित्रीम् में गौण कर्म में द्वितीया है, दुह धातु दुह्याचि-इत्यादि से द्विकर्मक है। दुदुहुः—दुह लिट् यहाँ णिजर्थ को अन्तर्भूत समझना चाहिये। अन्यथा हिमालय पर दोग्धृत्व निर्देश उपपन्न न हो सकेगा।

"अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥३॥

अन्वय—अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमम् सौभाग्यविलोपि न जातम् हि एकः दोषः गुणसन्निपाते इन्दोः किरणेषु अङ्कः इव निमज्जति।

शब्दार्थ—अनन्तरत्न प्रभवस्य = अपरिमित श्रेष्ठ पदार्थों के उत्पत्ति स्थल, यस्य = जिस हिमालय का, हिमम् = तुषार (वर्फ) सौभाग्यविलोपि = सौन्दर्य विनाशक, न जातम् = नहीं हुआ, हि = क्योंकि, एकः दोषः = एक मात्र दोष, गुणसन्निपाते = गुणों के समूह में, इन्दोः = चन्द्रमा की, किरणेषु = किरणों में, अङ्क इव = कलङ्क के समान, निमज्जति = डूब जाता है अर्थात् छिप जाता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अनुवाद—अपरिमित श्रेष्ठ पदार्थों के उद्गम स्थल जिस हिमालय का बर्फ (जिसके) सौन्दर्य का विनाशक न हुआ। क्योंकि एकमात्र दोष, गुणों के समूह चन्द्रमा की किरणों में कलङ्क के समान, डूब जाता है अर्थात् छिप जाता है।

भावार्थ—यद्यपि हिमालय सदा हिमाच्छादित रहता है तथापि उसका हिम, उसके सौभाग्य या सौन्दर्य को विनष्ट नहीं कर सकता क्योंकि वह अनेक एवं बहुविध रत्नों जैसे गङ्गा, वैदूर्यमणि, देवदारु, मृतसञ्जीविनी लतादि का उत्पत्ति स्थान है, इन अनेक विशेषताओं के बीच यदि उसमें एक 'हिम' रूप दोष भी हो तो वह उसकी इन विशेषताओं के बीच उसी प्रकार नगण्य हो जायेगा जैसे चन्द्रमा की किरणों के बीच उसका दोष कलङ्क नगण्य ही रहता है, यह सत्य है कि अनेक गुणों के बीच यदि एक अवगुण भी हो तो वह उन गुणों के बीच छिपकर नगण्य हो जाता है।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में उपमानुप्राणित **अर्थान्तरन्यास** अलंकार है। क्योंकि यहाँ उत्तरार्द्धगत सामान्य वाक्य से पूर्वार्द्धगत विशेष वाक्य का समर्थन किया गया है जैसाकि उसका लक्षण है :—

सामान्यं वा विशेषेण, विशेस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तिरन्यासोऽष्टधा मतः॥

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—अविद्यमानः अन्तः येषान्तानि अनन्तानि, अनन्तानि च तानि रत्नानि अनन्तरत्नानि, तेषां प्रभवस्तस्य-अनन्तरत्नप्रभवस्य। सौभाग्यं विलुम्पतीति तच्छीलः सौभाग्यविलोपि। गुणानां सन्निपात स्तस्मिन्-गुण-सन्निपाते।

संस्कृत व्याख्या—अनन्तरत्नप्रभवस्य = अपरिमितामूल्यपदार्थो द्भवस्थलस्य, यस्य हिमालयस्येत्यर्थः, हिमम् = तुषारम्, सौभाग्यविलोपि = सौभाग्य-विनाशकम्, न जातम् न अभूत्। हि-यतः, एकः एकाकी, दोषःअवगुणः, गुणसन्निपाते = गुणसमूहे, इन्दोः = चन्द्रमसः, किरणेषु-रश्मिषु, अङ्कः-कलङ्कः इव, निमज्जति = विलीयते।

संस्कृत सरलार्थ—विश्वरम्यस्य चन्द्रमसः कलङ्क इव असंख्येय रत्नोत्पत्ति स्थानस्य हिमालयस्य, दोषाधायक मपि तुषारं तस्य सौन्दर्यविध्वंसकं न जायते,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यतो हि वहूनां गुणानां समुच्चये निपतितोऽप्येकोऽवगुणस्तत्रत्यगुणैर्‌ग़ सन् नावलक्ष्यते ।

टिप्पणी—अनन्तरत्नप्रभवस्य—अविद्यमानोऽन्तो येषान्तानि अनन्तानि 'नञोऽस्त्यर्थानामित्यादिना उत्तरपदलोपिसमासः । अनन्तानि च तानि नीत्यत्र 'विशेषणमित्यादिना कर्मधारय समासः, प्रभवत्यस्मादिति प्रभ प्र+भू धातोः 'ऋदोरप्' इति अप् प्रत्ययः । रत्न शब्द स्वजाति श्रेष्ठ है अर्थात् अपने-अपने वर्ग विशेष के सर्वोत्तम पदार्थों का वाचक है, हिम पर विभिन्न वर्गों के सर्वोत्तम पदार्थ अर्थात् रत्न उत्पन्न होते हैं, उमा कन्यारत्न, वैदूर्यादि मणिरत्न, देवदारु आदि वृक्षरत्न, संजीविनी आदि औ रत्न, गंगादिसरिद्रत्न, सोमलतादि यज्ञद्रव्यरत्न, इन रत्नों का उत्पत्ति हिमालय ही है ।

सौभाग्यविलोपि—सुभगस्य भाव इत्यर्थे ष्यञि प्रत्यये सौभाग्यम्, विलुम्पति तच्छीलः इत्यर्थे णिनि प्रत्यये विलोपि । सौभाग्य का विन **जातम्**—जनीधातोः कर्तरि क्त प्रत्ययः । **गुणसन्निपाते**=सम्+नि+पत् सन्निपातः । **अङ्कः**=कलङ्कः 'कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च' इत्यमरः । **निम** —अर्न्तलीयते, नि+मस्ज् लट् । वस्तुतः स्वल्प दोष गुणसमूह को अ नहीं कर पाता अपितु वह स्वतः गुणसमूह से अभिभूत होकर उसी में वि हो जाता है । अङ्क्यते अनेन इति अङ्कः— चन्द्रमा में दिखाई देने वाले धब्बे को यहाँ अङ्क कहा गया है, यह अङ्क या कलङ्क क्या है, इस स में कवियों और विद्वानों की अनेक उत्प्रेक्षायें हैं, इनमें श्रीहर्ष की उत्प्रेक्षा सुन्दर है—

"हृतसारमिवेन्दु मण्डलं दमयन्ती वदनाय वेधसा ।
कृत मध्यविलं विलोक्यते धृतगम्भीर खनीखनीलिम ॥"

कालिदास के इस श्लोक पर एक कवि का यह व्यङ्ग्य भी दर्शनीय है

"एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जीतीन्दोरिति यो वभाषे ।
नूनं न दृष्टं कविनाऽपि तेन, दारिद्रय दोषों गुण कोटिनाशी ॥"

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरै र्बिभर्ति ।
बलाहकच्छेदवि भक्त रागा मकाल सन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अन्वय—यः च अप्सरोविभ्रम मण्डनानाम् सम्पादयित्रीम् वलाहकच्छेद-विभक्तरागाम् अकालसन्ध्याम् इव शिखरैः बिभर्ति ।

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय, अप्सरोविभ्रममण्डनानाम् = अप्सराओं के विलासमय अलङ्करणों को, सम्पादयित्रीम् = सम्पादन करने वाली, वलाहकच्छेदविभक्तरागाम् = मेघों के (वलाहक) खण्डों में (छेद) लालिमा (राग) को संक्रमित करने वाली, धातुमत्ताम् = गैरिकसिन्दूरादि धातुसम्पत्ति को, अकालसन्ध्याम् इव = असमय में प्राप्त सन्ध्या के समान, शिखरैः = शिखरों के द्वारा, बिभर्ति = धारण करता है ।

अनुवाद—जो हिमालय अप्सराओं के विलासमय अलङ्करणों को सम्पादन करने वाली, मेघों के खण्डों में लालिमा संक्रान्त करने वाली गैरिकसिन्दूरादि धातु सम्पत्ति को अकाल सन्ध्या के समान (अपने) शिखरों द्वारा धारण करता है ।

भावार्थ—हिमालय पर्वत पर गैरिक सिन्दूर आदि प्रसाधन सामग्री उपलब्ध होती है जिससे वहाँ पर रहने वाली अप्सरायें अपना शृङ्गार किया करती हैं । वायुवशात् मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, और ये मेघखण्ड, हिमालय के शिखरों पर उपलब्ध गैरिक सिन्दूर आदि धातुओं के प्रभाव से उसी प्रकार लाल वर्ण के हो जाते हैं जैसे सायङ्कालीन सूर्य की किरणों द्वारा लाल हो जाते हैं । अतएव शिखरों पर भरी हुई लाल-लाल गैरिकादि धातुओं के प्रभाव से शिखरों पर लटकते हुए लाल-लाल मेघखण्ड असमय में प्राप्त सन्ध्या का दृश्य उपस्थित कर देते हैं ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में सन्ध्या शब्द के जातिवाची होने से जात्युत्प्रेक्षा अलंकार है, इसका लक्षण है—

भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधामता ।।
वाच्येवादि प्रयोगेस्याद प्रयोगे परा पुनः ।
जाति गुणाः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि ।।

उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि—विभ्रमेण मण्डनम् विभ्रममण्डनम् अप्सरसाम् विभ्रम-मण्डनम् तेषाम्-अप्सरो-विभ्रममण्डनानाम् । वलाहकानाम् छेदाः वलाह-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कच्छेदाः तेषु विभक्तः रागः यया सा ताम्-वलाहकच्छेदविभक्तरागाम् अकाले सन्ध्या ताम्-अकाल सन्ध्याम् ।

संस्कृत व्याख्या—यः हिमालयः, अप्सरोविभ्रममण्डनानाम्-देवाङ्गना विलासालङ्काराणाम्, सम्पादयित्रीम्—विधात्रीम्, वलाहकच्छेद-विभक्तरागाम् =मेघखण्ड संक्रमित रागाम्, धातुमत्ताम्=गैरिक सिन्दूरादिधातुयुक्ताम् अकाल सन्ध्याम् इव=अनियतसमयोपलब्ध-सन्ध्याम् इव, शिखरैः=शृङ्गैः बिभर्ति=धारयति ।

संस्कृत सरलार्थ—हिमालयोऽयं सुराङ्गनानां विलासेन क्रियमाणा लङ्काराणाम् विधात्रीम्, अथ च मेघानां खण्डेषु संक्रमितरागां स्वकीय धातुसम्पत्तिम्, सूर्यास्तकालव्यतिरिक्त कालसम्भूतां सन्ध्यामिव स्वकीयैः शृङ्गैः धारयति ।

टिप्पणी—**अप्सरोविभ्रमेत्यादि**—यद्यपि "स्त्रियां वहुष्वप्सरसः स्ववेंश्या उर्वशीमुखाः" इस अमरकोश के अनुसार अप्सरस् शब्द बहुवचनान्त है "अप्सु जलेषु सरन्तीति अप्सरसः" तथापि कालिदास ने "ततःप्रविशत्यपटीक्षेपेण अप्सराः" कहकर इसका एक वचन में भी प्रयोग किया है। हिमालय इ अप्सराओं के विलास भूषणों का, अपनी सिन्दूरगैरिकादिधातुओं से सम्पादन करता है अथवा दशरूपककार के अनुसार विभ्रम का अर्थ 'शीघ्रताव आभूषणों का विपरीत न्यास, है "विभ्रमस्त्वरया काले भूषणस्थानविपर्ययः" अर्थात् अप्सरायें हिमालय पर उपलब्ध सिन्दूर गैरिकादि धातुओं से उत्पन्न लालिमा को देखकर "सायङ्काल आ गया है" इस भ्रान्ति से अपने अं शीघ्रतया प्रसाधित करने लगती हैं। यदि विभ्रम का यही अर्थ स्वीकरणीय है तो यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार की व्यंजना माननी पड़ेगी। मण्डन का अर्थ प्रसाधन है। यहाँ "कर्तृकर्मणोःकृति" से कर्मणि षष्ठी है।

सम्पादयित्रीम्—सम्+णिजन्त पद् धातोः तृचि 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप् प्रत्ययः। सम्पादयतीति सम्पादयित्री ताम्। **वलाहकेत्यादि**—वारीणाम् वाहकाः वलाहकाः मेघाः पृषोदरादित्वात् सिद्धिः। हिमालय की सिन्दूरगैरिकादिजन्य रक्तिमा मेघों के खण्डों पर संक्रान्त होकर उन्हें भी लाल बना देती है जिससे कि सूर्यास्त वेला का दृश्य उपस्थित हो जाता है। **धातुमत्ताम्**—धातवः सन्त्यस्य धातुमान्—धातु+मतुप्, धातुमतो भावः धातुमत्ता तल् प्रत्ययः ताम्

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नुयुक्तताम् । अकालसन्ध्याम् सूर्यास्त काल के अतिरिक्त समय में उत्पन्न ध्या के समान, हिमालय की गैरिकादिधातुमत्ता सन्ध्यातिरिक्त काल में भी ध्याकाल जैसी प्रतीति करा देती है। विभर्ति—वि+भृ+लट् प्रथम एक वचन ।

आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥५॥

अन्वय—सिद्धाः आमेखलम् सञ्चरताम् घनानाम् अधः सानुगताम् याम् निषेव्य, वृष्टिभिः उद्वेजिताः (सन्तः) यस्य आतपवन्ति शृङ्गाणि श्रयन्ते ।

शब्दार्थ—सिद्धाः = सिद्ध लोग, आमेखलम् = मध्यभाग तक, सञ्चरताम् = चरण करते हुए, घनानाम् = मेघों की, अधः = शिखर के नीचे वाली, छायाम् = या का, निषेव्य = सेवन करके, वृष्टिभिः = वर्षा से, उद्वेजिताः (सन्तः) ड़ित होकर, यस्य = जिस हिमालय के, आतपवन्ति = धूप वाले, शृङ्गाणि = शखरों का, आश्रयन्ते = आश्रय लेते हैं ।

अनुवाद—सिद्ध लोग, मध्य भाग तक विचरण करते हुए मेघों की, शिखर नीचे वाली छाया का सेवन करके, पुनः वर्षा से पीड़ित होकर जिस हिमालय के धूप वाले उच्च शिखरों का आश्रय लेते हैं ।

भावार्थ—हिमालय की सर्वकाल रमणीयता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि सिद्ध लोग (जब शिखरों की चोटियों पर पड़ने वाली धूप से प्त हो जाते हैं तब वे) शिखरों के मध्य भाग तक चलते हुए मेघों की शिखरों से नीचे वाली छाया का सेवन करते हैं और यहाँ जब वे मेघों की र्षा से पीड़ित हो उठते हैं तब वे पुनः धूप वाली उच्च शिखरों की चोटियों र आश्रय प्राप्त करते हैं ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक के 'वृष्टिभिः और उद्वेजिताः पद सिद्धाः के, और आतपवन्ति पद, शृङ्गाणि के विशेषण है, ये दोनों साभिप्राय हैं अतएव ये दोनों ही सभिप्राय हैं । अतएव यहाँ परिकर नामक अलंकार है, ये दोनों ही विशेषण हेतु गर्भ भी है अर्थात् उक्त दोनों विशेषण शृङ्गाश्रयण के कारण भी हैं अतः यहाँ काव्यलिङ्ग नामक अलंकार भी है । परिकरः—उक्ति विशेषणैः साभिप्रायैः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परिकरो मतः । काव्यलिङ्ग—हेतो र्वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिङ्गमु दाहृतम् । इन्द्रवज्रा नामक छन्द है ।

समासादि—मेखलाम् अभिव्याप्य इति आमेखलम् । अधःगतानि सानू अधः सानूनि, तानि गता ताम् अधः सानुगताम् ।

संस्कृत व्याख्या—सिद्धाः = देवयोनि विशेषाः, आमेखलम् = नितम्ब पर्यन्तम्' सञ्चरताम् = परिभ्रमताम्, घनानाम् = मेघानाम्, अधःसानुगताम् शिखराधस्तात् प्राप्ताम्, छायाम् = अनातपम्, निषेव्य = नितराम् सेवि वृष्टिभिः = मेघजलधाराभिः, उद्वेजिताः (सन्तः) पीड़िताः (भूत्वा) यस् हिमालयस्येत्यर्थः, आतपवन्ति = धर्मयुक्तानि, शृङ्गाणि = शिखरा आश्रयन्ते = सेवन्ते ।

संस्कृत सरलार्थ—हिमालयशिखरस्थाः विश्वावस्वादयो देवयोनि वि सिद्धजनाः प्रथमन्तु सूर्यातपपीड़िताः सन्तः, छायाश्रयणाय किञ्चित् शिखराधः प्रदेशे परिभ्रमतां मेघानां छायामाश्रित्य, ततोऽपि पुनर्मे वर्षणधाराभिः शैत्योद्वेजिताः सन्तः आतपवन्तं हिमालयशिखर मेव सेवन्ते ।

टिप्पणी—**सिद्धाः**-सिद्धिरस्त्येषामिति सिद्धाः अर्थात् अणिमा अ अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर चुकने वाले सिद्धतापस । अथवा "पिशाचो गुह सिद्धोभूतोऽमी देवयोनयः" कोश के अनुसार सिद्ध एक देवयोनि विशे जिसमें विश्वावसु आदि सिद्ध प्रमुख हैं । **आमेखलम्**—मेखलाभ्यः इति विग्रहे आङ्मर्यादेत्यादिना अव्ययीभाव समासे 'आङ् इ पूर्वप्रयोगे-आमेखलम्, "मेखलाखण्डवन्धे स्यात् काञ्ची शैलनितम्ब सञ्चरन्तीति सञ्चरन्तः—सम् + चर् + शतृ तेषाम् । **अधः-** सानुग —अधःस्थितानि सानूनि-अधःसानूनि-मध्यम पदलोपि—समासः ततः द्वि तत्पुरुषः अधः सानूनि गता ताम् । वस्तुतः हिमालय के शिखर इतने हैं कि मेघ वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, अपितु वे इसके कटि भाग तक ही जाते हैं अतः वहाँ तो मेघों की छाया हो जाती है पर शिखरों के ऊपर सूर्य धूप फैली रहती है, अतएव सिद्ध पहले तो छाया के लिए नीचे आ जा पर वर्षा से पीड़ित हो पुनः ऊपर धूप में चले जाते हैं । **छायाम्** 'छाया प्रिया कान्तिः प्रतिविम्ब मनातपः" वृष्टिभिः 'वृष्टि र्वर्षम् (वृष् भावे क्ति आतपवन्ति .आतपोऽस्येषां तानि-आतप + मतुप् । नि + षेव् + क्त्वा-ल्यप्

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पेव्य । उद्वेजिताः उद्+णिजन्त विज्+क्त । आश्रयन्ते—आ+श्रि-लट् । स्तुत श्लोक द्वारा कवि ने यह सूचित किया है कि हिमालय के शिखर मेघ ण्डल से भी ऊँचे हैं ।

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तै र्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥६॥

अन्वय—यस्मिन् किराताः तुषारस्रुतिधौतरक्तम् हतद्विपानाम् केसरिणाम् दम् अदृष्ट्वा लपि नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलैः मार्गम् विदन्ति ।

शब्दार्थ—यस्मिन्=जिस हिमालय पर किराताः शवर, तुषारस्रुतिधौतरक्तम्—हिम (वर्फ) (तुषार) के गिरने से (स्रुति) धुले हुये (धौत) रक्त ाले, हतद्विपानाम्=हाथियों को मार चुकने वाले, केसरिणाम्=सिंहों के, दम्=पाँव रखने के स्थान अर्थात् पदचिह्न को, अदृष्ट्वा अपि=न देखकर के ी, नखरन्ध्रमुक्तैः (सिंहों के) नखों के छिद्रों (रन्ध्र) से गिरे हुये (मुक्तैः) मुक्ताफलैः=गजमुक्ताओं से, मार्गम्=मार्ग को, विदन्ति=जान लेते हैं ।

अनुवाद—जिस हिमालय पर किरात, वर्फ के गिरने से घुले हुये रक्त वाले, हाथियों को मार चुकने वाले सिंहों के पदचिह्नों को न देखकर भी (सिंहों के) नखों के छिद्रों से गिरे हुये गज-मुक्ताओं द्वारा मार्ग प्राप्त कर लेते हैं ।

भावार्थ—यद्यपि हाथियों को मारने वाले सिंहों के रक्तरञ्जित पाद चिह्न, हिमालय पर पड़ने वाली वर्फ से घुल जाते हैं फिर भी सिंहादि वन्य पशुओं का शिकार करने वाले किरात, सिंहों के पंजों के छेदों से गिरे हुये गज मुक्ताओं को देख कर ही सिंहों के गमन मार्ग का पता लगाकर उनका पीछा करते हैं ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में उदात्त नामक अलंकार है क्योंकि यहाँ अलौकिक वस्तु का वर्णन किया गया है, जैसाकि इसका लक्षण है—

"लोकातिशयसम्पत्ति वर्णनोदात्त मुच्यते ।"

उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि—तुषाराणाम् स्रुतयः ताभिः धौतं रक्तं यस्य तत्-तुषारस्रुतिधौतरक्तम् । हतद्विपानाम्-हताः द्विपाः यैस्ते तेषाम् । नखानां रन्ध्राणि तेभ्यः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मुक्तानि तैः-नखरन्ध्रमुक्तैः। मुक्ता एव फलानि तैः—मुक्ताफलैः अत्र 'मयू
कादि कर्मधारयः।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् = हिमालय पर्वते इत्यर्थः, किराताः =
तुषारस्रुतिधौतरक्तम् = हिमनिष्यन्दक्षालितशोणितम्, हतद्विपानाम् =
गजानाम्, केसरिणाम् = सिंहानाम्, पदम् = पादप्रक्षेपस्थानम्, अदृष्ट्वा
अनवलोक्य अपि, नखरन्ध्रमुक्तैः = नखरविवरस्खलितैः, मुक्ताफलैः =
मौक्तिकैः, मार्गम् = पन्थानम्, विन्दन्ति = जानन्ति।

संस्कृत सरलार्थ—यत्र हिमालये गिरिचारिणो हतगजानां सिं
शोणितारक्तानामपि पादप्रतिबिम्बानां निरन्तरस्रुतहिमजलसंक्षालित
विहीनपाद विन्यासा नवलोक्य सिंहाननुगन्तुमसमर्था अपि किराताः
सरन्ध्रेभ्यो नखरेभ्यो निपतितैः गजमौक्तिकैरेव तत्पदवीमभिज्ञायताननुगच्छ

टिप्पणी किराताः—किरं वनस्य पर्यन्तभूमिम् अतन्ति नैरन्तर्येण ग
इति किराताः "भेदा किरात शवरपुलिन्दा म्लेच्छ जातयः "इत्यमरः।
किसी पहाड़ के एक छोर पर रहने वाली, और आखेट द्वारा जीवन
करने वाली एक निम्न श्रेणी की जाति किरात कहलाती है। तुषारैः
तुषारस्रुतिः तुषाराणां हिमानां स्रुतिः स्रवणम्—स्रु भावे क्तिन्, ताभि
संक्षालितं रक्तं शोणितं यस्य तत्—पदमित्यस्य विशेषणम् सिंह ज
मस्तकों को फाड़ते हैं तब उनके पंजे रक्त से सन जाते हैं अतः चलने पर
रक्तरञ्जित पद विन्यासों को देखकर किरात सिंहों के जाने के मार्ग को
लेते हैं पर जब निरन्तर बर्फ गिरने से वह रक्त धुल जाता है, तब कि
पंजों के छिद्रों से गिरे हुये गजमुक्ताओं से ही किरात उनके मार्ग को ज
हैं, हाथियों का मस्तक चीरते समय सिंह अपने पंजों में गजमुक्ताओं
लेते हैं जो कि चलते समय उनके पंजों के छिद्रों से मार्ग पर गिर पड़
केसरिणाम्—केसराः—सिंहस्कन्धप्रदेशवर्तिरोमाणि तानि सन्त्येषान्ते
णस्तेषाम्। अतः इनिठनौ इति केसरशब्दादिनि प्रत्ययः। पदम् पद
अर्थ 'चरणपाद पदचिह्न पदविन्यास पद प्रतिबिम्ब आदि भी होता है
पदम् का अर्थ पाद-प्रतिबिम्ब है। नखरन्ध्रेति-नखानां रन्ध्रेभ्यः मुक्तानि
मूच्लृ + क्त = मुक्त।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

**न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरविन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणा मनङ्गलेखक्रियोपयोगम् ॥७॥**

अन्वय—यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुञ्जरविन्दु-शोणाः भूर्जत्वचः विद्याधर सुन्दरीणाम् अनङ्गलेखक्रियया उपयोगम् व्रजन्ति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अर्थात् हिमालय पर, धातुरसेन = सिन्दूरादि धातु द्रव से, न्यस्ताक्षराः = लिखित वर्णों वाली, कुञ्जरविन्दुशोणाः = गजविन्दुओं के समान लाल वर्ण की, भूर्जत्वचः = भूर्जपत्र वल्कल अर्थात् भोजपत्र, विद्याधर-सुन्दरीणाम् = विद्याधरियों के, अनङ्गलेखक्रियया = कामपत्र लेखन की क्रिया द्वारा, उपयोगम् व्रजन्ति = उपयोगिता को प्राप्त होते हैं। अर्थात् उनके कामपत्र लेखन के काम आते हैं ।

अनुवाद—जहाँ हिमालय पर, गैरिक सिन्दूर आदि धातुओं के द्रव (रस) से लिखे गये अक्षरों वाले (अतएव) गज विन्दुओं के समान लाल वर्ण वाले भूर्ज-पत्र, विद्याधर सुन्दरियों के कामपत्र लेखन की क्रिया द्वारा काम में लाये जाते हैं । अर्थात् विद्याधारियाँ अपने प्रियतमों को प्रेम-पत्र लिखने के लिये भोज पत्रों का उपयोग करती थीं ।

भावार्थ—हिमालय पर भोजपत्र पाये जाते हैं विद्याधारियाँ इन भोज पत्रों पर अपने प्रियतमों के लिये, हिमालय पर उपलब्ध गैरिक सिन्दूर आदि धातुओं के द्रव से प्रेम पत्र लिखती थीं, विद्याधारियों द्वारा रक्तद्रव से लिखे गये अक्षरों वाले ये भूर्जपत्र गज शरीर पर अवस्थानुकूल उभरे हुये लाल लाल विन्दुओं जैसे लगते थे । इस प्रकार ये भोजपत्र उनके प्रेम पत्र लिखने के काम आते थे ।

अलंकार—हिमालय की अलौकिक महिमा का वर्णन होने के कारण इस श्लोक में उदात्त नामक अलंकार है और उपजाति छन्द है ।

समासादि—धातूनां रसस्तेन-धातुरसेन । न्यस्तानि अक्षराणि यासु ताः न्यस्ताक्षराः । (यह 'भूर्जत्वचः का विशेषण है । कुञ्जराणां विन्दव इव शोणाः-कुञ्जरविन्दुशोणाः । भूर्जानां त्वचः भूर्जत्वचः । विदन्ति आभिः ताः विद्याः धरन्तीति धराः, विद्यानांधराः विद्याधरास्तेषां सुन्दर्यः तासाम्-विद्याधर सुन्दरीणाम् । अनङ्गस्य लेखाः तेषां क्रिया तया-अनङ्गलेख क्रियया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संस्कृत व्याख्या—यत्र = यस्मिन् हिमालय पर्वते, धातुरसेन = तत्रोप गैरिक सिन्दूरादिधातुद्रवेण, न्यस्ताक्षराः = लिखितवर्णाः (अतएव) कु विन्दुशोणाः गजशरीरसंजातवयोविशेषभावि-पद्मकाख्यविन्दुवद्रक्तवर्णाः भूर्जत्वचः = भूर्जपत्रवल्कलानि, विद्याधरसुन्दरीणाम्-विद्याधराख्य देव विशेषकामिनीनाम् अनङ्गलेखक्रियया = कामपत्रलेखनक्रियया, उप व्रजन्ति = उपयुज्यन्ते ।

संस्कृत सरलार्थ—हिमाद्रौ विद्याधराः स्वकामिनीभिः सह निवस एताः कामिन्यः गजानां पद्मकाख्यविन्दुवद्रक्तवर्णासु तत्रोपलब्धभूर्जत्वक्षु सिन्दूरादिधातुद्रवेण स्वकीय-सन्देशमयाक्षराणि विलिख्य स्वप्रियत प्रयच्छन्ति । एवमेताः तत्रोपलब्धभूर्जत्वचः विद्याधरीभिः प्रेमपत्रले प्रयुज्यन्ते ।

टिप्पणी—**यत्र**—यच्छब्दात् 'सप्तम्यास्त्रल्' इति त्रल् प्रत्ययः । धातु सिन्दूरादि धातुओं के द्रव (घोल) से । **न्यस्ताक्षराः**—यह भूर्जत्वचः का वि है । न क्षरन्ति इत्यक्षराणि न्यस्तानि अक्षराणि यासु ताः, नि+अस् = न्यस्त । **कुञ्जरविन्दुशोणाः** = यह प्रसिद्ध है कि लगभग ५० वर्ष की पर पर्वतीय गजों के कुछ शरीराङ्गों पर, जैसे कपोल सूँड़, कर्ण आदि— अवस्था के सूचक लाल रंग के विन्दु निकल आते हैं और ये उत्तरोत्तर होते जाते हैं । इन बिन्दुओं को पद्मक कहा जाता है । विद्याधरियों भोज पत्रों पर सिन्दूर के घोल से लिखे गये अक्षर, गज शरीर पर उभ इन लाल-लाल पद्मक बिन्दुओं जैसे मनोहर लगते थे । कुञ्ज शब्द से कुञ्जादिभ्य उपसंख्यानम्" सेर प्रत्यय होकर कुञ्जर शब्द बनता है । कु विन्दवः पद्मकाख्यविन्दव इव शोणा रक्तवर्णाः, उपमानानि सामान्य वच समासः ।

विद्याधरेत्यादि—सिद्ध किन्नर यक्ष गन्धर्व आदि के समान विद्याधर देव योनि विशेष है, विद्ज्ञाने धातु से क्यप् प्रत्यय होकर विद्याशब्द बन **अनङ्गेत्यादि**—अविद्यमानम् अङ्गं यस्य सः अनङ्गः कामः अनङ्गस्य लेख क्रिया—क्रियते या सा क्रिया, कृञ् धातोः (कृञ् शच इति) श प्रत्ययः,

इस श्लोक से कवि ने हिमालय पर विद्याधरियों का निवास औ द्वारा भोज पत्रों का प्रेम पत्र के रूप में उपयोग बतलाया है, इससे का वैशिष्ट्य भी ज्ञात होता है ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्त्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्व मिवोपगन्तुम् ॥८॥

अन्वय—यः दरीमुखोत्त्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् पूरयन् उद्गास्यताम् किन्नराणाम् तानप्रदायित्वम् उपगन्तुम् इच्छति इव ।

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय, दरीमुखोत्त्थेन = गुफा रूप मुख से निकली हुई, समीरणेन = वायु के द्वारा, कीचकरन्ध्रभागान् = कीचक नामक वेणु के छिद्र प्रदेशों को, पूरयन् = भरता हुआ, उद्गास्याम् = गानारम्भ करने वाले, किन्नराणाम् = किन्नरों के लिए, तानप्रदायित्वम् = तानप्रदायिता को, उपगन्तुम् इच्छति इव = मानो प्राप्त करने के लिए इच्छा करता है ।

अनुवाद—जो हिमालय (अपने) गुहा रूपी मुख से निकली हुई वायु के द्वारा कीचकों (एक प्रकार का बाँस जिसे वेणु कहते हैं) के छिद्रों को आपूरित करता हुआ, उच्च स्वर से गानारम्भ करने वाले किन्नरों को मानो तानप्रदायिता प्राप्त करने की इच्छा करता है ।

भावार्थ—जैसे सामान्यतः जब कोई व्यक्ति गाना आरम्भ करता है तब कोई दूसरा अपने मुख की वायु को बांसुरी आदि वाद्य में भरकर गाये जाने वाले स्वरों में सुर भरता है, उसी प्रकार हिमालय अपने गुहा रूपी मुख से विनिर्गत वायु को कीचक नामक बाँसों के छिद्रों में भरकर उस समय उच्च स्वर में गाना आरम्भ करने वाले किन्नरों को मानो वह तान देने की इच्छा करता है ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में 'इच्छतीव' द्वारा बोधित उत्प्रेक्षालंकार तथा 'दरीमुखोत्त्थेन' पद में रूपक अलंकार है । उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि—दरी एव मुखम् दरीमुखम् (मयूरव्यंसकादि कर्मधारय) तस्मादुत्तिष्ठतीति दरीमुखोत्त्थस्तेन—दरीमुखोत्त्थेन । कीचकानां रन्ध्राणि तेषां भागास्तान् कीचकरन्ध्रभागान् । तानं प्रदातुं शीलं यस्य स तानप्रदायी तानप्रदायिनां भावः तानप्रदायित्वम् तत्—तानप्रदायित्वम् । उत् (उच्चैः) गास्यन्तीति उद्गास्यन्तः तेषाम्—उद्गास्यताम् । कुत्सिताः नराः तेषाम्—किन्नराणाम् ।

संस्कृत व्याख्या—यः = हिमालयः, दरीमुखोत्त्थेन = गुहा रूप मुख विनिर्गतेन, समीरणेन = वायुना, कीचकरन्ध्रभागान् = वेणुच्छिद्रप्रदेशान्, पूरयन् = धमयन्,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उद्गास्यताम् = उच्चैः गानं करिष्यताम्, किन्नराणाम्—देवयोनि विशेषा तानप्रदायित्वम् = अंश स्वर प्रदानशीलत्वम् वांशिकत्वं वा, उपगन्तुम् = प्रा इच्छति = अभिलषति इव ।

संस्कृत सरलार्थ—यो हिमालयः स्वकीयकन्दरास्यविनिर्गतेन वा कीचकवेणुच्छिद्रप्रदेशानापूरयन् किन्नराणा मुच्चैः गानारम्भावसरे तथैवां प्रदानशीलत्वं वांशिकत्वं वाधिगन्तुमभिलषति यथा कश्चिदन्यः कस्यचिद् गाना स्वमुखवायुं कस्मिंश्चिद् वाद्यविशेषे सम्पूर्य गेयस्वराणां तानप्रदानं विधत्ते ।

टिप्पणी—दरीत्यादि—हिमालय की कन्दरा ही मानो उसका मु अर्थात् कन्दरा रूपी अपने मुख से "दरी तु कन्दरोवाऽस्त्री देवखात बिल इत्यमरः, उत्थेन = निकले हुए, उत् + स्था धातोः आतश्चोपसर्गे इति कर्त प्रत्ययः ततः उदःस्थेति पूर्व" सवर्णः—उत्थः तेन-उत्थेन । **समीरणेन**— "समीरमारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणाः इत्यमरः । **कीचकेत्यादि**—"कीचका वरतेस्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" अर्थात् कीचक वे वेणु या वांस कहे जाते कि अपने छिद्रों में वायु के भर जाने से और हिलाने से बजने लगते हैं, अर्थात् छिद्र, इन वांसों में अपने आप छिद्र हो जाते हैं, भाग का अर्थ स्थल या स्थान है अर्थात् कीचकों के छिद्र प्रदेशों में । **पूरयन्** णिजन्त पु प्रथमैक वचन । **उद्गास्यताम्** = उच्च स्वरों में गानारम्भ करने वाले उ गै धातोः लृटि लृटः सद्वां' इति लृटः शत्रादेशः, उद्गास्यन्तीति उद्गास्य तेषाम् उद्गास्यताम् उच्चस्वरैः गानं करिष्यताम् । **किन्नराणा** कुत्सिता नराः किन्नराः, सम्भवतः अश्वमुख होने के कारण ही देवयोनि विशेष को किन्नर कहा गया है । यहाँ 'कुगतिप्रादयः से समा **तानप्रदायित्वम्**—तान देना या स्वर भरना । जैसे कोई किसी के गाना गाते अपने मुख की वायु को वंशी आदि वाद्य में भरकर गाने वाले के साथ अंश देता है उसी प्रकार हिमालय भी अपने गुहा रूप मुख से निकली वा कीचकों के रन्ध्रों में भर कर गाने वाले किन्नरों को तान देना अर्थात् अंश या सुर देता था ।

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥९॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अन्वय—यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुम् विघट्टितानाम् सरल द्रुमाणाम् स्रुतक्षीरतया प्रसूतः गन्धः सानूनि सुरभी करोति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ हिमालय पर, करिभिः = गजो द्वारा, कपोलकण्डूः = कपोलों की खुजली (कण्डू) को, विनेतुम् = मिटाने के लिये, विघट्टितानाम् = रगड़े गये, सरल द्रुमाणाम् = देवदारु वृक्षों के, स्रुतक्षीरतया = दूध चूने से, प्रसूतः = उत्पन्न हुआ, गन्धः = सुगन्ध, सानूनि = शिखरों को, सुरभीकरोति = सुगन्धित बना देता है ।

अनुवाद—जिस हिमालय पर, हाथियों द्वारा, (अपने) कपोलों की खुजली को मिटाने के लिये, रगड़े गये सल्लकी वृक्षों के दूध चूने से उत्पन्न हुआ सुगन्ध शिखरों को सुगन्धित बना देता है ।

भावार्थ—हिमालय पर देवदारु या सल्लकी के वृक्ष है, हाथी जब अपने गण्डस्थलों की खुजली मिटाने के लिये इन वृक्षों पर अपने गण्डस्थल रगड़ते हैं इनसे दूध चूने लगता है, इस दूध से जो सुगन्धि उत्पन्न होती है वह पर्वतीय शिखरों को भी सुगन्धित बना देती है ।

समासादि——कपोलयोः कण्डूः कपोलकण्डूः ताः-कपोलकण्डूः । सरलद्रुमाणाम् = सरलाश्च ते द्रुमाः तेषाम् । स्रुतक्षीरतया = स्रुतानि क्षीराणि येषान्ते तेषां भावः स्रुतक्षीरता तया ।

संस्कृत व्याख्या—यत्र—यस्मिन् हिमालये, करिभिः गजैः, कपोलकण्डूः = गण्डस्थलखर्जूः, विनेतुम् = अपनेतुम्, विघट्टितानाम् = घर्षितानाम्, सरलद्रुमाणाम् = देवदारु वृक्षाणाम्, स्रुतक्षीरतया = क्षरितदुग्धतया, प्रसूतः = उत्पन्नः, गन्धः = सुरभिः, सानूनि = शृङ्गाणि, सुरभीकरोति = सुगन्धितानि करोति ।

संस्कृत सरलार्थ—यस्मिन् हिमालये तत्रोद्भवै गजैः स्वगण्डस्थलयोः खर्जूतीः दूरीकर्तुं घर्षितानां तत्रत्य देवदारुतरुणां गलितदुग्धतया समुद्भूतः गन्धः शृङ्गस्थान् सौरभ्यविरहितानपि पदार्थान् सुगन्धियुक्तान् विधत्ते ।

टिप्पणी—करिभिः—करः शुण्डादण्डः अस्त्येषान्ते करिणस्तैः करिभिः, कर शब्दात् नित्ययोगे 'अतइनिठनौ' इति इनि प्रत्ययः । हिमालय पर इस प्रकार के अनेक हाथी पाये जाते हैं, इससे हिमालय को गजाकर भी कहा जाता है, यह इन हाथियों का उत्पत्ति-स्थल भी है "हिमवद्विन्ध्यमालया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गजानां प्रभवा नगाः" । **कपोलकण्डूः**—कण्डू अर्थात् खुजली "कण्डूः खर्जिः कण्डूया इत्यमरः, इसे कण्डूति भी कहते हैं । **विनेतुम्**=वि+नी+तुम् **विघट्टितानाम्**—विशेषेणघट्टिताः विघट्टिताः "सह सुपेत्यत्र समासः । प्र+सू=क्त । **सुरभीकरोति**—सुरभि+च्वि=कृ+लट् । **सरल** द्रुम देवदारु सल्लकी या सलई के ये वृक्ष हिमालय पर अधिक संख्या में पाये जाते हैं लम्बे और सीधे होते हैं, इनकी लकड़ी हल्की होने के साथ-साथ सुगन्धित होती है, इसकी लकड़ी का बुरादा हवन-सामग्री में काम देता है, हरे से काटने पर सुगन्धित दूध निकलता है जो कि आस-पास के पदार्थों को सुगन्धित बना देता है । गजों का यह स्वभाव होता है कि जब उनके स्थलों में खुजली उत्पन्न होती है तब वे उसे मिटाने के लिये इन वृक्षों अपने कपोलों को रगड़ते हैं फलतः वृक्षों की छाल उखड़ जाने से इनसे टपकने लगता है, जो कि सुगन्धित दूध हवा में मिलकर अन्य पदार्थों को सुगन्धित कर देता है ।

कवि ने ऐसा ही भाव रघुवंश के इस श्लोक में प्रकट किया है—

"कण्डूयमानेन कटं कदाचिद् वन्य द्विपेनोन्मथितात्वगस्य" ।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्त भासः ।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्या मतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥१०॥

अन्वय—यत्र रजन्याम् दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः ओषधयः व सखानाम् वनेचराणाम् अतैलपूराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति ।

शब्दार्थ—यत्र=जहां अर्थात् हिमलाय पर, रजन्याम्=रात्रि दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः=दरीगृह=कन्दरा रूपी गृहों के, उत्सङ्ग भीतरी भाग में, निषक्त=सक्रान्त, भासः कान्ति या प्रकाश अर्थात् फैलाने वाली, औषधयः=प्रकाशमान तृणविशेष, वनितासखानाम्= सहचरी स्त्रियों वाले, वनेचराणाम्=वन में घूमने फिरने वाले किरात के, अतैलपूराः=तेल डालने की अपेक्षा से रहित अर्थात् बिना तेल के प्रदीपाः=काम क्रीड़ा के दीपक, भवन्ति=हो जाते हैं ।

अनुवाद—जिस हिमालय पर, रात्रि के समय, कन्दरा रूपी भीतरी भागों में प्रकाश को फैलाने वाले विशेष प्रकार के तृण, स

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सहित वनचारी किरातादिकों के लिये विना तेल के काम-क्रीड़ा के दीपक
जाते हैं।

भावार्थ—हिमालय पर कुछ इस प्रकार के तृण पाये जाते है, जिनसे रात्रि में प्रकाश किरणें निकलती रहती हैं, अतः रात्रि में भी इनसे वहाँ प्रकाश रहता है, ये तृणविशेष, सपत्नीक वनचारी किरातादिकों द्वारा सेवित गुफा गृहों के भीतर भी पाये जाते हैं। अतः रात्रि के समय उन गुफाओं के भीतर भी प्रकाश रहता है। वनेचर किरात अपनी सहचरियों सहित रात्रि में इन गुफाओं में रहते हैं अतः ये तृणविशेष उनके लिए विना तेल के काम-क्रीड़ा के समय के दीपकों का काम देते हैं।

अलंकार—इस श्लोक के अलंकार के विषय में विद्वानों में मतभेद है, मल्लिनाथ ने इसमें **विभावना** अलंकार माना है, क्योंकि दीपक के कारण भूत तेल के न होने पर भी प्रकाशरूप कार्य की यहाँ उत्पत्ति बतलायी गयी है। "विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदोच्यते"। किन्तु आचार्य वामन ने इसमें **विशेषोक्ति** नामक अलंकार माना है जो कि विभावना के ठीक विपरीत होता है क्योंकि इसमें कारण के रहते हुए भी कार्योत्पत्ति नहीं होती। आचार्य मम्मट के अनुसार इसमें **रूपक** है मल्लिनाथ तथा आचार्य विश्वनाथ इसमें परिणामालंकार मानते हैं क्योंकि यहाँ औषधियों पर प्रदीप का आरोप कर उनका प्रकृत में उपयोग किया गया है "आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः" विभावना और परिणाम दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं अतः यहाँ दोनों की संसृष्टि है।

उपेन्द्रवज्रा नामक छन्द है।

समासादि—वने चरन्तीति वनेचराः तेषां वनेचराणाम्। वनितानां सखायः वनितासखाः तेषां वनितासखानाम्। दर्यः एव गृहाः दरीगृहाः दरीगृहाणाम् उत्सङ्गाः दरीगृहोत्सङ्गाः दरी गृहोत्सङ्गेषु निषक्ताः भासः यासां ताः = दरी गृहोत्सङ्गनिषक्तभासः। तैलेन पूर्यन्ते इति तैलपूराः न तैलपूराः अतैलपूराः। सुष्ठुरतं रमणं यस्मिन् कर्मणि तत् सुरतम्। प्रकृष्टाः दीपाः प्रदीपाः सुरते प्रदीपाः-सुरतप्रदीपाः।

संस्कृत व्याख्या—यत्र = हिमालये, रजन्याम् = रात्रौ, दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः = गुहागृहाभ्यन्तरेषु संक्रान्तकान्तयः। ओषधयः = तृणज्योतींषि। वनितासखानाम् = पत्नी सहितानाम्, वनेचराणाम् = किरातानाम्, अतैलपूराः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

=अनपेक्षित तैलनिषेकाः, सुरतप्रदीपाः निधुवनसमयोपयोगिनः प्रकृष्टदी भवन्ति=जायन्ते ।

संस्कृत सरलार्थ—यत्र हिमालये रात्रिकाले गुहागृहाभ्यन्तरेषु जा मानानि तृणविशेषज्योतींषि किरातादिवनेचरदम्पतीनाम अनपेक्षि निषेकाः सुरतसमयोपयोगिनः प्रकृष्टाः दीपका जायन्ते ।

टिप्पणी—रजन्याम्—रात्रि के समय "विभावरीतमस्विन्यौ रजनी य तमी" इत्यमरः । दरीत्यादि—दर्यः एव गृहाः "गृहाः पुंसि च भूम्न्येव नि निलयालया" इत्यमरः । उत्सङ्गाः आभ्यन्तर प्रदेशाः भीतरी भाग, भासः शब्द का प्रथमा बहुवचन । निषक्त—नि+सज्ज्+क्त=फैलाना या भासः=कान्तयः, "भाश्छविद्युतिदीप्तयः" । ऐसी मान्यता है कि "अग्नाव षु च तेजो निधाय रविरस्तं याति" अर्थात् सूर्य अपने तेज को अग्नि औ में स्थापित करके अस्त होता है । अतएव रात्रि में इन औषधियों से होता है । औषधयः—प्रकाशित होने वाले तृण विशेष । वनितासखान वनितानां सखायः अत्र तत्पुरुषः समासोत्तरं राजाहः सखिभ्यष्टच् इति स न्तष्टच् प्रत्ययः, वनितासखाः वनितासखानाम् । "प्रतीपदर्शिनी वामा महिला तथा" इत्यमर । वनेचराणाम्—वने चरन्तीति वनेचराः वने धातोः चरेष्टः इति 'ट' प्रत्ययः 'तत्पुरुषे कृति वहुलम्' इति सप्तम्या अ सुरतप्रदीपाः—रतम् रमणम् अत्र रम्धातोः भावे क्त प्रत्ययः, सुष्ठुरतं 'मैथुनं निधुवनं रतम्' यद्यपि रतम् का ही अर्थ मैथुन है तथापि यहां कर्मरूप विशेषार्थ वोधन के लिए सुपद का प्रयोग किया गया है और केवल नहीं, अपितु सुरतम् कहा गया है, इसी प्रकार प्रकृष्टाः दीपाः प्रदीपाः प्रादय', इति समासाः, ये दीपक अन्य दीपकों से इसलिये प्रकृष्ट थे ये विना तेल के ही जलते थे अतएव इन्हें प्रदीप कहा गया है । सुरते प्र सुरतप्रदीपा, शौण्डादि गणस्या कृतिगणत्वादत्र सप्तमीतत्पुरुषः ।

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान् मार्गे शिलीभूत हिमेऽपि यत्र
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥११

अन्वय—यत्र शिलीभूत हिमे अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अ दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता अश्वमुख्यः मन्दाम् गतिम् न भिन्दन्ति ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शब्दार्थ—यत्र = जिस हिमालय पर्वत पर, शिलीभूतहिमे = घनीभूत तुषार ाले (अतएव) अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् = (पैरों की) अङ्गुलियों और उनके लवों के भागों को, उद्वेजयति अपि = कष्टदायक होने वाले भी, मार्गे = मार्ग र, दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः = कठिनता से वहन करने योग्य नितम्ब स्थल एवं तनों से पीड़ित; अश्वमुख्यः = अश्व- मुखी किन्नरियाँ, मन्दां गतिम् = (अपनी वाभाविक) मन्थर चाल को, न भिन्दन्ति = नहीं छोड़ती हैं।

अनुवाद—जिस हिमालय पर्वत पर, (जमकर पाषाण-तुल्य कठोर हुए) नीभूत वर्फ वाले (अतएव) (पैरों की) अंगुलियों और उनके तलवों के भागों ो कष्टप्रद होने वाले भी मार्ग पर, कठिनता से वहनीय नितम्ब स्थल एवं तनों से पीड़ित अश्वमुखी किन्नरियाँ (अपनी स्वाभाविक) मन्थर चाल को हीं छोड़ती हैं।

भावार्थ—हिमालय पर वर्फ जमकर शिलातुल्य कठोर हो गया है; अतएव वह उन चलने वाली किन्नरियों के पैरों की अंगुलियों एवं उनके तलवों के लिए कष्टकारक वन गया है, फिर भी ऐसे वर्फीले एवं कष्टकारक मार्ग पर, अपने दुर्वहनीय नितम्ब एवं स्तनों के भार के कारण, अश्वमुखी किन्नरियाँ अपनी स्वाभाविक मन्द गति से ही चलती हैं, नितम्ब स्तन भार के कारण वे शीघ्रता में नहीं चल सकती हैं।

अलंकारादि—प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलंकार है, क्योंकि यहाँ श्रोणि-पयोधरार्ताः यह हेतुगर्भ विशेषण है।

"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते।"

छन्द—उपजाति छन्द है।

समासादि—शिलीभूत हिमे—अशिलाः शिला यथा सम्पद्यन्ते तथाभूताः शिला इति शिलीभूताः, शिलीभूताः पाषाणवत्काठिन्यं प्राप्ताः हिमा यस्मिन् स तस्मिन्। अंगुलिपार्ष्णिभागान् = अंगुलयश्च पार्ष्ण्यश्च इति अंगुलिपार्ष्णि, अंगुलिपार्ष्णिनो भागास्तान्। दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः = दुःखेन वोढुं शक्यं दुर्वहम्, धरन्तीति धराः पयसां धराः पयोधराः, श्रोणयश्च पयोधराश्च श्रोणि-पयोधरम्, दुर्वहं च तत् श्रोणिपयोधरं दुर्वहश्रोणिपयोधरम् तेन आर्ताः इति दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः। अश्वमुख्यः—अश्वानां मुखानीव मुखानि यासां ताः अश्वमुख्यः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संस्कृत व्याख्या—यत्र = हिमालये शिलीभूतहिमे = (संघातेन) घनी तुषारे (अतएव) अंगुलिपार्ष्णिभागान् = चरणांगुलितलप्रदेशान्, उद्वेजयति अतिक्लेशयति अपि, मार्गे = पथि, दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः = दुर्वहाभ्यां स्थलाभ्यां स्तनाभ्याञ्च पीड़िताः, अश्वमुख्यः = तुरङ्गाननाः किन्नरस्त्रियः मन्दाम् (स्वाभाविकीम्) मन्थराम्, गतिम् = गमनम्, न भिन्दन्ति त्यजन्ति।

संस्कृत सरलार्थ—यत्र हिमवति, संघातेन घनीभूततुषारे अतएव चरणांगुलितल भागेषु पीडादायकेऽपि मार्गे तुरङ्गाननाः किन्नरस्त्रियः स्वकीय श्रोणि जघनस्तन भारखिन्नाः सत्यः स्वकीयं स्वाभाविकं मन्थरं गमनं न त्यजन्ति।

टिप्पणी—उद्वेजयति—उत् + णिजन्त विजी धातोः शतृ प्रत्यये सप्त वचने रूपम्। पीडा पहुँचाने वाले, यह मार्गे का विशेषण है। अंगुलीति = अंगुल पार्ष्ण्यश्चेति विग्रहे समाहारद्वन्द्व समासे द्वन्द्वश्च प्राणितूर्येत्यादिना प्राण्यङ्ग समाहारैकत्वम्। पैरों की अंगुलियों और तलवों के लिए भी कष्टं लगातार वर्फ पर चलते-चलते पैरों की अंगुलियाँ और तलवे शैत्याधिक्य गलने से लगते है, उनका रक्त जमने लगता है, और अन्ततोगत्वा उनमें होने लगती है। शिलीभूतहिमे = अशिलाः शिला यथा सम्पद्यन्ते तथा इति शिलीभूताः 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः इति च्वि प्रत्यये, च्वौ दीर्घे शिलीभूताः इति सिद्ध्यति। यह सर्वविदित है कि हिमालय पर जमकर कठोर चट्टान की तरह बन जाती है, यद्यपि उसका ऊपरी भाग लगने से पिघल जाता है तथापि नीचे की मोटी-मोटी वर्फ की तहें बनी रहती हैं। दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः = दुःखेन वोढुं शक्यम् दुर्वहम्—दुर् + धातोः ईषद्दुःसुस्विति' खल् प्रत्ययः। धरन्तीति धराः अत्र पचाद्यच् प्र श्रोणयश्च पयोधराश्चेति द्वन्द्वे प्राण्यङ्गत्वादत्रापि समाहारैकत्वम्। आर्ता पीडिताः, दुःखेन वहनीय नितम्बों एवं स्तनों के भार से पीड़ित। आर्ता अत्र आङ् पूर्वकात् ऋच्छ् धातोः क्त प्रत्यये। उपसर्गादृति धातोरिति वृ विशाल नितम्ब और कुचकलश स्त्रियों के लिए सौन्दर्याधायक हों इनकी ही स्थूलता के कारण वे प्रायः झुक कर धीरे-धीरे चल जिसे उनका स्वाभाविक विलास कहा जाता है। अश्व मुख्यः = यह जाता है कि किन्नरों का शरीर तो मानवों जैसा पर मुख अश्वों जैसा हो "स्यात् किन्नरः किं पुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः" इत्यमरः।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥१२॥

अन्वय—यः दिवाभीतम् इव गुहासु लीनम् अन्धकारम् दिवाकरात् रक्षति, उच्चैः शिरसाम् शरणं प्रपन्ने क्षुद्रे अपि सति इव नूनम् ममत्वम् (भवति) ।

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय, दिवा भीतम् = दिन में भयभीत, इव = मानो, (दिवाभीत का अर्थ उलूक भी होता है, अतः यहाँ तात्पर्य है—उलूक जैसा दिन में भयभीत हुआ सा) गुहासु = कन्दराओं में, लीनम् = छिपे हुए, अथवा लगे हुये, अंधकारम् = अन्धकार की । दिवाकरात् रक्षति = सूर्य से रक्षा करता है । उच्चैः शिरसाम्-उदार चरित्र वाले लोगों का, शरणं प्रपन्ने = शरण में आये हुये, क्षुद्रे अपि = नीच जन के प्रति भी, सति इव = सज्जन के समान, नूनम् = निश्चय ही ममत्वम् = ममता या आत्मीयता = (भवति) = होती है ।

अनुवाद—जो हिमालय (उलूक के समान ही) दिन में भयभीत हुये जैसे, अतएव कंदराओं में छिपे हुये, अथवा संश्लिष्ट हुये अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है, (क्योंकि) उदार जनों का, शरण में प्राप्त हुये नीचजन के प्रति भी सज्जन जैसा ही व्यवहार होता है ।

भावार्थ—हिमालय की असंख्य गुफायें इतनी विशाल और गहरी हैं कि उनमें दिन-रात अंधकार बना रहता है, सूर्य का प्रकाश वहाँ नहीं पहुंच पाता है, कवि की कल्पना है कि मानों समस्त संसार का अंधकार सूर्य से त्राण पाने के लिए इन गुफाओं में आकर छिप गया है और इस प्रकार हिमालय अपनी शरण में आये हुये अंधकार की सूर्य से रक्षा करता है । उदार जनों का यह स्वभाव ही होता है कि रक्षार्थ अपनी शरण में आये हुए जनों की वे रक्षा करते ही हैं, फिर शरणागत व्यक्ति चाहे जैसा हो, अच्छा हो या बुरा, इसकी वे चिन्ता नहीं करते ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है । क्योंकि यहाँ उत्तरार्द्धगत सामान्य वाक्य से पूर्वार्द्धगत विशेष वाक्य का समर्थन किया गया है । साहित्य दर्पण के अनुसार इसका लक्षण हैं—

सामान्यं वा विशेषेण विशेषेस्तेन वा यदि ।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा मतः : ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

छन्द—उपजाति है ।

समासादिः—दिवाकरात्=दिवा दिवसं करोतीति दिवाकरः तस्मा दिवाभीतम् दिवा (एतदव्ययपदम्) अर्थात् दिव से भीतम् त्रस्तम् इति दि भीतम् । **उच्चैः शिरसाम्**=उच्चैः शिरो येषान्ते तेषाम् ।

संस्कृत व्याख्याः—यः — हिमालयः, दिवाभीतम्=दिवसे भयाविष्ट (अथवा, दिवाभीतम् उलूकम्—इव) गुहासु=कन्दरासु, लीनम्=संश्लि संविष्टम्—वा अन्धकारम्=तमः, दिवाकरात्=सूर्यात्, रक्षति=त्रायते । शिरसाम्=उदाराशयवताम् उन्नतानाम् वा, शरणं, गृहम्, प्रपन्ने=सम मां रक्षेत्या शया स्वगृहमुपागते, इत्याशयः । क्षुद्रे=नीचजनेऽपि, सति= इव, नूतम्=अश्वयमेव, ममत्वम् आत्मीयत्वम् (भवति) ।

संस्कृत सरलार्थः—हिमालयोऽयमस्ति शरणागतरक्षकः अतएवायं भयाविष्टम् अतएव आत्मरक्षार्थं दिवाभीतमिव स्वकीय—कन्दरासु संविष्ट दिनकरात् त्रायते, यतो हि उदारचरितानां महात्मनामेषा स्वाभाविकी भवति यत् आत्मत्राणहेतोः स्वगृहमागते नीचजनेऽपि श्रेष्ठजन इव तेषामात्मी यत्वं जायते ।

टिप्पणीः—दिवाकरात अत्र दिवोपपदात् कृञ् धातोः दिवाविभे त्यादि प्रत्ययः, भीत्रार्थानां भयहेतुः इति अपादानत्वात् पञ्चमी ।

दिवाभीतम्—दिवेत्यव्ययपदम्, अतोऽत्राव्ययीभाव समासः । दिवा शब्द उलूक के भी अर्थ में प्रयुक्त होता है, क्योंकि वह भी दिन में सूर्य से भयभीत रहता है "दिवान्धः कौशिकोलूको दिवाभीतो निशाटनः यह वचन है ।

उच्चैः शिरसाम्—ऊँचे शिर वाले उन्नतशिरस्क वही लोग होते उदाराशय एवं शरणागत-वत्सल होते हैं । यहाँ हिमालय उन्नतशिरस्क क्योंकि वह क्षुद्र भी और अचेतन भी अन्धकार पर वैसी ही ममता रख जैसी कि श्रेष्ठ जन पर । अतएव वह उसकी सूर्य से रक्षा करता है ।

शरणम्—=शरण का अर्थ गृह भी है और रक्षिता भी शरणं गृहर इत्यमरः । **सति**—अस्—धातोः शत प्रत्यये अकार लोपे सत् इति रूपम्

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

म्येकवचने सति । सत् शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है "सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्दिते च सत् इत्यमरः ।

ममत्वम्—मम भावः ममत्वम्, यहाँ मम यह पद अस्मद् शब्द का प्रतिरूपक अव्यय है, अतः इससे त्व प्रत्यय होकर ममत्व शब्द बना है ।

आचार्य मम्मट ने इस श्लोक को अनुचितार्थता दोष के उदाहरण में रखा है क्योंकि उनकी मान्यता है कि अचेतन अंधकार को सूर्य से क्या भय हो सकता है अतः उसके त्राण की भी क्या आवश्यकता थी ।

लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥१३॥

अन्वय—चमर्यः इतस्ततः लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः यस्य गिरिराज-शब्दम् अर्थयुक्तम् कुर्वन्ति ।

शब्दार्थ—चमर्यः = चमरी नामक पर्वतीय मृगियां, इतस्ततः = इधर-उधर चारों ओर । लाङ्गूल विक्षेपविसर्पिशोभैः = पूँछों के हिलाने से फैलने वाली कान्तियों वाले, (लाङ्गूल पूँछ, विक्षेप = हिलाना, विसर्पि = विसरण शील, शोभा = कान्ति) चन्द्रमरीचिगौरैः := चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत वर्ण वाले, वालव्यजनैः = चामरों के द्वारा, यस्य = जिस हिमालय के, गिरिराजशब्दम् = पर्वतराज नाम को, अर्थयुक्तम् = सार्थक, कुर्वन्ति = करती हैं ।

अनुवाद—चमरी नामक मृगियाँ इधर-उधर, चारों ओर, पूँछों के हिलाने से फैलने वाली कान्तियों वाले (तथा) चन्द्रकिरणों के समान श्वेत वर्ण वाले (अपने) चामरों के द्वारा जिस हिमालय के गिरिराज नाम को सार्थक करती हैं।

भावार्थ—राजा के प्रमुख चिह्न हैं । छत्र अर्थात् राज छत्र तथा चामर, इनके विना कोई राजा नहीं कहा जाता, हिमालय गिरिराज अर्थात् पर्वतों का राजा कहा जाता है, अतः उसके राजभाव के लिये भी उक्त दोनों पदार्थों की आवश्यकता थी, कवि ने इस श्लोक द्वारा यह बतलाया है कि चमरी हरिणियाँ अपनी पूँछें चारों तरफ हिला कर मानों गिरिराज हिमालय पर चामर डुलाती हैं, और इससे वे उसके—गिरिराज नाम को सार्थक करती हैं, इनकी पूँछें सघन बालों वाली एवं लंबी होती है, इन्हीं की पूँछों से वस्तुतः सच्चे चामर बनाये जाते हैं जो राजाओं या देवताओं पर डुलाये जाते हैं, प्रायः चामर श्वेत ही होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं, अतएव इनकी भी ये पूंछें चन्द्रवत श्वेत थीं तथा इनकी कान्तियां चारों ओर फैल रही थीं।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलंकार है, क्योंकि यहाँ गिरिराज को सार्थकता का हेतु बतलाया गया है, इसका लक्षण-हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते।

छन्द—उपजाति है।

समासादि:—लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैः = लाङ्गूलानां विक्षेपैः विसर्पि शोभा येषां तानि तैः। चन्द्रमरीचिगौरैः = चन्द्रस्य मरीचयः इव गौराणि तैः। बालव्यजनैः = बाला एव व्यजनानि तैः। गिरिराज शब्दम् = गिरिराजश्च शब्दः तम्।

संस्कृत व्याख्याः—चमर्यः = चमराख्यमृगविशेषाणां स्त्रियः मृगीविशेषाः, इतस्ततः = सर्वतः, लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः = पुच्छविधूननविसरण कांतिभिः, चन्द्रमरीचिगौरैः = चन्द्रकिरणधवलैः, बालव्यजनैः = चामरैः, यस्य हिमालयस्य, गिरिराज शब्दम् = गिरिराज, इति नामधेयम्, अर्थयुक्तम् = अभिधेयान्वितम् सार्थकम् वा, कुर्वन्ति = विदधति।

संस्कृत सरलार्थः = हिमालयः गिरिराज इति नामधेयेन विख्यातो नाम्नोऽस्य सार्थकत्वे चामराणामपेक्षा वर्तते, अतः चमरमृग्यः सर्वतः चन्द्र शुभ्रैः बालधिसञ्चालनप्रसृत शोभैः स्वकीयैः पुच्छमयैश्चामरैः हिमवतः गिरि इति नामधेयं सार्थकं विदधति।

टिप्पणी—लाङ्गूलेति = लांगूल का अर्थ पुच्छ या बालधि भी है "पुच्छो स्त्री लोभ—लाङ्गूले बालहस्तश्च बालधिः "इन्यमरः। विक्षेपैः = वि = क्षिप् घञ। विसर्पिण्यः शोभा येषाम् तानि = यह शब्द बालव्यजन का विशेषण है जो कि नपुंसकलिङ्ग में है, अतएव इस पद का विग्रह इस प्रकार किया गया। विसर्पि = यह पद णिनि प्रत्ययान्त शब्द है अतः इसका अर्थ है—प्रसरणशील फैलने वाली, विसर्पण्यः शोभा येषान्तानि = समासोत्तर" गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य सूत्र से ह्रस्व होकर विसर्पि शोभा शब्द बन जायेगा, तृतीया बहुवचन में रूप होगा। चन्द्रेतिः-चदि आह्लादने धातु से चन्दति आह्लादयति इस अर्थ में औणादिक रकप्रत्यय होकर चन्द्रशब्द बनता है। मरीचि का अर्थ कर या किरण है"

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रा मरीचिः स्त्रीपुंसयोः "इत्यमरः । चन्द्रमरीचयः इव गौराणि, अत्र उपमानि सामान्य वचनैः इति समासः । गौर शब्द का अर्थ शुभ्र या धवल है" वदातः सितो गौरो वलक्षोधवलोऽर्जुनः "इत्यमरः । बालव्यजनैः = वाला एव यजनानि "व्यजनं ताल--वृन्तकम् । गिरिराजशब्दम्—गिरीणां राजा गिरिराजः राजाहः सखिभ्यष्टच्, इति समासान्तः टच् प्रत्ययः स चासौ शब्दः तम् ।

चमर्यः—चमर नामक मृगों की स्त्रियाँ, अतः यहाँ चमर शब्द से, पुंयोगादाख्यायाम्, सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर चमरी शब्द बनता है । चमरीमृगियों के देह और पूँछ के बाल सफेद और लंबे होते हैं, अतः इनसे चामर बनाये जाते हैं ।

यत्रांऽशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ।।१४।।

अन्वय—यत्र अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् किंपुरुषाङ्गनानाम् यदृच्छया दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः जलदाः तिरस्करिण्यः भवन्ति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ हिमालय पर, अंशुकाक्षेप—विलज्जितानाम् = अंशुक (परिधानीय अधोवस्त्र शाटिका आदि) वस्त्र के अपहरण अर्थात् खींचने से अतिलज्जित हुईं, किम्पुरुषाङ्गनानाम् = किम्पुरुषों किन्नरों की अङ्गना-स्त्रियों अर्थात् किन्नरियों के, यदृच्छया = स्वेच्छया अथवा दैवगत्या, दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः = दरीगृह कन्दरा रूपीं गृह के द्वार पर विलम्बि = लम्बमान, = लटकते हुए, बिम्ब (अर्थात् मण्डलों वाले (अर्थात्) जिनके मण्डल गुहा रूपी द्वार पर लटक रहे हैं, ऐसे) जलदाः = मेघ, तिरस्करिण्यः = पर्दे, भवन्ति = बन जाते हैं ।

अनुवाद—जिस हिमालय पर (शाटिकादि) वस्त्र के (बलात्) खींचने से अतिलज्जित किन्नरियों के दैवगत्या कन्दरा रूपी गृह द्वार पर लम्बमान मण्डलों वाले मेघ पर्दे बन जाते हैं ।

भावार्थ—हिमालय पर्वत पर किन्नरियों का विहार स्थल भी है, अतएव जब वे किम्पुरुषों के साथ इस पर्वत की गुफाओं में जाती हैं, और किन्नर जब रतिक्रीडा के लिए इनके वस्त्रों को बलात् खींचते हैं, तब वे अत्यधिक लज्जित हो जाती हैं, लज्जा स्त्री जाति का स्वाभाविक गुण होता है, गुफाओं के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

द्वार भी खुले रहते हैं। अतः कोई भी प्राणी उनको इस अवस्था में देख स है, अतएव वे अति लज्जित हो जाती हैं, तभी दैवयोग से मेघमण्डल कन्दराओं के द्वार पर लटकने लगते हैं, फलतः द्वार बन्द हो जाते हैं, किन्नरियों की लज्जा की रक्षा उसी प्रकार हो जाती है, जैसे कोई तिरस्क या पर्दा द्वार पर डालकर उसे बन्द कर देता है, अतः वे आश्वस्त हैं विहार करती रहती हैं, जलदपटल ही यहाँ पर्दे का काम करते हैं।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में मेघों पर तिरस्करिणीत्व का आर कर उसका प्रकृत स्थल पर उपयोग किया गया है, अतः यहाँ परि अलंकार है।

उपजाति छन्द हैं।

समासादि—अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् = अंशुकानाम् शाटकाद्यधोवस्त्र आक्षेपः वलादाकर्षणम् तेन विलज्जिताः विशेषण लज्जितास्तासाम्। कि पाङ्गनानाम् = किम्पुरुषाणाम् किन्नराणाम् अङ्गनाः किन्नर्यः तास दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः = दरी एवं गृहं तस्य द्वारं तस्मिन् विलम्बि लम्बमानाः बिम्बाः येषान्ते।

संस्कृत व्याख्या—यत्र-यस्मिन् हिमालये, अंशुकाक्षेपविलज्जितानां शाटकाद्यधोवस्त्रापहरणातिलज्जितानाम् किम्पुरुषाङ्गनानाम् = किन्नरीण यदृच्छया = दैवगत्या, दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः = कंदरागृहमुखलम्ब मण्डलाः, जलदाः = मेघाः तिरस्करिण्यः = जवनिकाः, भवन्ति = जायन्ते।

संस्कृत सरलार्थ—श्लोकेनानेन कवेरभिप्रायोऽयमस्ति यत् हिमाल गुहासु प्रायेण किन्नरसुन्दर्यः स्वप्रियतमैःकिन्नरैः सह विहरन्ति, कन्दरामध्य किन्नराः यदा विहारावसरेषु तासां वस्त्राण्यपहरन्ति तदा ता वि लज्जामनुभवन्ति, लज्जावशात्ता आश्वस्तविहारायाक्षमा जायन्ते, दैव कदाचिदेतेष्वसरेषु मेघास्तत्रोपेत्य तासां गुहागृहमुखान्याच्छादयन्ति एवं स्तासां कृते जवनिका भवन्ति।

टिप्पणी—यत्र—यत् शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' इति सप्तम्यर्थे त्रल् प्रत्य अंशुकेत्यादि—आक्षेपः = आ + क्षिप् + घञ्। विलज्जितानाम्—वि लज्जितानाम्। दरीत्यादि = दरी अर्थात् पर्वतीय गुफा, "दरी तु कंदरे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

खातविले गुहा, इत्यमरः। दरीगृह—गुहा रूपी घर, द्वार यह शब्द कारान्त तथा र् अन्तवाला भी है "स्त्री द्वा द्वारं प्रतीहारः" इत्यमरः। बिम्ब ब्द का अर्थ यहाँ मण्डल भी है, उसका तात्पर्य है 'लम्बमान मेघदेहाः' यह ठीक है। तिरस्करिण्यः—तिरस्करिणी पर्दा को कहते है, इसका अन्य म प्रतिसीरा और जवनिका भी है 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणी सा' इत्यमरः। यदृच्छया—अपनी इच्छा से ही दैवयोग से ही ऐसे अवसरों र मेघ आकर उनके दरीगृहों के द्वार पर लटकने लगते थे, और उनकी ज्जा के लिए आवरण बन जाते थे। सघन मेघों द्वारा इस प्रकार दरीगृह रों के आच्छादित कर लेने पर, तत्रत्य ओषधि-प्रकाश भी वहाँ प्रवेश नहीं र पाता था। जलदाः—जलं ददतीत्यर्थे जल+दा धातोः 'क', प्रत्ययः, कार लोपः।

तिरस्करिणी—तिरस्+कृ+इन्+ङीप्।

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥१५॥

अन्वय—भागीरथी निर्झरशीकराणाम् वोढा, मुहुः कम्पितदेवदारुः भिन्न खण्डिवर्हः, यद् वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते।

शब्दार्थ—भागीरथीनिर्झरसीकराणाम्=गङ्गा के झरनों से जलबिन्दुओं (सीकर=जलबिन्दु) वोढा=वहन करने वाला, लेकर चलने वाला। मुहुः =पुनः पुनः अथवा शीघ्र ही। कम्पित—देवदारुः=देवदारु के वृक्षों को म्पित करने वाला या हिलाने वाला, भिन्नशिखण्डिवर्हः=मयूरों के पंखों को बेर देने वाला (शिखण्डी=मयूर, वर्हः=पंख, भिन्न=फैलाना या अलग लग करना) यद् वायुः=जिस हिमालय का वायु, अन्विष्टमृगैः=मृगों या न्य-पशुओं का शिकार कर चुकने वाले, किरातैः=शबर या भीलों द्वारा, सेव्यते=सेवित किया जाता है।

अनुवाद—गङ्गा के झरनों के जलकणों का वहन करने वाला, पुनः पुनः देव- रु वृक्षों को हिलाने वाला (तथा) मयूर-पंखों को बिखेर देने वाला, जिस हिमा- य का वायु, मृगों का शिकार कर चुकने वाले (अतएव श्रान्त) किरातों द्वारा वित किया जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भावार्थ—हिमालय पर शीतल सुगन्धित एवं मन्द वायु के गुणोत्कर्ष का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जो हिमालय का वायु, गंगा के झरने के जलकणों को लेकर वहता है, (अतएव शीतल) देवदारु के वृक्षों को कम्पा देने वाला है (अतएव सुगन्धित) तथा जो मयूरपंखों को इधर-उधर फैला देने वाला है, वह मृगों का शिकार कर चुकने वाले (अतएव थके हुए) किरातों द्वारा सेवन किया जाता है। थके हुये किरात इस शीतल मन्द सुगन्धित वायु का सेवन कर अपनी थकावट दूर करते हैं।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में समुचित विशेषणों द्वारा वायु के स्वभाव तथा किरातों द्वारा उसके सेवन का स्वाभाविक वर्णन है, अतः यहां स्वभावोक्ति अलंकार है।

"स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्" इन्द्रवज्रा छन्द है।

समासादि—भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् = भागीरथ्याः निर्झरः तस्य सीकराः तेषाम्। कम्पितदेवदारुः = कम्पिताः देवदारवः येन सः कम्पितदेवदारुः। भिन्नशिखण्डिवर्हः = शिखण्डिनां वर्हाणि शिखण्डिवर्हाणि, भिन्नानि शिखण्डिवर्हाणि येन सः भिन्नशिखण्डिवर्हः। यद्वायुः = यस्य वायुः यद्वायुः। अन्विष्टमृगैः = अन्विष्टा मृगाः यैस्तैः = अन्विष्टमृगैः।

संस्कृत व्याख्या—भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् = गङ्गावारिप्रवाहकणानाम्, वोढा = प्रापकः वहनशीलो वा, मुहुः = पुनः सद्यो वा, कम्पितदेवदारुः = सञ्चालितदेवदारुवृक्षः, भिन्नशिखण्डिवर्हः = विश्लेषितमयूरपिच्छः, यद्वायुः = यस्य हिमालयस्य पवनः, अन्विष्ट-मृगैः = मार्गितहरिणैः, किरातैः = शवरैः, आसेव्यते = उपभुज्यते।

संस्कृत सरलार्थ—हिमालयस्य वायो र्गुणोत्कर्षं वर्णयन् कविः कथयति यदाखेटाय मृगान्वेषणार्थमितस्ततो धावनं कृत्वा श्रान्ताः किराता देवदारुच्छायामाश्रित्य गङ्गानिर्झरजलकणवाहकत्वेन शीतलम्, मुहुः देवदारुतरु-सुरभितम्, मयूरपिच्छसमुल्लासनेन, मन्दम्, यस्य हिमालयस्य पवनमासेवन्ते।

टिप्पणी—भागीरथीत्यादि = भगीरथस्येयं भागीरथी, 'तस्येदमित्यण्' ततः 'टिड्ढाणेति ङीप् प्रत्ययः। भागीरथी = गङ्गा विष्णुपदी जह्नु-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रनिम्नगा भागीरथी त्रिपथगा "इत्यमरः। निर्झर=जलप्रवाह, "वारिप्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः। सीकराः—जलकणाः "सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः इत्यमरः। वोढा=वहत्यसौ वोढा—वह प्रापणे धातोस्तृच् प्रत्यय। वोढृ शब्दस्य प्रथमैकवचने रूपम्। मुहुः=बार-बार, अथवा शीघ्र ही, पौनः पुन्ये भृशार्थे च सद्यो वास्यान्मुहुः पदम्"। भिन्नशिखण्डिवर्हः—भिन्न भिदिर् धातोः क्त प्रत्यये, धातोः दकारस्य प्रत्ययतकारस्य च नत्वे रूपम्। शिखण्डिन्—शिखण्डः अस्ति येषान्ते शिखण्डिनः "शिखण्डस्तु पिच्छवर्हे नपुंसके, इत्यमरः "शिखण्ड शब्दात् अत इनि ठनौ, सूत्र से इन—प्रत्यय होकर शिखण्डी बनता है—इसका अर्थ मयूर है, इसके लिए शिखावल शिखी केकी आदि भी शब्द है।

अन्विष्टमृगाः—अनु+इष्+क्त प्रत्यय यद्यपि अन्वेषण का अर्थ खोजना होता है, किरातवनों में मृगों को या अन्य वन्यपशुओं को इसीलिए खोजते हैं कि वे उनका शिकार कर सकें "अन्विष्टं मार्गितं मृगितम् "इसी अर्थ के द्योतक हैं। मृग का अर्थ पशु भी होता है "पशवोऽपि मृगाः' इत्यमरः।

किरात सभी प्रकार के वन्यपशुओं का शिकार करते हैं, किरातैः—किरात शबर पुलिन्द शब्द पर्यायवाचक है। आसेव्यते—आ+षेव सेवने धातु से कर्मणि, सार्वधातुके यक्, इति यक् प्रत्ययः षकारस्य सत्वम्।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥१६॥

अन्वय—सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि यस्य अग्रसरोरुहाणि पद्मानि, अधः परिवर्तमानः विवस्वान् ऊर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रबोधयति।

शब्दार्थ—सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि=सप्तर्षियों के हाथों से चुनने के बाद शेष बचे हुए। अवचित चुनना (फूलों का तोड़ना) यस्य—जिस हिमालय के, अग्रसरोरुहाणि=ऊपर के सरोवरों में उगे हुए, पद्मानि=कमलों को, अधः परिवर्तमानः—नीचे घूमता हुआ, विवस्वान्=सूर्य, ऊर्ध्वमूखैः मयूखैः= ऊपर की ओर जाने वाली किरणों से, प्रबोधयति=विकसित करता है।

अनुवाद—सप्तर्षियों के हाथों से चुनने के (बाद) बचे हुये, जिस हिमालय के, ऊपर के सरोवरों में उगे हुए कमलों को, नीचे घूमता हुआ सूर्य, ऊपर जाने वाली किरणों से विकसित करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भावार्थ—प्रकारान्तर से हिमालय के सर्वोन्नतत्व का वर्णन करत कवि कहता है कि सप्तर्षियों के हाथों से चुनने के बाद शेष बचे हु हिमालय के ऊपर के जलाशयों में उगे हुए कमलों को, नीचे घूमता हु अपनी ऊर्ध्वगामिनी रश्मियों से विकसित करता है।

सूर्य के भ्रमणस्थल से ये सरोवर ऊँचे हैं, सूर्य की साधारण किर तक नहीं पहुँच सकती अतः वह नीचे घूमता हुआ उन ऊपरी भागों म सरोवरों के कमलों को जो कि सप्तर्षिहस्तचयन से शेष रह गये हैं, ऊपर जाने वाली किरणों से खिलाता है।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में हिमालय की उच्चता का वर्णन है, उसके अधोभाग में घूमता है, अर्थात् वह सूर्य से ऊंचा है, अतः अलंकार है। किन्तु यहाँ हिमालय के सर्वोन्नतत्व का वर्णन प्रकारान्त किया गया है, सीधे शब्दों में उसकी उच्चता नहीं बतायी गयी है, 'उसके अधोभाग में सूर्य भी घूमता है' यह कहकर उसकी उच्चता सू गयी है, इस प्रकारान्तर कथन से वस्तुतः यहाँ पर्यायोक्त अलंकार है, उसका लक्षण 'साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—

पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते।"

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः, सप्तर्षीणां हस्ताः तैः तानि, इति, सप्तर्षिहस्तावचितानि तेभ्यः अवशेषाः तानि—सप्तर्षिहस्ता वशेषाणि यह पद पद्मानि का विशेषण है, अतएव इसमें नपुंसकलि अग्रे सरांसि अग्रसरांसि अग्रसरस्सु रुहाणि इति अग्रसरोरुहाणि (यहाँ अ अर्थ 'ऊपर' है, अर्थात् ऊपर के सरोवरों में उगने वाले) ऊर्ध्वं मुखं येषा ऊर्ध्वमुखैः।

संस्कृत व्याख्या—सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि = मरीच्यादिसप्तर्षि वशिष्टानि, यस्य = हिमालस्य, अग्रसरोरुहाणि उपरिसरोजातानि, प कमलानि, अधः = अधोभागे, परिवर्तमानः = भ्रमन्, विवस्वान् = सूर्य मुखैः = उपरिगमनशीलैः, मयूखैः = किरणैः, प्रबोधयति = विकासयति।

संस्कृत सरलार्थ—हिमालयस्यौन्नत्यं भङ्ग्यन्तरेण निर्दिशन् कविः हिमालयस्योच्चशिखरेषु वर्तमानसरोवरापेक्षया निम्नस्थल एव परिभ्रम

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सप्तर्षीणां करैं देवार्चनाद्यर्थमवलूनेभ्योऽवशिष्टानि, उपरिसरस्सूत्पन्नानि हिमालयस्य कमलानि, स्वकीयैरुर्ध्वगामिभिरेव किरणैः विकासयति ।

टिप्पणी—सप्तर्षीत्यादि—यद्यपि सप्तर्षि सात ही ऋषि है, तथापि इनके नामों में भिन्नता देखी जाती है—एक स्थान पर तो इनके सात नाम इस प्रकार हैं—मरीचि अङ्गिरस्, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ । अन्यत्र इनके नामों की सूची इस प्रकार है—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ ।

इनमें अत्रि और वशिष्ठ तो दोनों में हैं, पर शेष नामो में भिन्नता है ।

इन सप्तर्षियों के हाथों से देवार्चनादि कार्य के लिए पुष्पचयन करने के बाद शेष बचे हुए (यह पद पद्मानि का विशेषण है, इस कथन से कवि ने उन सरोवरों के कमलों का साफल्य सूचित किया है, अन्यथा सप्तर्षियों के अतिरिक्त उनका चयन और कौन कर पाता, 'अवचित में अव+चिञ्—चयने धातु से क्त प्रत्यय है । अवशिष्यते इति अवशेषः अत्र कर्मणि घञ् प्रत्ययः । अग्रसरोरुहाणि=यह पद भी पद्मानि का विशेषण है । अग्र शब्द का यहाँ अर्थ 'ऊपर' है, अग्रसरः—अर्थात् ऊपर के भाग में वर्तमान सरोवर । रोहन्तीति रुहाणि-रुह् वीज प्रादुर्भावे धातु से यहाँ "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः "सूत्र से क प्रत्यय है । अग्रे सरांसि अग्रसरस्सु रुहाणि इति अग्रसरोरुहाणि । सरस् का अर्थ तालाब या जलाशय है, "कासारः सरसी सरः ।" परिवर्तमानः परिवर्तते इति परिवर्तमानः. परि-वृत शानच् मुगागमः । विवस्वान्—वि+वस्+मतुप=विवस्वान् अर्थात् सूर्य "भास्वद् विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः" इत्यमरः ।

प्रबोधयति—प्र+वुध्+णिच् लट् प्रथम पुरुषैकवचने अत्र बुधयुधेत्यादिना परस्मैपदम् ।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिमालय इतना ऊँचा है कि सूर्य भी उसके शिखरों से नीचे ही घूमता है । वस्तुतः यह कथन पौराणिक गाथाओं के आधार पर तो ठीक है, क्योंकि पुराणों में तो यह भी कहा गया है कि एक बार तो विंध्याचल ने भी सूर्य का मार्ग अपनी उच्चता से रोक दिया था और सूर्य को मेरु पर्वत की परिक्रमा करने वाला भी बतलाया गया है, किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आज लोग सम्भवतः ऐसा मानने को तैयार न होंगे, उनके लिए इतना कहा जा सकता है कि प्रातःकालीन सूर्य अपने क्षितिज पर ही तो रहता अतः वह हिमालय की उच्च शिखरों की दृष्टि से अधोभागवर्ती ही रहे अतएव वह अपनी ऊर्ध्वमुखी किरणों से उक्त जलाशयों के कमलों को विक करता होगा।

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥१७॥

अन्वय—यस्य यज्ञाङ्गयोनित्वम् धरित्रीधरणक्षमम् सारम् च अवे प्रजापतिः स्वयं कल्पितयज्ञभागम् शैलाधिपत्यम् अन्वतिष्ठत्।

शब्दार्थ—यस्य = जिस हिमालय की, यज्ञाङ्गयोनित्वम् = यज्ञीय पद की उत्पत्तिकारणता को (यज्ञाङ्ग = यज्ञ के लिये उपयोगी पदार्थ और यो योनित्व = जनकत्व) धरित्रीधरणक्षमम् = पृथिवी को धारण करने (धरित्री = पृथिवी) सारम् = बल या शक्ति को, अवेक्ष्य = देखकर, प्रजाप —ब्रह्मा ने, स्वयं = अपने आप, कल्पितयज्ञभागम् = जिसमें यज्ञभाग प्र किया गया था ऐसे, शैलाधिपत्यम् = पर्वतों का स्वामित्व, अन्वतिष्ठत् = दि था, अर्थात् आधिपत्य दिया था।

अनुवाद—जिस हिमालय की यज्ञीय साधनों की उत्पत्ति-कारणता (तथा) पृथिवी के धारण करने योग्य शक्ति को भी देख कर प्रजापति ब्रह्मा स्वयं ही, जिसमें यज्ञ भाग प्रदत्त किया गया था, ऐसे पर्वतों के स्वामित्व किया था, अर्थात् यज्ञ भाग सहित जिसे पर्वतों का राजा बनाया था

भावार्थ—प्रजापति ब्रह्मा ने हिमालय में सभी यज्ञीय साधनों की उत्प सामर्थ्य को तथा उसकी पृथिवी धारण करने योग्य शक्ति को देखकर उ लिए यज्ञभाग को देकर उसे सभी पर्वतों का राजा बनाया था।

हिमालय पर सभी यज्ञ के साधनभूत पदार्थ-सोमलता, हवनीय वि प्रकार की समिधायें, औषधियाँ, गङ्गादि पवित्र नदियों के जल, कुश भूर्जपत्रादि-उत्पन्न होते हैं और उसमें पृथिवी को धारण कर उसे स्थिर र रखने की भी क्षमता है, अतएव पर्वत को भूधर भी कहा गया है। हिमाल

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ये दो गुण ऐसे हैं जो कि अन्य पर्वतों में नहीं पाये जाते। उसकी विशालता एवं उसका विस्तार तथा ऊँचाई भी सर्वाधिक है। अतएव ब्रह्मा ने उसे यज्ञ-भाग देकर देवत्व प्रदान किया तथा शैलाधिराज बनाया, कवि ने इसीलिये इसे देवतात्मा कहा है।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में हिमालय के यज्ञाङ्गयोनित्व एवं उसके पृथिवी को धारण करने योग्य बल को बताकर ही यथाक्रम उसमें देवत्व तथा शैलाधिपतित्व को बतलाया गया है, अतः इसमें यथासंख्य नामक अलंकार है, और इसका लक्षण—'यथासंख्यमनूद्देशः उद्दिष्टानां क्रमेण यत्" है इसमें उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—यज्ञस्य अङ्गानि = यज्ञाङ्गानि तेषां योनिः तस्य भावः तत् यज्ञाङ्गयोनित्वम्। धरित्र्याः धरणे क्षमः तम् धरित्रीधरणक्षमम्। यज्ञस्य भागः = यज्ञभागः कल्पितः यज्ञभागः यस्मिन् तत् = कल्पितयज्ञभागम्। प्रजायन्ते इति प्रजाः प्रजानां पतिः = प्रजापतिः। अधिपाति अधिपतिः शैलानाम् अधिपतिः = शैलाधिपतिः शैलाधिपते र्भावः शैलाधिपत्यम्।

संस्कृत व्याख्या—यस्य-हिमवतः, यज्ञाङ्गयोनित्वम् यज्ञसाधनभूतपदार्थ समूहोत्पत्तिकारणताम्, धरित्रीधरणक्षमम् पृथिवीधारणयोग्यम्, सारम् = बलम् च, अवेक्ष्य ज्ञात्वा, प्रजापतिः = ब्रह्मा स्वयम् = आत्मना, कल्पितयज्ञभागम् = प्रदत्तयज्ञांशम्, शैलाधिपत्यम् पर्वताधिपतित्वम्, अन्वतिष्ठत् = अकरोत्।

संस्कृत सरलार्थ—प्रजापति र्ब्रह्मदेवो हिमालयस्य यज्ञसाधननीभूत सोमलतादिसम्पत्तीनामुत्पत्ति स्थानत्वं भूधरणयोग्यं बलं चावलोक्य इन्द्रादि-देवतुल्यमेवास्य हविर्भागं प्रकल्प्य स्वयमेव पर्वताधिपतित्वमप्यस्य कृतवान्।

टिप्पणी—यज्ञाङ्गेत्यादि—यज्ञ के अङ्ग-अर्थात् यज्ञीयविधि के साधनीभूत पदार्थ-सोमलतादि, योनित्व = योनि शब्द का अर्थ है-उत्पत्तिस्थान, प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति का एक निश्चित स्थान होता है, जो कि उसकी योनि कहा जाता है, हिमालय पर सोमलतादि यज्ञीय सामग्री उत्पन्न होती है, अतः हिमालय को यज्ञाङ्गयोनि कहा गया है, इस शब्द से भावार्थक त्व प्रत्यय करके यज्ञाङ्ग योनित्व शब्द बना है, त्व प्रत्ययान्त सभी शब्द नपुंसकलिङ्ग ही होते हैं। धरित्रीत्यादि—यह मान्यता है कि पर्वत पृथिवी के भार को धारण कर उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

स्थिर बनाये रखते है। अतएव उन्हें, भूधर, कहा जाता है, धरित्री औ धरणि पर्यायवाचक हैं—"धरा धरित्री धरणिः क्षोणि ज्यां काश्यपी क्षिति "इत्यमरः। धरण—धृ धातु से ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द है, क्षमम् = योग्य समर्थम्। सारम् = इसका प्रयोग बल के अर्थ में भी होता है "सारो ब स्थिरांशे च "इत्यमरः। अवेक्ष्य—अव + ईक्ष दर्शने धातोः क्त्वा तस्य ल्यब देशः। प्रजापतिः = प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः "प्रजाः स्यात् सन्ततौ जने प्रजा शब्द का प्रयोग सन्तान एवं साधारण जनों के लिए भी होता है प्र + जन प्रादुर्भावे धातु से उपसर्गे च संज्ञायाम्, सूत्र से ड प्रत्यय, टि लोप और टा प्रत्यय। पातीति पतिः, पा रक्षणे धातु से औणादिक 'पातेर्डतिः, से डति प्रत्य टि लोपादि होकर पति शब्द बना है। यहाँ प्रजापति शब्द सृष्टि विधाता ब्रह्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है" स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधि इत्यमरः। कल्पितेत्यादि—कल्पित-क्लृप् धातु से क्त प्रत्ययान्त शब्द है। देव ही यज्ञभाग के अधिकारी होते है, अतएव हिमालय को यज्ञभाग देकर उन देवत्व की स्थापना की गयी है। शैलाधिपत्यम् अधिः पतिः अधिपतिः 'कुगतिप्रादयः इति समासः अधिपते र्भावः इत्यर्थे 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् इति यक् प्रत्यय, किति-चेत्यादि वृद्धिः आधिपत्यम्। ब्रह्मा ने हिमालय शैलाधिपति बनाया इस सम्बन्ध में पुराणवचन प्रमाण है = "यज्ञार्थं म सृष्टो हिमवानचलेश्वरः" विष्णुपुराण। ब्रह्माण्डपुराण में भी शैलानां हिमवं च............चक्रे विधिः आदि वचन हैं।

यहाँ तक हिमालय के वैशिष्ट्य का वर्णन कर १८वें श्लोक से आगे क ने इस काव्य के मुख्य कथानक का वर्णन किया है।

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥१८॥

प्रसंग—इसमें पार्वती के उत्पत्ति के कारणभूत हिमालय के विवाह वर्णन है।

अन्वय—मेरुसखः स्थितिज्ञः सः मुनीनाम् अपि माननीयाम् आत्मानुरू पितॄणाम् मानसीम् कन्याम् मेनाम् कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शब्दार्थ—मेरुसखः—मेरु पर्वत के मित्र, स्थितिज्ञः=लोक और शास्त्र र्यादा को जानने वाले, सः=उस हिमालय ने, मुनीनाम् अपि माननीयाम्= नि जनों की भी पूजनीय, आत्मानुरूपाम्=कुलशील सौन्दर्य आदि से पने सदृश, पितृणाम्=पितृदेवों की मानसीम्=मनः संकल्प से उत्पन्न, नाम् कन्याम्=मेना नाम की कुमारी को, कुलस्य स्थितये=वंश की प्रतिष्ठा मर्यादा के लिये, उपयेमे=विवाह किया। विधिना=शास्त्रोक्त धिपूर्वक।

अनुवाद—मेरु के मित्र, लोक एवं शास्त्र की मर्यादा को जानने वाले न हिमालय ने मुनि जनों की भी पूजनीय, (कुल गुण सौन्दर्यादि से) अपने ल्य, पितृदेवों की मनः संकल्प से उत्पन्न मेनका देवी नाम की कुमारी से, श की मर्यादा के लिए शास्त्रविधिपूर्वक विवाह किया।

भावार्थ—हिमालय मेरु के मित्र तथा लोक एवं शास्त्रमर्यादा को जानने ाले थे, उन्होंने पितृदेवों की मनः संकल्प से उत्पन्न मेनका देवी नामक कन्या , जो कि मुनियों की भी पूजनीय तथा कुल शील सौन्दर्यादि की दृष्टि से अपने ी सदृश थी, वंश की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रविधिपूर्वक विवाह किया।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में हिमालय एवं मेना के सभी विशेषण साभिप्राय , अतः **परिकर** नामक अलंकार है, इसका लक्षण "उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः रिकरो मतः है। कुछ विद्वानों ने इसमें **परिसंख्या** नामक अलंकार भी माना , क्योंकि यहाँ काम का व्यपोह करके 'कुलस्य स्थितये' कहा गया है जैसा क इसका लक्षण है—

प्रश्नाद प्रश्नतो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा॥

और इसमें उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—मेरोः सखा इति मेरुसखः, स्थितिं जानातीति स्थितिज्ञः (उपपद तत्पुरुष समास) मानसीम्=मनसः भवा मानसी ताम्। माननीयाम्= माननयितुं योग्या माननीया ताम्। आत्मानुरूपाम्=रूप मनुगता अनुरूपा आत्मनः अनुरूपा ताम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

संस्कृत व्याख्या—मेरुसखः = सुमेरुसुहृत्, स्थितिज्ञः = शास्त्रमर्यादा... सः हिमालयः, मुनीनाम् = मुनिजनानाम्—अपि, माननीयाम् = पूजनी... आत्मानुरूपाम् = कुलशील सौन्दर्यादिभिः आत्मसदृशीम् पितृणाम् = पितृदेवा... मानसीम् = मनःसंकल्पजाताम्, मेनां कन्याम् = मेनकादेवीति नामवतीं कुमा... कुलस्यस्थितयेवंशस्य प्रतिष्ठायै, विधिना—शास्त्रविहितविधिपूर्वकम् उपये... परिणीतवान् ।

संस्कृत सरलार्थ—गार्हस्थ्यं स्वीकृत्य तदनुकूलानि कर्तव्यानि पाल... नीतिशास्त्रमर्यादाभिज्ञः सुमेरोः सुहृत् हिमवान् वंशपरम्परायाः प्रति... ऋषीणामपि पूजनीयां कुलशील सौन्दर्यादिभिरप्यात्मसदृशीं पितृदेवानां... संकल्पोद्भवां मेनका देवीतिनाम्नीं कुमारीं शास्त्रोक्तविधिना परिणीतवान्।

टिप्पणी—**मेरुसखः** = मेरोः, सखा इति मेरुसखः अत्र समासान्त... प्रत्ययः, हिमालय मेरुपर्वत का मित्र था, मैत्री कुल शीलादि में समान ... में ही होती है। इस दृष्टि से मेरु या सुमेरु पर्वत भी विशालता एवं वि... में हिमालय पर्वत के ही समान था तथा पितृदेवों ने अपनी एक मानसी ... का विवाह भी मेरु के साथ किया था, अतएव इन दोनों में मैत्री स्वाभा... थी। **स्थितिज्ञः**—स्थिति का अर्थ मर्यादा है—"संस्था तु मर्यादा धारण... इत्यमरः। स्थितिं जानातीति विग्रहे 'स्थित्युपपदपूर्वकात् ज्ञा अवबोधने धा... आतोऽनुपसर्गे कः इति क प्रत्यये आकार लोपे उपपद तत्पुरुष समासः, ... जानातीति ज्ञः 'इगुपधेत्यादिना क प्रत्ययः स्थितेः ज्ञः इति स्थितिज्ञः। प... अथवा कुल की मर्यादा प्रतिष्ठा अथवा परम्परा बिना विवाह किये स्थिर ... रह सकती है, इस बात को हिमालय जानते थे, इसलिए आगे इसी श्लो... 'कुलस्य स्थितये' भी कहा गया है। वस्तुतः यहाँ विवाह का उद्देश्य ... तृप्ति नहीं अपितु वंश परम्परा की स्थिरता है इसीलिए कालिदास ने ... में "प्रजायै गृहमेधिनाम्' कहा है। **पितृणाम्**—पितृदेव भी एक देवयोनि... हैं, जिनमें संकल्पमात्र से सृष्टि करने का सामर्थ्य माना जाता है। पुरा... मरीचि आदि ऋषियों के पुत्रों को पितृगण कहा गया है, इनकी सात श्रे... मानी गयी हैं" अग्निष्वात्ताः सोमपाश्च हविष्मन्तस्तथोष्मपाः। सुकालिनो ब... आज्यपाः पितरः स्मृताः।' विष्णु पुराण के अनुसार इनकी मानसी कन्या... ब्रह्मवादिनी थीं—"तेभ्यः शुभास्पदं जज्ञे मेनका हरिणी तथा। ते उभे ब्रह्मवा...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

गित्यो चाप्युभे द्विज।" ब्रह्मवादिनी और योगिनी होने के कारण ही ये मुनीनामपि ननीया थीं। मुनीनाम्—अत्र; 'कृत्यानां कर्त्तरि वा' इति कर्तरि षष्ठी। मानसीम् -मनसः भवेति विग्रहे, 'तत्र भव' इत्यण् ततः ङीप्। आत्मानुरूपाम्=विवाह लिए आवश्यक है कि वर कन्या दोनों ही एक-दूसरे के लिए प्रत्येक दृष्टि से नुरूप हो, इसीलिए स्मृति-वचन है कि 'कुलाद्यैः सदृशीं भार्या विन्देत् स्नातको जः।' उपयेमे—उप+यम् धातोर्लिटि रूपम् "उपाद्यमः स्वकरणे इति त्मनेपदम्। मेना के हिमालय के साथ विवाह के सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड-पुराण लिखा है" तेषान्तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः, पत्नी हिमवतो यस्याः त्रो मैनाक उच्यते।

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरत प्रसङ्गे।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद्भूधरराजपत्न्याः ॥१९॥

अन्वय—अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे प्रवृत्ते मनोरमं यौवनम् उद्वहन्त्याः भूधरराजपत्न्याः गर्भः अभवत्।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद अर्थात् विवाहोपरान्त कालक्रमेण=समय क्रमानुसार अर्थात् कुछ समय बीतने पर, तयोः=उन दोनों के अर्थात् मेना और हिमालय के, स्वरूपयोग्ये=दोनों के सौन्दर्यानुरूप, वस्तुतः यहाँ इसका तात्पर्य है, शास्त्रानुसार, सुरतप्रसंगे=रतिक्रीड़ा कार्य के, प्रवृत्ते=प्रारम्भ होने पर, मनोरमम्=सुन्दर, यौवनम्=तारुण्य को, उद्वहन्त्याः=धारण करती हुई, भूधरराजपत्न्याः=गिरिराज हिमालय की पत्नी मेना के, गर्भः अभवत्= गर्भ हुआ।

अनुवाद—विवाहोपरान्त कुछ समय बीतने पर इन दोनों मेना और हिमालय के, शास्त्रानुसार रतिक्रीड़ा कार्य के आरम्भ होने पर, मनोहर यौवन को धारण करती हुई गिरिराज हिमालय की पत्नी को गर्भ हुआ।

भावार्थ—विवाह का लक्ष्य था, सन्तानोत्पत्ति कर वंशपरम्परा को स्थिर बनाये रखना, अतएव विवाहोपरान्त कुछ काल व्यतीत होने पर मेना और हिमालय के बीच शास्त्रानुबोधित सुरतप्रसङ्ग के प्रारम्भ होने पर गिरिराज हिमालय की पत्नी मेना ने जो कि इस समय अत्याकर्षक तारुण्य को धारण करने वाली थी, गर्भ धारण किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक के मनोरमम् और स्वरूपयोग्ये विशेषण साभिप्राय हैं अतः यहाँ **परिकर** नामक अलंकार है। उपजाति नामक छन्द है।

समास—कालक्रमेण—कालस्य क्रमः तेन। स्वरूपयोग्ये=स्वरूपस्य योग्यः तस्मिन्। सुरतप्रसंगे=सुरतस्य प्रसङ्गः तस्मिन्। भूधरराजपत्न्याः=भुवः धराः भूधराः तेषां राजा इति भूधरराजः तस्य पत्नी तस्याः।

संस्कृत व्याख्या—अथ—तदनन्तरम्, कालक्रमेण समयक्रमेण, गच्छता कालेनेति भावः। तयोः=मेना हिमालयोः स्वरूपयोग्ये=सौन्दर्यानुरूपे, अथवा शास्त्रानुसारिणि, सुरतप्रसंगे=सुरतकर्मणि, प्रवृत्ते—सञ्जाते सति, मनोरमम् =हृदयहारि, यौवनम्=तारुण्यम्, उद्वहन्त्याः=धारयन्त्याः, भूधरराज पत्न्याः=गिरिराज-हिमवतः भार्यायाः, गर्भः—भ्रूणः, अभवत्=अभूत्।

संस्कृत सरलार्थ—विवाहान्तरं गच्छता कियता कालेन तयोः मेनाहिमालयोः स्वसौन्दर्यानुरूपे शास्त्रानुसारिणि वा सुरतकर्मणि सञ्जाते सति हृदयहारि तारुण्यं धारयन्त्या गिरिराज-हिमालयस्य भार्यायाः मेनायाः गर्भोऽभूत्।

टिप्पणी—अथ—यहाँ इसका प्रयोग अनन्तर अर्थ में हुआ है, यद्यपि इसके मङ्गल, आरम्भ आदि अनेक अर्थ हैं, **कालक्रमेण**—यहाँ इसका प्रासङ्गिक अर्थ है—कुछ समय व्यतीत होने पर, तयोः सा च सचेति तौ तयोः अर्थात् मेना और हिमवान् के, **स्वरूपयोग्ये** अपने सौन्दर्य के अनुरूप, वस्तुतः यहाँ इसका प्रसंगानुकूल अर्थ है—"रूप्यते निश्चीयते अनेनेति रूपम-ज्ञानम-तस्य योग्य, अर्थात् शास्त्रविहित विधि के ज्ञान के अनुरूप अथवा शास्त्रानुसारी। सुरतप्रसंगे सुरतम्=रमु क्रीडायामिति धातोः 'नपुंसके भावे क्त इति क्त प्रत्यये मकार लोपे रतमिति रूपम्-शोभनं' रतम् सुरतम् 'कुगतीत्यादिना समासः। "मैथुनं निधुवनं रतम्" के अनुसार सुरत का अर्थ रतिक्रीडा है प्रसङ्ग का अर्थ—अवसर है, अतः सुरतप्रसङ्ग का तात्पर्य है—रतिक्रीडा के अवसर पर। **मनोरमम्**—रमु धातु से पचाद्यच् होकर रमम्—रमते इति रमम् बनता है, मनसः रमम्—इति मनोरमम्। **यौवनम्**=यूनोः भावः इत्यर्थे युवन् शब्दात्। हायनान्तेत्यादिना अण्—प्रत्यये। अन्, इति प्रकृतिभावे आदि वृद्धौ यौवनम्—इति रूपम्। 'तारुण्यं यौवनं समे' इस वचन के अनुसार इसका अर्थ तारुण्य है। **उद्वहन्त्याः**—धारण करती हुई—उत् वह धातोः शतृ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

...ये । शप्श्यनोर्नित्यमिति नुमि, उद्वहन्ती तस्याः उद्वहन्त्याः । भूधरराज-
...याः = धरन्तीति धराः धृञ् धारणे धातोः अच्, भुवः धराः भूधराः तेषां राजा
...रराजः समासान्तष्टच प्रत्ययः, तस्य पत्नी तस्याः 'पत्नी पाणिगृहीती
...र्भिणी' । गर्भः = अर्थात् भ्रूण "गर्भो भ्रूण इमौ समौ ।"

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रावबेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥२०॥

प्रसंग—मैनाक की उत्पत्ति का वर्णन है ।

अन्वय—सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधि बद्धसख्यम्, पक्षच्छिदि, वृत्रशत्रौ ...े अपि कुलिशक्षतानाम् अवेदनाज्ञम् मैनाकम् असूत ।

शब्दार्थ—सा = उस मैना ने, नागवधूपभोग्यम् = नागवधू अर्थात् नागकन्या ... उपभोग योग्य, अम्भोनिधिबद्धसख्यम् = समुद्र (अम्भोनिधि) के साथ ...ी करनें वाले, पक्षच्छिदि = (पर्वतों के) पंखों को काटने वाले, वृत्रशत्रौ = ...ासुर के शत्रु अर्थात् इन्द्र के, क्रुद्धेऽपि = क्रुद्ध होने पर भी, कुलिशक्षतानाम् = ...ुलिश) वज्र के प्रहारों की, अवेदनाज्ञम् = पीड़ा को न जानने वाले, ...ाकम् = मैनाक नामक पुत्र को, असूत—उत्पन्न किया ।

अनुवाद—उस मेना ने नागकन्या के उपभोग-योग्य अर्थात् नागकन्या से ...वाह करने वाले (तथा) समुद्र से मैत्री करने वाले, वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र के ...ित होने पर भी (उनके) वज्र के प्रहारों की पीड़ा को न जानने वाले ...नाक नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।

भावार्थ—गर्भधारणानन्तर मेना ने, मैनाक नामक पुत्र को जन्म दिया, यह ...नाक नागकन्या के उपभोग योग्य था, अर्थात् इसने नागकन्या के साथ ...वाह किया था, तथा इसने समुद्र के साथ मैत्री कर रखी थी । वृत्रासुर को ...ारने वाले इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जब सभी पर्वतों के पंख काट दिये । मैनाक ...ने भी समुद्र की शरण में जाकर, इन्द्र के वज्र के प्रहारों से बच गया, फलतः ...से वज्रप्रहारों की पीड़ा का अनुमान न हुआ ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में सामान्यतः साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग ...ने से परिकर अलंकार है और पंख काटने वाले इन्द्र के कुपित होने पर भी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उस कोप का वज्रप्रहार रूप फल मैनाक को नहीं मिला, अतः विशेषोक्ति अलं भी है "सति हतौ फलाभावे विशेषोक्तिः" उपजाति छन्द है।

समासादि—नागस्य वधूः नागवधूः उपभोक्तुं योग्यः इति उपभो नागवध्वा उपभोग्यः नागवधूपभोग्यः। अम्भसां निधिः = अम्भोनिधिः (सह) वद्धं सख्यं येन स तम्-अम्भोनिधिवद्धसख्यम्। पक्षान् छिनत्ति पक्षच्छिद् तस्मिन् पक्षच्छिदि। वृत्रस्य शत्रुः तस्मिन् वृत्रशत्रौ, कुलिशक्षता —कुलिशस्य क्षतानि तेषाम्। वेदानां जानातीति वेदनाज्ञः न वेदनाज्ञः अवेदनाज्ञः = तम् अवेदनाज्ञम्।

संस्कृत व्याख्या—सा—मेना, नागवधूपभोग्यम् = नागकन्योपभोगयो नागकन्यापरिणयितारमिति भावः। अम्भोनिधिवद्धसख्यम्—सागरवि मैत्रीकम्, पक्षच्छिदि—पक्षच्छेनरि, वृत्रशत्रौ = वृत्रासुररिपौ, इन्द्रे, क्रुद्धे कुपिते अपि, कुलिशक्षतानाम्—वज्रप्रहाराणाम् अवेदनाज्ञम् = व्यथानभि मैनाकम्, मैनाकाख्यं पुत्रम्, असूत = अजीजनत्।

संस्कृत सरलार्थ—सा गिरिराज पत्नी मेना, नागकन्यापरिणयितारं, पक्षी पक्षच्छेदनपरे वृत्रासुररिपाविन्द्रे रुष्टेऽपि समुद्रेण सह सख्यभावात्तत्रैव जलम वर्तित्वात् कुलिशकृत व्रणपीडानभिज्ञं मैनाकाख्यं पुत्रम जनयत्।

टिप्पणी—**नागवधूपभोग्यम्**—नाग कद्रू के पुत्र थे अतएव इन्हें का भी कहा जाता है। पाताल में रहने वाले नाग भी देवयोनिविशेष माने हैं, कहा जाता है कि इनका मुख तो मानवों जैसा पर शरीर सर्पों जैसा हो है, मैनाक ने नागकन्या के साथ विवाह किया था अतएव उसे नागवधूप कहा गया है।

अम्भोनिधिवद्धसख्यम्—समुद्र के साथ मैत्री करने वाला, पौरा कथानुसार जब इन्द्र ने कुपित होकर सभी पर्वतों के पंख काटना आ किया, जिससे कि वे उड़ न सकें, तब मैनाक भागकर समुद्र के पास ग और उससे मैत्री करके, उसी के जल मे छिप गया। इस प्रकार समुद्र की से उसके पंख बच गये, अम्भोनिधिः—समुद्र, बद्धम्—अर्थात् कृतम्, सख्यम् मैत्री, सखि शब्द से 'सख्युर्यः, से य प्रत्यय है, यस्येति चेति इकार लो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पक्षच्छिदि पक्षान्—छिनत्तीति विग्रहे क्विप्—प्रत्यये तस्य लोपे पक्षच्छिद् सप्तम्येक वचने पक्षच्छिदि, यह वृत्रशत्रौ का विशेषण है, इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि की अस्थियों से बने कुलिश अर्थात् वज्र का प्रयोग किया था, अतएव वे वृत्रशत्रु कहे जाते हैं, इसी कुलिश से उन्होंने पर्वतों के पंख काटे थे, **कुलिशक्षतानाम्**—वज्रकृत क्षत अर्थात् व्रणों (घावों) की, कुलिनः पर्वतान्—श्यतीति कुलिशम् "कुलिशं भिदुरं पविः" **अवेदनाज्ञम्**—जानातीति ज्ञः, ज्ञा धातोः क प्रत्ययः, वेदनायाः ज्ञः वेदनाज्ञः न वेदनाज्ञः अवेदनाज्ञः तम् ।

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी ।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥२१॥

प्रसंग—इसमें पार्वती की उत्पत्ति के पूर्व की अवस्था का वर्णन है ।

अन्वय—अथ दक्षस्य कन्या सती भवपूर्व पत्नी सती, पितुः अवमानेन प्रयुक्ता योगविसृष्टदेहा (सती) जन्मने ताम् शैलवधूम् प्रपेदे ।

शब्दार्थ—अथ—इसके बाद, दक्षस्य कन्या=प्रजापति दक्ष की पुत्री, सती-साध्वी अर्थात् पतिव्रता, भवपूर्वपत्नी=भगवान शिव की पूर्वपत्नी अर्थात् अपने पूर्वजन्म में जो कि शिव की पत्नी थीं, सतीं=सती नाम वाली । पितुः=अपने पिता दक्ष के, अवमानेन=अपमान से, प्रयुक्ता=प्रेरित होकर योगविसृष्टदेहा=योगमार्ग से शरीर को त्याग देने वाली (सती होकर) जन्मने—पुनः जन्म लेने के लिए, ताम् शैलवधूम्=उस पर्वतपत्नी अर्थात् मेना के पास, प्रपेदे—पहुंची ।

अनुवाद—इसके बाद दक्ष की पुत्री, साध्वी पूर्वजन्म में शिव की पत्नी सती नाम्नी, पिता दक्ष के अपमान से प्रेरित होकर योग मार्ग से शरीर त्याग देने वाली (होकर) पुनः जन्म ग्रहण करने के लिये उस पर्वतराज पत्नी मेना के पास पहुँची ।

भावार्थ—सती नाम की दक्षपुत्री अपने पूर्वजन्म में भगवान् शंकर की पत्नी थी, ये सती साध्वी थीं, अपने पिता दक्ष के अपमान से प्रेरित होकर उन्होंने योग मार्ग से अपना शरीर त्याग दिया था । अब वे पुनः जन्म ग्रहण करने के लिए पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेनका के पास गयी थीं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

समासादि—भवपूर्वपत्नी—पूर्वा चासौ पत्नी पूर्वपत्नी, भवस्य पू॰ भवपूर्वपत्नी। योगविसृष्टदेहा—योगेन योगमार्गेण विसृष्टः परित्यक्तः देहः यया सा। शैलवधूम्=शैलस्य वधूः ताम्।

संस्कृत व्याख्या—अथ-एतदनन्तरम्, दक्षस्य कन्या दक्षप्रजापतेः पु॰ भवपूर्वपत्नी=शिवप्रथमभार्या, सती=परमसाध्वी; सती=सतीति नाम्नी पितुः स्वजनकस्य दक्षस्य, अवमानेन=अपमानेन, प्रयुक्ता=प्रेरिता, योगवि॰ देहा=योगमार्गेण परित्यक्तशरीरा (सती) जन्मने=पुनरुद्भवाय, तां शै॰ =प्रसिद्धां तां पर्वतपत्नीं मेनाम् प्रपेदे=प्राप्तवती।

संस्कृत सरलार्थ—स्वभर्त्रे शिवाय यज्ञभागाप्रदानादिना स्वजनके॰ प्रजापतिना कृतेनापमानेन प्रेरिता, भगवतः शिवस्य प्रथमभार्या सतीति॰ ख्याता पितृकृतापमानस्य नापरमुपायं पश्यन्ती, योगमार्गेण परित्यक्तशरीरा पुनरुद्भवाय सर्वाधिकगुणशालिनीं शैलाधिपतिपत्नीं मेनकादेवीं प्राप्तवती।

टिप्पणी—दक्षस्य कन्या+दस प्रजापतियों में दक्ष भी एक प्रजापति॰ जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के अङ्गुष्ठ से बतायी जाती है, इनके अनेक प॰ थीं, कहा जाता है कि इनकी एक पत्नी से उत्पन्न २७ कन्यायें च॰ विवाहित हैं जो कि २७ नक्षत्रों के रूप में मानी जाती हैं। इनकी 'प्र॰ नामक भार्या से उत्पन्न षोडश कन्याओं में एक शिव की प्रथम पत्नी भी थीं। पितुः अवमानेन पौराणिक गाथा के अनुसार, एक बार ब्र॰ सभा में भगवान् शिव और दक्ष में किसी बात पर विवाद हो गया॰ फलतः इससे रुष्ट होकर दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में भगवान् शि॰ यज्ञांश नहीं निकाला और सती को भी आमन्त्रित नहीं किया, पिता द्वारा॰ गये इस अपमान को न सहन कर सती ने अपने शरीर को योगाग्नि॰ भस्म कर दिया, 'योगविसृष्टदेहा'। जन्मने—शरीर त्यागने के बाद पुनः जन्म ग्रहण के उद्देश्य से, उस समय की सर्वश्रेष्ठ गुणवती मेनका दे॰ पास गयी।

इससे पूर्व के श्लोक में हिमवत्पुत्र मैनाक की उत्पत्ति और उसके॰ त्कर्ष का वर्णन किया गया है, इस महाकाव्य के कथानक से यद्यपि॰ का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है तथापि हिमालय के वैशिष्ट्य वर्णनात्मक॰

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मैनाक जैसे शक्तिशाली एवं चतुर हिमवत् पुत्र का वर्णन कर हिमालय का ही गुणोत्कर्ष दिखलाया गया है ।

दूसरी बात यह भी है कि अब आगे पार्वती की उत्पत्ति तथा उनके विवाह का प्रसंग आता है, अतः पार्वती के विवाह के लिए उनके भाई का होना भी आवश्यक था, क्योंकि शास्त्रानुसार उस कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए, जिसके भाई न हो "पिता न ज्ञायते यस्या भ्राता यदि न विद्यते, नोपयच्छेत्तु तां कन्यां धर्मलोपभयात्सुधीः ।" वस्तुतः यह शास्त्र वचन लोकव्यवहार पर आश्रित है, फलतः पार्वती को भ्रातृमती दिखलाया गया है ।

भवपूर्वपत्नी — भू धातु से पचाद्यच होकर (भव) बनता है जिसका अर्थ है "भवति भवते या सर्व भव" इसका प्रयोग शिव के लिए भी होता है "भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः" पूर्वपत्नी शब्द में कर्मधारय समासोत्तर "पुंवत्क-र्मधारयेत्यादिना पुम्वद्भावः । **सतीं**—अस् धातोः शतृ प्रत्यये, 'श्नसोरल्लोपः" से अकार लोप 'उगितश्च' से ङीप् होकर 'सती शब्द बनता है । **जन्मने** — जनुर्जनन जन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद् भवः" जन्म लेना' इस अर्थ में जन्मन् शब्द का प्रयोग हुआ है, इसी का यह चतुर्थी एक वचन का रूप है, **प्रपेदे** = प्र+पद् गतौ धातोर्लिटि रूपम् अत्र' अत एकहलि त्यादिना एत्वाभ्यास लोपौ ।

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या ।
सम्यक् प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साह गुणेन संपत् ।।२२।।

प्रसंग—पार्वती की उत्पत्ति का वर्णन ।

अन्वय—भव्या सा भूधराणाम् अधिपेन समाधिमत्याम् तस्याम्, सम्यक् = प्रयोगात् अपरिक्षतायाम् नीतौ उत्साहगुणेन सम्पत् इव उदपादि ।

शब्दार्थ—भव्या = कल्याणी, सा = वह, सती, भूधराणाम् = पर्वतों के, अधिपेन = स्वामी हिमालय के द्वारा, समाधिमत्याम् तस्याम्—नियमवती अथवा एकाग्रचिन्ता उस मेनका देवी में, सम्यक् प्रयोगात् = उचित आचरण के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

कारण, अपरिक्षतायाम् = नीतौ = अभ्रष्ट हुई नीति में, उत्साहगुणेन = उ
शक्ति द्वारा, सम्पत् इव—सम्पत्ति के समान, उदपादि—उत्पन्न की गई।

अनुवाद—कल्याणमयी वह सती, पर्वतों के स्वामी हिमालय के द्वारा नियमवती उस मेनका देवी में, उचित आचरण के कारण, न भ्रष्ट हुई नीति में, उत्साहशक्ति के द्वारा सम्पत्ति के समान, उत्पन्न की गई।

भावार्थ—जिस प्रकार निर्दोष एवं अविकृत राजनीति में, उत्साह अ पराक्रम वल नामक राजोचित गुण के द्वारा राजसम्पत्ति उत्पन्न की जाती उसी प्रकार सर्वदोषरहित तथा धार्मिक अनुष्ठान परायण मेनका देवी शैलाधिराज हिमालय के द्वारा, कल्याणमयी सती को उत्पन्न किया गया, अ कल्याणमयी सती उस राजसम्पत्ति के समान थी, जिसे कोई राजा या मह कांक्षी जन अपने आप समुचित आचरण से, निर्दोष एवं अविकृत राजनीति अपने पराक्रम वल से उत्पन्न करता है, धार्मिकनियमानुष्ठानपरायण मे देवी निर्दोष एवं अविकृत राजनीति के समान थीं, और सती को पुनर्जन्म वाले शैलाधिप हिमालय, उत्साह नामक राजगुण के तुल्य थे। अतएव जनक से मेनका जैसी धर्ममूर्ति में सती ने पार्वती के रूप में जन्म किया था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में 'पूर्णोपमा' अलंकार है, क्योंकि यहाँ हिम की उत्साह-गुण से, मेनका की उत्कृष्ट राजनीति से और पार्वती की सम से तुलना की गई है। इस उपमा में कवि का लिङ्गसाम्य भी दर्शनीय उसने स्त्रीलिङ्ग पार्वती और मेनका को क्रमशः सम्पत्ति और राजनीति तथा पुल्लिङ्ग, हिमालय की उत्साहगुण से तुलना की है। पूर्णोपमा का वा शब्द 'इव' का भी प्रयोग है।

उपजाति नामक छंद है।

समासादि—भुवः धराः भूधराः तेषाम् भूधराणाम्। न परिक्षता अ क्षता तस्याम्-अपरिक्षतायाम्। उत्साह एव गुणः तेन उत्साहगुणेन।

संस्कृत व्याख्या—भव्या—कल्याणी, सा—सती, भूधराणाम्—गिरीण अधिपेन—स्वामिना, हिमवता, समाधिमत्याम्-नियमवत्याम्-तस्याम्, मे देव्याम्, सम्यक् प्रयोगात् साध्वाचरणाद् हेतोः अपरिक्षतायाम्, अभ्रष्टा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अविकृतायां वा, नीतौ-राजनीतौ, उत्साहगुणेन—उत्साहाख्येन राजगुणेन, सम्पत् इव=राजसंपत्तिरिव, उदपादि=उत्पादिता ।

संस्कृत सरलार्थ—यथा विवेकपूर्वकं सम्यक् प्रयोगात् दोषरहितायामविकृतायां सन्धिविग्रहादिषड्विधायां राजनीतौ उत्साहाख्येन राजगुणेन राजसम्पदुत्पाद्यते तथैव धार्मिकनियमानुष्ठानवत्यां मेनकादेव्यां शैलाधिराजेन हिमालयेन भव्या कल्याणमयी दक्षसुता सती समुत्पादिता ।

टिप्पणी—भव्या—भवतीति भव्या 'भव्यगेयेत्यादिना, साधुः। **अधिपेन**—अधिपातीति अधिपः तेन अधि+पा रक्षणे धातोः 'आतश्चोपसर्गे' इति क प्रत्यये, आकार लोपे अधिप इति रूपम् । "अधिभू र्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः" इत्यमरः ।

समाधिमत्याम्—समाधिरस्त्यस्या सा समाधिमती तस्याम्, समाधि शब्दात् मतुप् प्रत्यये, स्त्रीत्वविवक्षायाम्, उगितश्चेति ङीप् । **सम्यक् प्रयोगात्** अत्र हेतौ पञ्चमी । **अपरिक्षतायाम्**—न+परि+क्षण्+क्त, स्त्रीत्वे टाप् । **नीतौ**=णीञ् प्रापणे धातोः क्तिन् । **उत्साहगुणेन**—उत्साहोऽध्यवसायः, उत्साह एव गुणस्तेन । उत्साह रूपी गुण के द्वारा । राजनीति, प्रभाव, उत्साह और मंत्र इन तीन शक्तियों से सफल होती है, सफल नीति, ही अभ्रष्ट एवं अविकृत कही जाती है । विक्रमबलमुत्साहशक्तिः=पराक्रम प्रदर्शन ही उत्साह कहा जाता है, परन्तु इसकी पूर्ण सफलता के लिये मन्त्र शक्ति का भी सहयोग अपेक्षित रहता है" उत्साहो मन्त्रमूलं स्यादिति नीति-विदां मतम् "समाधिमती अर्थात् नियमवती मेनका भी सम्यक् प्रयोगात् अपरिक्षता नीति के समान थी, वह धार्मिकानुष्ठान परायण थी । गृहस्थ जीवन में उसके ये नियम किसी एकाग्रचित्त समाधिस्थ योगी से कम न थे । अतः वह भी साध्वाचरण से निर्दोष एवं अविकृत नीति जैसी ही थी ।

उदपादि—उत्+पद् धातोः ण्यन्तात् कर्मणि लुङि रूपम् ।

प्रसन्नदिक्पांशुविविक्तवातं शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टिः ।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ॥ २३ ॥

प्रसंग—पार्वती के जन्मदिन का वर्णन ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अन्वय—प्रसन्नदिक् पांशुविविक्तवातम्, शङ्ख स्वनानन्तरपुष्पवृ[ष्टि] तज्जन्मदिनम् स्थावरजङ्गमानाम् शरीरिणाम् सुखाय बभूव ॥

शब्दार्थ—प्रसन्नदिक्—स्वच्छ दिशाओं वाला, पांशुविविक्तवातम् धूलिरहित वायु वाला, शङ्खस्वनानन्तर पुष्पवृष्टिः=शङ्खध्वनि के [अनन्तर] पुष्पवर्षा वाला, तज्जन्मदिनम्—उसका जन्मदिन, स्थावरजङ्गमान[ाम्] शरीरिणाम्=अचर और चर देहधारियों के, सुखाय बभूव=सुख के लिये हु[आ]

अनुवाद—निर्मल स्वच्छ दिशाओं वाला, धूलिरहित वायु वाला (शङ्खध्वनि के अनन्तर पुष्पवृष्टि वाला उसका जन्म दिन अचर एवं [चर] देहधारियों के सुख के लिये हुआ।

भावार्थ—जिस दिन पार्वती का जन्म हुआ, उस दिन सभी दिशायें नि[र्मल] एवं स्वच्छ थीं, वायु धूलिरहित होकर बह रहा था। देवता हर्षसूचक शंखध्[वनि] करके पुष्पवर्षा कर रहे थे। इस प्रकार उसका वह जन्मदिन सभी चरा[चर] देहधारियों के सुख के लिये हुआ, अर्थात् उस दिन सभी जीव सुखी हो गये।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक के 'तज्जन्मदिनम्" के सभी विशेषणों के सा[भि]प्राय होने से यहाँ परिकर नामक अलंकार है, और उपजाति छंद है।

समासादि—प्रसन्नाः दिशः यस्मिन् तत् प्रसन्नदिक्, पांशुभिः विवि[क्ताः] वाताः यस्मिन् तत्—पांशुविविक्तवातम्, शङ्खस्य स्वनात् अनन्तरम् पुष्प[स्य] वृष्टिः यस्मिन् तत्—शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि तस्याः जन्मनः दि[नम्] इति तज्जन्मदिनम्। स्थावराश्च जङ्गमाश्चेति स्थावरजङ्गमास्ते[षाम्] स्थावरजङ्गमानाम्, शरीरमस्त्येषान्ते शरीरिणः तेषाम् शरीरिणाम्।

संस्कृत व्याख्या—प्रसन्नदिक्—निर्मलाशम् पांशुविविक्तवातम्—र[ज]रहितपवनम्। शङ्खस्वनन्तरपुष्पवृष्टिः शङ्खध्वन्यनन्तरपुष्पवर्षणम्, तज्ज[न्म]दिनम्=पार्वतीजननाहः, स्थावरजङ्गमानाम् स्थितिशीलशैलवृक्षादिगति[शील] देवतिर्यङ्मानवादीनाम् शरीरिणाम्=देहधारिणाम्। सुखाय=कल्याण[ाय] बभूव=जातम्।

संस्कृत सरलार्थ—पार्वत्या जन्मदिवसे तीव्रातपमेघो परोधादिदोषविनिर्मु[क्ता] दिशः स्वच्छा निर्मलाश्चासन् रजोदोषमुक्ता सुखस्पर्शा वायवो मन्द[म्] वहन्ति स्म, देवाश्च हर्षातिरेकसूचकंशङ्खस्वनं विधाय दिव्यानि कुसुम[ानि]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वर्षयन्ति स्म, इत्थं तस्या जननाह: चेतनाचेतनानां सर्वेषामपि देहधारिणां परमानन्दप्रदायकं जातम् ।

टिप्पणी—प्रसन्नदिक्—तीव्रतप और मेघावरण से रहित होकर दिशायें स्वच्छ एवं निर्मल हो गई थीं, इस प्रकार मानो संपूर्ण प्रकृति अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी, दिश् शब्द हलन्त और आकारान्त दोनों ही प्रकार का है, यहाँ हलन्त शब्द का प्रयोग है। प्र+सद् क्त, धातु के प्रकार और प्रत्यय के तकार को नत्वादेश होकर प्रसन्न शब्द बना है। **पांशुविविक्तवातम्**-पांशु अर्थात् धूलियों से विविक्ता अर्थात् विवर्जित रहित होकर हवायें बह रही थीं। वि+विज्+क्त=विविक्त=रहित, वायु मन्द गति से बहने के कारण धूलि और तीव्रता से रहित था। 'प्रसन्नदिक्' विशेषण द्वारा यहाँ कवि ने नेत्रसुख को सूचित किया है, और पांशुविविक्तेत्यादि विशेषण से त्वगिन्द्रिय सुख की सूचना दी है। शङ्खस्वनानन्तर पुष्पवृष्टि=देवता शंख बजाकर पुष्प-वर्षा कर रहे थे, देवता इसीलिये हर्षातिरेकवश ऐसा कर रहे थे और सम्पूर्ण प्रकृति भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी, क्योंकि पार्वती के जन्म और विवाह के उपरान्त जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह तारकासुर का बध कर सभी को सुखी करेगा। शङ्खेत्यादि विशेषण द्वारा कवि ने श्रोत्रेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय सुख की ओर संकेत किया है, स्वन का अर्थ ध्वनि है—"शब्दे निनाद निनदध्वनिध्वानरवस्वना: इत्यमर:" वृष—धातो: क्तिन् वृष्टि:। **स्थावरेति** ष्ठा गतिनिवृत्तौ धातोः 'स्थेशभासेत्यादिना वरच्। वरच् प्रत्यय: "स्थावरोजङ्गमेतर:। जङ् गम्यन्ते भृशं गच्छन्तीति जङ्गमा: देवतिर्यङ्मनुष्यादयः स्थावरा: गतिशीला: शैलवृक्षादयः। **शरीरिणाम्**—शरीरमस्त्येषा मिति विग्रहे "अतइनिठनौ" इति नित्य योगे इनि:।

पार्वती के जन्म दिन ने गतिशील देवतिर्यङ् मनुष्यादि को ही नहीं अपितु स्थितिशील लता—गुल्म वृक्षादि को भी सुख मिला था वे भी अपनी विविध क्रियाओं द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। वस्तुत: सभी प्राणी अपनी-अपनी भावनानुसार सुख अथवा दु:ख की अनुभूति करते हैं, और फिर प्रकृति में ही तादात्म्य स्थापित कर उस पर अपनी ही चित्रवृत्ति का आरोप कर देते हैं, फलत: अपनी चित्रवृत्ति के अनुसार ही उन्हें प्राकृतिक पदार्थ भी सुखी अथवा दु:खी दिखाई पड़ने लगते हैं—उदाहरणार्थ—स्वप्रियतम से अवियुक्त जन के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

लिये यदि चन्द्रमा अमृत बरसाता है तो वहीं वियोगी के लिये अपनी किर से अग्नि बरसाने वाला होता है।

इसी से मिलता-जुलता पार्वती के जन्म समय का वर्णन शिवपुराण में देखा जाता है—

"दिश:" प्रसेदुः पवनः सुखं ववौ, शङ्खान्निदध्मुर्गगने चरास्तथा। पपा मौलौ कुसुमाञ्जलिस्तदा बभूव तज्जन्मदिनं सुखप्रदम् ॥

अज के जन्म समय पर रघुवंश में भी कालिदास ने ऐसा ही वर्णन किया है—

'दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे।
विदूर भूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव ॥२४॥

प्रसंग—पार्वती की नैसर्गिक शरीर-शोभा का वर्णन।

अन्वय—स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सवित्री, विदूरभूमिः नवमेघ शब्दात् उद्भिन्नया रत्नशलाकया इव सुतरां चकासे।

शब्दार्थ—स्फुरत्प्रभामण्डलया = चमकते हुये (स्फुरत्) कान्ति (प्रभा) पुञ्ज (मण्डल) वाली, तया दुहित्रा = उस पुत्री (दुहित्रा) पार्वती से, सवित्री —माता मेना, विदूरभूमिः—विदूर नामक पर्वत की प्रान्तभूमि, नवमेघ शब्दात्—नवोदित मेघ के गर्जन से, उद्भिन्नया—(पृथिवी को फोड़ कर निकली हुई, रत्नशलाकया = रत्नशलाका अर्थात् रत्नाङ्कुर, इव—की तरह सुतराम् = अत्यधिक, चकासे = सुशोभित हुई।

अनुवाद—चमकते हुये कान्ति पुञ्ज वाली उस पुत्री पार्वती से माता मेनका (उसी प्रकार) अत्यधिक सुशोभित हुई, जैसे, विदूर पर्वत की प्रान्त भूमि, नवोदित मेघगर्जन से विनिर्गत रत्नाङ्कुर से शोभित होती है।

भावार्थ—जातमात्रा पार्वती के नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिस प्रकार विदूर नाम से प्रसिद्ध पर्वत विशेष की प्रान्

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भूमि, नूतनमेघगर्जन से विनिर्गत रत्नांकुर से सुशोभित होती है, उसी प्रकार देदीप्यमान कान्तिमण्डल वाली अपनी इस पुत्री पार्वती से माता मेनका सुशोभित हुईं। अर्थात् जन्म लेते समय ही पार्वती का कान्ति मण्डल देदीप्यमान हो रहा था, इससे न केवल पार्वती जी का ही नैसर्गिक सौन्दर्य प्रकट हो रहा था, अपितु इससे उनकी माता मेनका की भी शोभा बढ़ गई थी, ठीक उसी प्रकार जैसे मेघगर्जन से उत्पन्न रत्नांकुर से न केवल उस रत्न की ही शोभा होती है वल्कि वह विदूरभूमि भी कान्तिमती बन जाती है जहाँ वह रत्नांकुर उत्पन्न होता है।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में **पूर्णोपमालंकार** है उपमानोपमेय गत साधारण धर्म सुशोभित होना है, उपमावाचक इव शब्द का भी प्रयोग है। पार्वती की रत्नशलाका से तथा माता मेनका की विदूरभूमि से तुलना की गयी है। लिङ्गसाम्य का वैशिष्ट्य यहाँ भी दर्शनीय है, रत्नशलाका का अर्थ यद्यपि रत्नांकुर है, तथापि लिङ्गसाम्य की दृष्टि से कवि ने यहाँ स्त्रीलिङ्ग पार्वती से उसका साम्य दिखलाने के लिये रत्नशलाका का प्रयोग किया है, मेना माता की तुलना स्त्रीलिङ्ग विदूरभूमि से की गई है।

इसमें उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—प्रभानां मण्डलम् प्रभामण्डलम् स्फुरत् प्रभामण्डलं यस्याः सा तया स्फुरत्प्रभामण्डलया। विदूरस्य भूमिः विदूरभूमिः। नवश्चासौ मेघः तस्य शब्दः तस्मात् नवमेघशब्दात्। रत्नस्य शलाका तया—रत्नशलाकया।

संस्कृत व्याख्या—स्फुरत्प्रभामण्डलया लसत्कान्तिमण्डलया, तया दुहित्रा =तया कन्यकया पार्वत्या, सवित्री—जननी मेनकेत्यर्थः, विदूरभूमिः= विदूराख्यपर्वत विशेषस्य प्रान्त भूमिः, नवमेघशब्दात्—नूतनजलदगर्जितात्, उद्भिन्नया=विनिर्गतया, रत्नशलाकया=रत्नांकुरेण, इव—यथा, सुतराम्— भृशम्, चकासे=विरराज।

संस्कृत सरलार्थ—जातमात्रायाः पार्वत्याः नैसर्गिकीं शरीरशोभां वर्णयन् कविः कथयति यद् विदूराख्यः रत्नोद्भवस्थानभूतः कश्चित् पर्वतविशेषः अस्ति, तस्य प्रान्तभूमि र्यथा नवमेघगर्जितात् भूमिं विदार्य समुत्पन्नया रत्नशलाकया विशोभते, तथैव पार्वतीजननी मेनका दीप्तिमत्कांतिमण्डलया तया कन्यकया पार्वत्या भृशं शुशुभे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

टिप्पणी—स्फुरत्प्रभामण्डलया—स्फुरतीति स्फुरत्, स्फुर सञ्चलने धातोः शतृ प्रत्ययः। देवयोनि के प्राणियों में ऐसे देदीप्यमान प्रभामण्डल का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। **सवित्री**—सूते इति सवित्री, षूङ् प्राणिगर्भ विमोचने धातोः तृच् प्रत्ययः, स्वरतिसूतीत्यादिना इट् स्त्रीत्वविवक्षायां 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप् प्रत्यये, सवित्रीति रूपम्। **विदूरभूमिः** मल्लिनाथ ने विदूरभूमि का अर्थ—विदूरपर्वत की प्रान्तभूमि किया है। विदूर एक पर्वत का नाम है, अन्य टीकाकारों ने इसका और भी स्पष्टीकरण करते हुए इस सम्बन्ध में अन्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं—

"अस्ति शैलो विदुराख्यः पर्यन्ते तत्र काचन।
मही रत्नाकरीभूता वैदूर्यं तत्र जायते।।
मेघशब्देन जायन्ते तत्र रत्ननवाङ्कुराः।
क्रमात् परिणतास्ते स्युर्मणयो राजपूजिताः।।"

इसी सम्बन्ध में यह भी उद्धृत किया गया है—

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्ग रोधसः।
काकतालीय सीमान्ते मणीनामाकरो भवेत्।

चकासे—कासृ दीप्तौ धातो लिटि रूपम्। शिवपुराण में भी ऐसा ही वर्णन उपलब्ध होता है—

'मेना तया पूर्णनिशेशवक्त्रया स्फुरत्प्रभामण्डलयारराज ह।
यथा विदूराचलभूमिरञ्जसा घनोत्थया रत्नशलाकया मुने॥'

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि॥२५॥

प्रसंग—पार्वती के शरीर की उत्तरोत्तर लावण्य वृद्धि का वर्णन है।

अन्वय—लब्धोदया दिने दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणि कलान्तराणि इव पुपोष।

शब्दार्थ—लब्धोदया = जन्म लेने वाली, उत्पन्न हुई, अन्यत्र = उदित हुई, दिने-दिने = प्रतिदिन, परिवर्धमाना = वृद्धि को प्राप्त हुई, सा = वह पार्वती, चान्द्रमसी लेखा इव = चन्द्रमा की रेखा के समान, लावण्यमयान् विशेषान् =

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रचुर सौन्दर्य वाले अङ्गावयवों को, ज्योत्स्नान्तराणि = प्रभूतज्योत्स्ना वाली, कलान्तराणि = अन्य कलाओं को, इव = यथा, पुपोष = परिपुष्ट किया ।

अनुवाद—जैसे उदित हुई, प्रतिदिन बढ़ती हुई, चन्द्रमा की रेखा या कला, प्रभूत ज्योत्स्ना वाली, अन्य कलाओं को परिपुष्ट करती ही, उसी प्रकार उत्पन्न हुई, प्रतिदिन बढ़ती हुई उस पार्वती ने भी, प्रचुर सौन्दर्य वाले अपने शरीरावयवों को सम्पुष्ट किया ।

भावार्थ—पार्वती के प्रतिदिन वर्धमान अङ्ग-लावण्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को उदित हुई और दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई चन्द्रकला अधिकाधिक प्रकाश वाली अपने कलारूप अवयवों को पुष्ट करती है, उसी प्रकार उत्पन्न हुई और प्रतिदिन बढ़ती हुई पार्वती भीअपने प्रचुर सौन्दर्यशाली शरीरावयवों को सम्पुष्ट करती थी अर्थात् उत्तरोत्तर प्रवर्धमाना चन्द्रकला के समान ही उसके प्रचुर सौन्दर्यमय शरीरायव सम्पुष्ट हो रहे थे ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में वाक्योपमालंकार है, इसका लक्षण है—

'वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थः कोऽपि यद्युपमीयते ।
एकानेकेव शब्दत्वात् सा तु वाक्योपमा द्विधा ।।

उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि = लब्धः उदयः यया सा = लब्धोदया, ज्योत्स्नायाम् अन्तरम् अन्तर्धानं येषान्तानि—ज्योत्स्नान्तराणि, अन्याः कलाः कलान्तराणि ।

संस्कृत व्याख्या—लब्धोदया = प्राप्तजनना, उत्पन्नेत्यर्थः, अन्यत्र सूर्यात् पृथग्भावेन अभ्युदिता । दिने दिने प्रतिदिनम्, परिवर्धमाना = वृद्धिं गच्छन्ती, बाला, चान्द्रमसी लेखा इव = चन्द्रसम्बन्धी रेखा इव, लावण्यमयान् = कान्तिविशेषप्रचुरान् विशेषान् = अवयवान्, ज्योत्नान्तराणि = चन्द्रिकान्तर्हितानि, कलान्तराणि अन्याः कलाः इव पुपोष = उपचितवती ।

संस्कृत सरलार्थ—यथा शुक्लपक्षप्रतिपदभ्युदिता प्रतिदिनं वृद्धिं गच्छन्ती चन्द्रकला अधिकाधिकज्योत्स्नायुक्तान् कलारूपान् अवयवान् पुष्णाति तथैवेयं प्राप्तजनना बाला पार्वती प्रतिदिन वृद्धिं गच्छन्ती कान्तिविशेषप्रचुरान् स्वकीयान् शरीरावयवान् पुष्टिमनयत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

टिप्पणी—'लब्धोदया' यह विशेषण पार्वती एवं चन्द्रलेखा दोनों ही के लि प्रयुक्त हुआ है, पार्वती के पक्ष में इसका अर्थ है—जन्म ग्रहण कर चुकने वा अर्थात् उत्पन्न हुई, चन्द्रलेखा पक्ष में इसका अर्थ है उदित हुई, अथात् सूर्य से उदित हुई, सूर्य के समीपवर्ती होने पर उदित भी ग्रह दिखाई नहीं पड़ते अत उन्हें अस्त हुआ कहा जाता है, जब सूर्य से दूर ये ग्रह उदित होते हैं, तभी दिखाई पड़ते हैं, और इन्हें उदित हुआ कहा जाता है। ग्रहों के उदय और अ का यही तात्पर्य होता है—"भानोः समासन्नतया ग्रहाणामदर्शनं यत् तदिहा मुक्तम् ततश्च तेषां रविदूरगत्या यद्दर्शनं स्यादुदयं तदाहुः ॥" **परिवर्धमाना**— परिवर्धते इति परिवर्धमाना—परि+वृध वृद्धौ धातोः शानच् स्त्रीत्वे टा **चान्द्रमसी**—चन्द्रमसः—इयमिति विग्रहे 'तयेदमिस्त्यण् स्त्रीत्वे ङी **लावण्यमयान्**—प्रचुरं लावण्यमस्ति येषान्ते लावण्यमयास्तान् अत्र लाव शब्दात् मयट् प्रत्ययः। सामान्यतः सौन्दर्य के भी सौन्दर्य को लावण्य क गया है, जिसमें गुणोत्कृष्टता एवं स्निग्धता के कारण दूसरों को अपनी ओ बलात् आकृष्ट करने की शक्ति हो," भिन्न रुचिर्हि लोकः के अनुसार वस्तु सौन्दर्य या लावण्य की कोई परिभाषा नहीं होती फिर भी सञ्जीविनीकार इसकी यह परिभाषा दी है—"मुक्ताफलेषु छायायास्तर लत्वमिवान्तरा। प्र भाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥" अर्थात् मोती के दाने की तरल कान्ति जो प्रतीति अंगों में होती हैं, उसे लावण्य कहा जाता है। **विशेषान्**—इस यहाँ अर्थ है—अवयवान् "विशेषाऽवयवे व्यक्तौ"। **ज्योत्स्नान्तराणि**—ज्यो त्स्नायामन्तरम् अन्तर्धानम् येषां तानि, अत्र व्यधिकरण पद बहुव्रीहि समासः **कलान्तराणि**—अन्याः कलाः अत्र 'मयूरव्यंसकादयश्च' सह सुपेति वा समासः **पुपोष**—पुष् धातोर्लिटि रूपम्।

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियाम् बन्धुजनो जुहाव।
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।२६

प्रसंग—पार्वती के नामकरण का निर्देश।

अन्वय—बन्धुप्रियाम् ताम् बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना पार्वती इति जुहाव पश्चात् मात्रा 'उ' मा इति तपसः निषिद्धा (सती) सुमुखी उमाख्या जगाम।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

शब्दार्थ—बन्धुप्रियाम् = बन्धुजनों को प्रिय, ताम् = उस पार्वती को, बन्धुजनः = पित्रादि बान्धव जन, आभिजनेन नाम्ना = वंशागत नाम से 'पार्वती' इति पार्वती ऐसा कह कर, जुहाव = पुकारते थे। पश्चात् उसके बाद, मात्रा—माता के द्वारा 'अर्थात् तप, मां अर्थात् मत करो, अर्थात् तप मत करो (ऐसा कहकर) तपसा निषिद्धा (सती) तप से रोकी गई होकर, सुमुखी—सुन्दर मुखी वह पार्वती, उमाख्याभ् = उमा नाम को, जगाम = प्राप्त हुई।

अनुवाद—बन्धुजनों की प्रिय उस पार्वती को पित्रादि बान्धव जन (उसे) वंशागत नाम से अर्थात् पर्वतपुत्री होने के कारण 'पार्वती' कहकर पुकारते थे, किन्तु इस पार्वती नाम के बाद, माता के द्वारा 'तप मत करो' ऐसा कहकर, तप से निवारित की गई (होकर) वह सुवदना पार्वती उमा, नाम को प्राप्त हुई।

भावार्थ—बन्धुप्रिया पार्वती को पहले तो उसके पिता आदि बन्धुजन, उसके वंशपरम्परागत नाम से अर्थात् पर्वत की पुत्री होने के कारण पार्वती, इस नाम से पुकारते थे, किन्तु इस नाम के बाद कालान्तर में जब वह तप करने को उद्यत हुई, तब उसकी माता मेना ने 'तप न करो' ऐसा कहकर उसे तपस्या करने से रोका, अतः इसके बाद इस कथन के अनुसार ही वह सुवदना पार्वती' उमा' इस नाम को प्राप्त हुई. अर्थात् उसका नाम ही उमा पड़ गया।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **काव्यलिङ्ग** अलंकार है क्योंकि यहाँ 'पार्वती और उमा' इन नामों के कारणों का उल्लेख है।

समासादि—बन्धूनाम् प्रिया ताम् बन्धुप्रियाम्। बन्धुश्चासौ जनः बन्धुजनः उमा चासौ आख्या ताम् उमाख्याम्। शोभनं मुखं यस्याः सा सुमुखी।

संस्कृत व्याख्या—बन्धुप्रियाम् = स्वजनवल्लभाम्, ताम् = बालाम् पार्वतीम् बन्धुजनः = पित्रादिबन्धुलोकः, आभिजनेन = वंशपरम्परागतेन, नाम्ना, अभिधानेन, पार्वती इति = पर्वतस्य अपत्यं स्त्री पार्वती-गिरिजा, एवम् जुहाव = आहूतवान्। पश्चात् एतन्नामानन्तरम्-मात्रा = जनन्या मेनकया उमा इति = हे वत्से तपः मा = न (कुरु) एवम् तपसः = तपश्चरणात् निषिद्धा = निवारिता (सती) सुमुखी = सुवदना उमाख्याम् = उमा—नामधेयम्-जगाम = प्राप।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

संस्कृत सरलार्थ—बन्धुजना: प्रथमन्तु स्वजनवल्लभां तां कन्यका पर्वतस्यापत्यं स्त्रीति व्युत्पत्या तद्वंशागतनाम्नैव पार्वतीति कथयित्वा तामाहू वन्तः। पश्चात् यदा कोमलशरीरापि सा तपः कर्तुकामाभवत् तदा मात्रा वत्से तपः मा कुरु, इति कथयित्वा तपश्चरणात् निवारिता सती सा उ नामधेयं प्राप्तवती।

टिप्पणी—बन्धुप्रियाम्—प्रीणातीति विग्रहे प्रीञ्—तर्पणे धातो 'इगुपधेत्यादिना क प्रत्यये इयङि कृते स्त्रीत्वविवक्षायां टाप् प्रत्यये, प्रि इतिरूपम्। आभिजनेन—अभिजायतेऽस्मिन् इति अभिजनः वंशः, अभिज दागतम्=आभिजनम् तेन 'तत आगतः, इत्यण् आदिवृद्धिः=अभिजन का अर्थ है, कुल या वंश, अभिजनान्वयौ" अन्वय, कुल, वंश अभिजन पर्या वाची शब्द है, अतः आभिजनेन का अर्थ वंशागत "अभिजनाः पूर्वबान्धवाः काशिकाकार के इस कथन के अनुसार आभिजन का अर्थ है, पित्रादि पूर्वसम्बन्धं पाधिक। इस दृष्टि से इसका अर्थ होगा—पूर्वजप्राप्तेन "नाम्ना=आख्या आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च इत्यमरः। पार्वती पर्वाणि सन्त्यस्य पर्वतः अत्र पर्वशब्दात्, अयस्तस्यचेति तप्पूर्वमरुद्भ्याम् इति तप् प्रत्ययः, तस्याप स्त्री पार्वती, तस्यापत्यमित्यण् टिड्ढाणञिति ङीप, अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडा चण्डिकाम्बिका, ये पार्वती के अन्य नाम हैं। जुहाव=ह्वेञ धातोर्लिटि, अभ्य तस्य चेति वकारस्य उ सम्प्रसारणम्। मात्रा—जनन्या "जनयित्री प्रसूर्माता जननी इत्यमरः। उमा इति—उ इति तपो वाचकमव्ययम्, 'इति निषेधवाचक मव्ययम्' अतः इसका अर्थ है, तपः मा कुरु, किन्तु सञ्जीविनीकार के मत उ इति सम्बोधने, मा शब्दो निषेधे, अतः इसका अर्थ है=हे वत्से (तपः) अर्थात् न, दोनों ही अर्थों में प्रासंगिक अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। तपस यहाँ 'वारणार्थानामीप्सितः' से अपादानत्वात् पञ्चमी है। सुमुखी=स्वाङ्गाच्चो पसर्जनादित्यादिना ङीष। उमाख्याम् "उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी उमा के पर्यायवाची शब्द है। आख्यायेतऽनया इति आख्या नाम। निषिद्धा नि+षिध्+क्त=टाप्। पार्वती के द्वितीय नाम 'उमा' के विषय में सभ पुराणों में प्रायः एक सा ही यही प्रकार बतलाया गया है। वामनपुराण और शिवपुराण के उद्धरण इस प्रकार है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तपसो वारयामास उमेत्येवाब्रवीच्च सा ।
तदेव माता नामास्याश्चक्रे पितृसुता शुभा ।।"
'उ मा गच्छ वनं घोरं सर्वविघ्नास्पदं सदा ।
तां पार्वतीत्याभिजनाच्च नामतो जुहाव तद्बन्धुजनः स्वभावतः ।
मात्रा निषिद्धा तपसो यदा तु सा ययावुमाख्यां भवभक्तिभाविनी ।

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम् ।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ।।२७।।

प्रसंग—पार्वती पर पितृस्नेह का वर्णन ।

अन्वय—पुत्रवतः अपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्तिम् न जगाम अनन्तपुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसङ्गा (भवति) ।

शब्दार्थ—पुत्रवतः अपि = पुत्रवान् भी, महीभृतः पृथिवी को धारण करने वाले गिरिराज हिमालय की दृष्टि, तस्मिन् अपत्ये—उस सन्तति अर्थात् पार्वती पर, तृप्ति न जगाम = सन्तोष को प्राप्त न हुई हि—क्योंकि, अनन्तपुष्पस्य = बहुत से पुष्पों वाले, मधोः—वसन्त की, द्विरेफमाला = भ्रमरपंक्ति, चूते—सहकार मञ्जरी पर, सविशेष सङ्गा = विशेष रूप से आसक्त होने वाली, (भवति) होती है ।

अनुवाद—पुत्रवान् भी महीधर हिमालय की दृष्टि उस सन्ततिभूत पार्वती पर तृप्ति को प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि बहुत से पुष्पों वाले (भी) वसन्त की भ्रमरपंक्ति सहकार मञ्जरी पर ही विशेष रूप से आसक्त होने वाली होती है ।

भावार्थ—यद्यपि हिमालय के मैनाक नामक पुत्र भी था, फिर भी उनकी दृष्टि इस अपनी सन्तति पार्वती को देखती हुई तृप्त नहीं होती थी, बार-बार देखते रहने पर भी उनकी दृष्टि को संतोष नहीं होता था, दृष्टि कभी अघाती नहीं थी । इस कन्या पर ही उनकी विशेष स्नेहमयी दृष्टि रहती थी, ऐसा होना ठीक है, क्योंकि असंख्य पुष्पों वाले भी वसन्त की भ्रमरमाला आम्रमञ्जरी पर ही विशेष रूप से आसक्ति रखती है ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में प्रतिवस्तूपमालंकार है, क्योंकि यहाँ अत्यासङ्ग रूप साधारण धर्म को ही पृथक्-पृथक् शब्दों में दो वाक्यों में निरूपित किया गया है, जैसा कि इसका लक्षण है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'प्रतिवस्तूपमा सा स्यात् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः ।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ।'

उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि—पुत्राश्च दुहितरश्चेति पुत्राः (एकशेष द्वन्द्व) । ते सन्त्यस्य पुत्रवान् तस्य पुत्रवतः । महीं बिभर्तीति महीभृत् (उपपद तत्पुरुष) तस्य महीभृतः । अविद्यमानः अन्तः येषान्तानि अनन्तानि अनन्तानि पुष्पाणि यस्य तस्य अनन्त पुष्पस्य । द्वौ रेफौ येषान्ते द्विरेफाः द्विरेफाणां माला द्विरेफमाला विशेषेण सह इति सविशेषः । सविशेषः सङ्गः यस्याः सा सविशेषसङ्गा ।

संस्कृत व्याख्या—पुत्रवतः अपि = बह्वपत्यस्यापि, महीभृतः = भूधरस्य हिमालयस्य, दृष्टिः—चक्षुः तस्मिन्, तोके, तस्यां बलिकायां पार्वत्यामित्यर्थः तृप्तिम् = सन्तुष्टिम्, न जगाम = न प्राप । हि-यतः अनन्तपुष्पस्य = असंख्य-कुसुमस्य, मधोः वसन्तस्य, द्विरेफमाला = भ्रमरपंक्तिः, चूते—सहकार मञ्जर्याम्, सविशेष सङ्गा अत्यासक्ता भवतीति शेषः ।

संस्कृत सरलार्थ—अपत्यान्तरे सत्यपि भूधरस्य हिमालयस्य दृष्टिः केवलं पार्वत्यामेव स्पृहावती अत्यासक्ता चासीत् पुनः पुनः निरीक्ष्यमाणोऽपि स ... न तृप्तिमाययौ । यतः असंख्येयपुष्पवतोऽपि वसन्तस्य भ्रमरपंक्तिः सहकार कुसुम एव सातिशयं सक्ता भवति नान्यत्र ।

टिप्पणी—**पुत्रवतः**—प्रायः सभी टीकाकारों ने इस पद में एकशेष द्वन्द्व ही माना है, अर्थात् पुत्राश्च दुहितरश्चेति पुत्रास्ते सन्त्यस्य स पुत्रवान् तस्य, उनकी इस मान्यता का कारण संभवतः यह रहा है कि हिमालय के अनेक पुत्र और पुत्रियाँ थीं, नदियां भी हिमालय की पुत्रियाँ ही मानी जाती हैं, इसी प्रकार इस महाकाव्य में वर्णित मैनाक के अतिरिक्त उसके कई पुत्र भी होंगे । परन्तु मैनाक के अतिरिक्त हिमालय के अन्य पुत्रों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, जो हो मैंने भी परम्परा का ही अनुसरण किया है । 'पुन्नामनरकात् त्रायतेऽसौ पुत्रः सोऽस्त्यस्य स पुत्रवान् तस्य 'मतुप्—प्रत्यये मकारस्य वकारः' महीभृत :—महीं बिभर्तीति विग्रहे मही + भृञ धातोः 'क्विप् चेति' क्विप् प्रत्यये तस्य सर्वापहारि लोपे, तुकि च कृते 'महीभृत्' इति रूपम् । दृष्टिः चक्षुः, दृश + क्तिन् "लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी दृग्दृष्टी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इत्यमरः। अपत्ये—तोके" अपत्यं तोकं तयोः समे 'इत्यमरः। न पतन्ति पितरोऽनेनेत्यपत्यम्—जिससे पिता नरक में न पड़े वह अपत्य कहा जाता है, अनन्तपुष्पस्य मधोः मधु शब्द का अर्थ यहाँ वसन्त है "मधु क्षौद्रे जले क्षीरे मद्ये पुष्परसे मधुः दैत्ये चैत्रे वसन्ते च" चूते—आम्र—पुष्प या मञ्जरी पर, यहाँ चूतस्य विकारः कुसुमम्, इस विग्रह में 'अवयवे प्राण्यौषधिवृक्षेभ्यः से हुये अण् प्रत्यय का 'पुष्पमूलेषु वहुलम्' से लोप हो जायेगा।

सविशेषसङ्गा—विशेषेण सहितः सविशेषः अत्र वहुव्रीहिसमासे 'वोपसर्जनस्येति सहस्य सादेशः। वसन्त ऋतु में अनेक पुष्पों के रहते हुये भी भ्रमर आम्रमञ्जरी पर ही विशेष रूप से मंडराते हैं। कवि ने रघुवंश में भी यही भाव प्रकट किया है—

'न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली।'

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥२८॥

प्रसंग—पार्वती की उत्पत्ति के कारण हिमालय की शोभा का उल्लेख।

अन्वय—प्रभामहत्या दीपः इव, त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्गः इव, संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव, तया स पूतः विभूषितः च।

शब्दार्थ—प्रभामहत्या = प्रकाश की अधिकता वाली, शिखया ज्वाला से, दीपः इव = दीपक के समान, त्रिमार्गया = लोकत्रय में प्रवाहित गङ्गा से, त्रिदिवस्य = स्वर्ग के, मार्ग-इव = मार्ग के समान, संस्कारवत्या = व्याकरणजन्यशुद्धिवाली, गिरा = वाणी से, मनीषी इव = विद्वान् के समान, तया = उस पार्वती से, सः = वह अर्थात् हिमालय, पूतः च = पवित्र हुआ, च = और, विभूषितः च = और सुशोभित हुआ।

अनुवाद—प्रकाशाधिक्यवती ज्वाला से दीप के समान, लोकत्रय में प्रवाहित होने वाली गङ्गा से स्वर्ग के मार्ग के समान तथा व्याकरणात्मक शुद्धि वाली वाणी से विद्वान् के समान, वह हिमालय, उस पार्वती से पवित्र हुआ और सुशोभित भी हुआ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भावार्थ—जैसे अधिक प्रकाश वाली ज्वाला से दीपक सुशोभित होता तीनों लोकों में वहने वाली गंगा से स्वर्ग का मार्ग पवित्र एवं शोभाय बनता है और व्याकरणात्मक शुद्धियों से विशिष्ट वाणी द्वारा विद्वान् एवं शोभित होता है, उसी प्रकार उस पार्वती से वह हिमालय पवित्र हुआ और सुशोभित भी हुआ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में मालोपमा नामक अलंकार है क्योंकि एक उपमेय-हिमालय के ज्वाला, गङ्गा और वाणी ये तीन उपमान हैं। कि इसका लक्षण है "मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते" उपजाति ना छन्द है।

समासादि—मह्यते पूज्यते इति महती, प्रभाभिः महती तया-प्रभामहत्या त्रयः मार्गाः यस्याः सा त्रिमार्गा तया-त्रिमार्गया। तृतीया द्यौः लोकः त्रिदिवः तस्य-त्रिदिवस्य। संस्कारः अस्त्यस्याः सा संस्कारवती तया-संस्कार वत्या। मनीषा अस्त्यस्य स मनीषी। विशेषण भूषितः इति विभूषितः।

संस्कृत व्याख्या—प्रभामहत्या=प्रकाशाधिकया, शिखया=ज्वाल दीपः=दीपकः इव, त्रिमार्गया=त्रिस्रोतसा गङ्गया, त्रिदिवस्य=स्वर्ग मार्गः—पन्थाः इव, संस्कारवत्या=व्याकरणशुद्धया, गिरा=वा मनीषी=विद्वान् इव, तया—पार्वत्या, सः=हिमालयः, पूतः=पवित्री विभूषितः च=समलङ्कृतः च।

संस्कृत सरलार्थ—यथा प्रदीपः प्रकाशाधिकया ज्वालया शोभितो भ यथा स्वर्गस्य मार्गः आकाशः स्वर्गङ्गया पवित्रीकृतः रमणीयश्च जातः, च विद्वान् व्याकणनियमानुगामिन्या वाण्या पुण्यात्मा आदरास्पदञ्च तथैव तया पार्वत्या स हिमालयः पवित्रीकृतः समलङ्कृतश्चासीत्।

टिप्पणी—**प्रभामहत्या**—मह पूजायामिति धातोः 'पृषन्महदित्या दिक सूत्रेण महत्पदस्य सिद्धयनन्तरं उगितश्चेति ङीपि 'महती' इति **त्रिमार्गया**—भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट हुये, ब्रह्मा के कमण्डलु से जल को, भगीरथ की प्रार्थना पर जब शिव ने अपने जटाजूट से निकाला उसका कुछ जल आकाश मार्ग से, कुछ पाताल मार्गसे और कुछ पृथिवी मार्ग बहने लगा, इस प्रकार तीन मार्ग से गंगा जल के प्रवाहित होने से गंगा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

त्रिमार्गगा कहा जाता है। त्रिदिवस्य—यहाँ त्रिशब्द त्रिभागार्थक है। दीव्यन्ति अत्र जनाः इस अर्थ में दिव् से क प्रत्यय है, त्रिदिव् का अर्थ स्वर्ग है, "स्वरव्ययं स्वर्गनाक, त्रिदिवत्रिदशालयः इत्यमरः संस्कारवत्या—संस्कारवती अर्थात् व्याकरण के नियमों से परिस्कृत की गई संस्कृतवती, यहाँ संस्कार शब्द से मतुप् तथा ङीप् प्रत्यय है। गिरा गिर्-शब्द का स्त्रीलिङ्ग तृतीया विभक्ति का रूप है इसका अर्थ है वाणी के द्वारा, "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः। मनीषी—मनस्+ईषा 'शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्—मनीषा अर्थात् बुद्धि "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' इत्यमरः। मनीषा अस्त्यस्य स मनीषी 'व्रीह्यादिभ्यश्चेति इनि प्रत्ययः, सौ चेत्युपधादीर्घः। पूतः—पवते स्म इति पूतः पूङ्पवने धातोः क्त प्रत्ययः पवित्रीकृतः इत्यर्थः। विभूषितः विशेषेण भूषितः विभूषितः, विभूष्यते स्म इति विभूषितः भूष् अलङ्कारे धातोः क्त प्रत्ययः सहसुपेति योग-विभागात् समासः।

मन्दाकिनी सैकत वेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहु र्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ।।२६।।

प्रसंग—पार्वती के क्रीडा प्रकार का वर्णन ।

अन्वय—सा बाल्ये क्रीडारसं निर्विशती इव, सखीनाम् मध्यगता, (सती) मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिम पुत्रकैः च मुहुः रेमे ।

शब्दार्थ—सा=वह पार्वती; बाल्ये=बाल्यावस्था में, क्रीडारसम्=खेलकूद के आनन्द का, निर्विशती इव=उपभोग करती हुई सी, सखीनाम् मध्यगता (सती)=सखियों के मध्यवर्तिनी होकर, मन्दाकिनी सैकत वेदिकाभिः =मन्दाकिनी गङ्गा के रेतीले (सैकत) बालुकामय प्रदेशों पर अथवा पुलिनों पर परिष्कृत भूमियों अथवा मण्डपों के निर्माणों द्वारा, कन्दुकैः=गेंदों से, च=और, कृत्रिम पुत्रकैः=गुड़ियों से, मुहुः=बार-बार, रेमे=खेला करती थी।

अनुवाद—वह पार्वती बाल्यावस्था में खेलखूद के आनन्द का उपभोग करती हुई सी, सखियों के मध्यवर्तिनी (होकर) मन्दाकिनी गंगा के बालुकामय प्रदेशों पर परिष्कृत भूमियों, वेदिकाओं अथवा मण्डपों के निर्माणों द्वारा, गेंदों से और गुड़ियों से बार-बार खेला करती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भावार्थ—पार्वती की बाल्यावस्था की विविध क्रीडाओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पार्वती बाल्यकालीन खेलकूद का आनन्दोपभोग करती हुई सी अपनी सखियों के बीच मन्दाकिनी के पुलिनों पर वेदिका या मण्डपों को बना-बना कर, और कभी गेंदों से अथवा गुड़ियों से क्रीड़ा करती थीं।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में "निर्विशतीव" के द्वारा सम्भावना की है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है, और इससे इन्द्रवज्रा नामक छन्द है।

समासादि—क्रीडायाः रसस्तम्—क्रीडारसम्, मध्यंगता—मध्यगता मन्दाकिन्याः सैकतानि तेषु वेदिकाः ताभिः—मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः कृत्रिमाश्च ते पुत्रकाः तैः—कृत्रिम पुत्रकैः।

संस्कृत व्याख्या—सा पार्वती, बाल्ये—शैशवकाले, क्रीडारसम्—क्रीडा-स्वादम्, निर्विशती-भुञ्जाना इव, सखीनाम्—वयस्यानाम् मध्यगता—मध्य-वर्तिनी (सती) मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः—वियद्गङ्गा पुलिनेषु वेदिका निर्माणैः, कन्दुकैः=गेन्दुकैः, कृत्रिमपुत्रकैः=कृत्रिमपुत्तलिकाभिः, मुहुः पुनः पुनः, रेमे=चिक्रीड।

संस्कृत सरलार्थ—जगद्रक्षणमात्र व्यापाराया अपि भगवत्याः पार्वत्याः शैशवकालिकं लोकोत्तरं रमणं वर्णयन् कविः कथयति यत् शैशवकाले बालो-चित क्रीडास्वाद मनुभवन्ती सा पार्वती स्व वयस्याभिः सह मन्दाकिनी पुलिने स्वकरनिर्मितैः सिकतासन्निवेशमयैः मंण्डपविशेषैः परिष्कृतभूमि विशेषैः कन्दुकाघातैः-कृत्रिमपुत्तभिकाभिश्च वानवरतं चिक्रीड

टिप्पणी—बाल्ये—बालस्य भाव इत्यर्थे "गुणवच नेत्यादिना ष्यञ् प्रत्यये आदिवृद्धौ च बाल्यम् तस्मिन् बाल्ये शैशवे "शिशुत्वं शैशवं बाल्यम्" इत्यमरः। क्रीडारसम्—क्रीड्विहारे धातोः गुरोश्च हलः' इति 'अ' प्रत्यये ततः टाप् क्रीडनं क्रीडा, क्रीडानां रसः स्वादः तम् क्रीडारसम्—बालोचित क्रीडा के आनन्द को, निर्विशती—निर्विशतीति निर्विशती—निर्+विश+शतृ स्त्रीत्वे 'उगितश्चेपि ङीप्, उपभोग करती हुई। 'इव' यहाँ उत्प्रेक्षावाचक है मध्यगता—मध्यंगता मध्यगता—द्वितीया तत्पुरुष समास। 'आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः। मन्दाकिनी सैकत वेदिकाभिः—मन्दाकिनी=आकाश

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

गंगा "मन्दाकिनी वियद्गङ्गा" मन्दाकिन्याः सैकतानि पुलिनानि तेषु वेदिकाः परिष्कृतभूमयः ताभिः । सैकत = नदियों के किनारे के वालुकामय प्रदेश को कहा जाता है । इसके लिये दूसरा शब्द पुलिन है । बाल्यकाल में लड़के तथा लड़कियाँ मिट्टी या वालू के घर-घरौंदे बनाकर फिर उन्हें बिगाड़कर, पुनः दूसरे ढंग से बनाकर खेलते हैं । बालभावापन्ना पार्वती भी, सखियों के साथ वालुका में इसी प्रकार के खेल खेला करती थीं । 'वेदिका' चबूतरे जैसी अथवा मण्डल जैसी रचनाओं को कहा जाता है । "वेदिः परिष्कृता भूमिः, वेदयः एव वेदिका" स्वार्थे कन् । काले महोदय ने कल्पना की है कि देवी पार्वती ऐसी वेदियाँ बनाकर बाल्यकाल से ही अपनी धार्मिक भावनायें प्रकट कर रही थीं । कालिदास ने अपनी रचनाओं में, मन्दाकिनी पुलिन पर इस प्रकार के खेलों का अनेकत्र उल्लेख किया है । मेघदूत में — "अन्वेष्टव्यैः कनक सिकता मुष्टि निक्षेपगूढैः संक्रीडन्ते मणिभिरमर प्रार्थिता यत्र कन्याः । विक्रमोर्वशीय नाटक में—"मन्दाकिन्याः पुलिनेषु सिकतापर्वत केलिभिः क्रीडन्ती·······।
कन्दुकैः — गेंदों से 'गेन्दुकः कन्दुकः इत्यमरः । कृत्रिमपुत्रकैः — क्रियया निर्वृत्ताः कृत्रिमाः कृ धातोः 'ड्वितः क्त्रिः' इति क्त्रि प्रत्यये क्त्रेर्मप् नित्यम् इति मप्, पुत्रा एव पुत्रकाः कन् प्रत्ययः । कृत्रिमाश्च ते पुत्रकाः तैः । पाञ्चालिका पुत्रिका स्याद् वस्त्रदन्तादिभिः कृता" गुड़ियों का खेल विशेष रूप से लड़कियों को प्रिय होता है वे इन्हें अपनी इच्छा से बनातीं और बच्चों की तरह इनसे खेलती हैं । इन्हें पुत्तलिका पाञ्चालिका शालभञ्जिका पुत्रिका आदि भी कहा जाता है ।

तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां महौषधिं नक्त मिवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशा मुपदेशकाले, प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥३०॥

प्रसंग—पार्वती के विद्याग्रहण प्रकार का वर्णन ।

अन्वय—स्थिरोपदेशाम् ताम् उपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः शरदि-गङ्गाम् हंसमालाः इव, नक्तम् महौधिम् आत्मभासः इव प्रपेदिरे ।

शब्दार्थ—स्थिरोपदेशाम् = स्थायी विद्याभ्यास वाली, अचलोपदेशा मेधाविनी ताम् = उस पार्वती को, उपदेशकाले = विद्याभ्यास अथवा शिक्षण के समय, प्राक्तनजन्मविद्याः = पूर्व (प्राक्तन) जन्म की विद्यायें, शरदि = शरद् ऋतु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

के समय, गङ्गाम् = गंगा को, हंसमालाः इव = हंसों की पङ्क्तियों के समान, नक्तम् = रात्रि में, महौषधिम् = सञ्जीविनी आदि, औषधियों को, आत्मभासः इव = स्वप्रकाश के समान, प्रपेदिरे = प्राप्त हुई।

अनुवाद—अचलोपदेशा मेधाविनी उस पार्वती को विद्याभ्यास के समय पूर्वजन्म की विद्यायें (स्वत एव उसी प्रकार) प्राप्त हुई जैसे शरत्काल में गंगा को हंस पंक्तियाँ और रात में सञ्जीविनी आदि औषधियों को स्वप्रकाश प्राप्त होता है।

भावार्थ—पार्वती के विद्याग्रहण प्रकार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पार्वती स्थिरोपदेशा थीं अर्थात् जो कुछ उन्होंने एक बार या एक जन्म में पढ़ लिया या सीख लिया है, उसे वे कभी नहीं भूलती थीं अतएव शिक्षा काल में उन्हें अपने पूर्व जन्म की सभी विद्यायें स्वतः एव उसी प्रकार प्राप्त हो गयी थीं जैसे शरत्काल में गंगा नदी को हंस मण्डल तथा रात में सञ्जीविनी आदि पर्वतीय औषधियों को अपना प्रकाश स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार है, और उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—स्थिरः उपदेशः यस्याः सा ताम् — स्थिरोपदेशाम्। उपदेशस्य कालस्तस्मिन् — उपदेशकाले। प्राक्तनञ्च तज्जन्म प्राक्तनजन्म तस्य विद्याः प्राक्तनजन्मविद्याः। हंसानां मालाः हंसमालाः। महती चासौ औषधिः महौषधिः ताम् महौषधिम्। आत्मनः भासः — आत्मभासः।

संस्कृत व्याख्या—स्थिरोपदेशाम् = अमोघोपदेशाम्, ताम् = पार्वतीम्, उपदेशकाले — विद्याग्रहण समये, प्राक्तनजन्मविद्याः = पूर्वजन्माधीतविद्याः, शरदि = शरत्काले, गङ्गाम् = भागीरथीम्, हंसमालाः = हंस पङ्क्तयः, इव, नक्तम् = रात्रौ, महौषधिम्, सञ्जीविन्यादिकाम्, आत्मभासः = स्वकीयदीप्तयः इव, प्रपेदिरे = प्राप्तवत्यः।

संस्कृत सरलार्थ—यथा शरत्समये हंसपङ्क्तयः भागीरथीं प्राप्नुवन्ति, यथा च दिवसे दिनकर किरणाभिभूताः स्वकीया एव प्रकाशाः निशि सूर्यरश्मिविरहभावे सञ्जीविन्यादिकां महौषधिं स्वत एवोपयान्ति तथैव आचार्योपदेश

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बाल्यभावादप्रकाशमाना वासनारूपेणैव विद्यमानाः पूर्वजन्माधीताः सर्वा एव विद्याः पार्वतीं प्रापुः ।

टिप्पणी — स्थिरोपदेशाम् — स्थिरः स्थेयः उपदेशः प्राग्भवीनः यस्यास्ताम् = उप + दिश् धातोः 'हलश्चेति' घञ् प्रत्यये पुगन्तेति गुणः । **उपदेशकाले** — इस जन्म में आचार्यों द्वारा शिक्षण के समय । **प्राक्तनजन्मविद्याः** — पूर्व जन्म में अर्थात् दक्षपुत्री सती के रूप में प्रथम जन्म में अधीत एवं अभ्यस्त सभी विद्यायें, प्राग्भवं प्राक्तनम् प्राक्तनञ्च तज्जन्म तस्य याः विद्याः — प्राक्तनजन्म विद्याः, विदन्ति आभिस्ताः विद्याः, विद्ज्ञाने धातोः क्यप् टाप् । पार्वती ने अपने पूर्व जन्म में ही जिन अष्टादश विद्याओं को पढ़ लिया था वे सभी विद्यायें, यद्यपि इस समय बाल्यभाव के कारण ये अप्रकाशित थीं किन्तु वासना रूप से उनमें विद्यमान थीं, वे सभी विद्यायें उन्हें इस समय उपदेशकाल में उसी प्रकार स्वतः प्राप्त हो गयीं जैसे शरत्काल में हंस पंक्तियाँ गंगा को प्राप्त होती हैं । कवि ने 'स्थिरोपदेशाम्' विशेषण से यही अभिप्राय प्रकट किया है कि उनमें प्रदत्त उपदेश सदा स्थिर रहने वाले थे, वे कभी विस्मृत नहीं हो सकते थे । **महौषधिम्** — सञ्जीविनी आदि पर्वतीय औषधियाँ रात में अपने अपने आप प्रकाशित होती हैं, दिन में सूर्य से अभिभूत होने के कारण इनका प्रकाश दब जाता है पर रात में ये स्वतः प्रकाशित हो जाती हैं, कहा जाता है कि सूर्य अपना प्रकाश इनको देकर अस्त होता है "औषधिषु तेजः स्थापयित्वा रविरस्तं याति" महती चासौ औषधिः महौषधिः यहाँ पूर्वपद को पुंवद्भाव होकर तथा आत्व होकर महौषधि बनता है । **भासः** = दीप्तयः द्युतयो वा । "कृतकःस्वाभाविकश्च विनयः" इस कौटिल्य अर्थशास्त्र के कथनानुसार कृतक और स्वाभाविक दो तरह का विद्योपदेश होता है, कवि ने प्रथम प्रकार के लिए 'शरदि गङ्गां हंसमाला इव' उपमान दिया है, दूसरे अर्थात् स्वाभाविक विनय के लिए नक्तमात्मभासः महौषधिमिव कहा है ।

असम्भृतं मण्डन मङ्गयष्टे रनासवाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्त मस्त्रं बाल्यात् परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥३१॥

प्रसंग—यौवनावस्था प्राप्ति का निर्देश ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अन्वय—अथ सा, अङ्गयष्टेः असम्भृतम् मण्डनम्, अनासवाख्यम् मदस्य करणम्, कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तम्, अस्त्रम्, वाल्यात् परम् वयः प्रपेदे।

शब्दार्थ—अथ = इसके वाद, सा = उसने अर्थात् पार्वती ने, अङ्गयष्टेः = प्रशस्त अंगों के, असम्भृतम् = बिना प्रयत्न सिद्ध अर्थात् नैसर्गिक अथवा स्वाभाविक, मण्डनम् = आभूषणभूत, अनासवाख्यम् = मद्य नाम से रहित अर्थात् बिना मद्य के ही मदस्य, करणम् = मद के साधन भूत, कामस्य = कामदेव के, पुष्पव्यतिरिक्तम् = पुष्पों से अतिरिक्त, अस्त्रम् = अस्त्रभूत, वाल्यात् = शैशव से परम् = अनन्तर होने वाल, वयः = अवस्था अर्थात् यौवन को, प्रपेदे = प्राप्त किया।

अनुवाद—इसके वाद अर्थात् शैशव काल के व्यतीत होने के वाद, पार्वती ने, प्रशस्त शरीराङ्गों के अयत्नसिद्ध अर्थात् स्वाभाविक आभूषणरूप, मद्य नाम से रहित मद के साधनभूत, (एवम्) कामदेव के पुष्पातिरिक्त अस्त्ररूप, शैशव से अनन्तरकालीन अवस्था अर्थात् यौवन को प्राप्त किया।

भावार्थ—शैशव काल व्यतीत होने पर पार्वती ने धीरे-धीरे ऐसे यौवन को प्राप्त किया जो कि उनके प्रशस्त शरीरावयवों का स्वाभाविक आभूषण था, विना ही मद्य नाम के मद का साधन रूप एवं कामदेव के पुष्प वाणों के अतिरिक्त अस्त्र रूप था, तात्पर्य यह कि उनका यह यौवन स्वाभाविक था, इसमें किसी प्रकार कृत्रिमता नहीं थी, उनके सुन्दर शरीर के अवयवों का विकास अयत्न सिद्ध था जो कि उनके शरीर को सुशोभित कर रहा था, वह आकर्षक एवं मदोत्पादक था फिर भी उसमें मद्य नाम की कोई वस्तु न थी, मद्यपान से उसमें मद उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया गया था। यद्यपि वह कामवाण के समान चित्तोन्मादकारी था फिर भी वह कामदेव का प्रसिद्ध पुष्प वाण न था अपि तु वह पुष्पातिरिक्त अस्त्र था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक के द्वितीय चरण में आसवरूप कारण के अभाव में भी उसके मदरूप कार्य का कथन किया गया है, अतः **विभावना** अलंकार है, प्रथम और तृतीय चरणों में आरोप्यमाणमण्डन और कामास्त्र का प्रकृत में उपयोग किया गया है अतः **परिणाम** अलंकार है, "विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्ति र्यदुच्यते" विषयात्मतयारोपे प्रकृतार्थोपयोगिनी परिणामो भवेत्

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आचार्य वामन के मत में यहाँ **विशेषोक्ति** अलंकार है' एक टीकाकर के अनुसार मण्डनत्वादि का रूपण होने से **रूपक** अलंकार है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—अङ्गं यष्टिरिव इत्यङ्गयष्टिः तस्याः अङ्गयष्टेः, न सम्भृतम् असम्भृतम् तत्। आसवश्चासौआख्या आसवाख्या अविद्यमाना आसवाख्या यस्य तत्—अनासवाख्यम्। पुष्पेभ्यः व्यतिरिक्तं पुष्पव्यतिरिक्तम् तत्।

संस्कृत व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, सा = पार्वती, अङ्गयष्टेः = शरीर-लतायाः, प्रशस्त शरीरावयवाना मित्यर्थः असम्भृतम् = अयत्न सिद्धम् स्वाभाविक मित्यर्थः, मण्डनम् = अलंङ्करणम्, अनासवाख्यम् = मद्यसंज्ञाविरहितम्ः मदस्य = अन्तःकरणविभ्रमस्य, करणम् = साधनम्, कामस्य = स्मरस्य, पुष्पव्यतिरिक्तम् = कुसुमसमधिकम्, अस्त्रम् = आयुधम्, वाल्यात् = शैशवात्, परम = उत्तरकालिकम्, अनन्तरभावि' इत्यर्थः, वयः = यौवनावस्थाम्, प्रपेदे = प्राप्तवती।

संस्कृत सरलार्थ—अथ शैशवानन्तरं देव्याः शरीरे यौवनागमनं वर्णयन् कविः कथयति, यत् काल क्रमेणातिक्रान्त शैशवा सा पार्वती अनन्तरभावि तादृशं यौवनमधिगता, यदप्रयाससिद्धं स्वाभाविकं तच्छरीरावयवानां प्रशस्तानां नयनानन्ददम् अलङ्कारसाधनम्, मद्यसंज्ञाविरहितमप्यन्तः करणविभ्रमोत्पादकम् एवञ्च मदनस्य कुसुमादतिरिक्त मायुधञ्चासीत्।

टिप्पणी—**अङ्गयष्टेः**—अङ्गं यष्टि रिवेत्यत्रोपमितकर्मधारयः अङ्गयष्टेरित्यस्य प्रशस्ताङ्गस्येत्यर्थः। सुन्दरी युवतियों की छरहरी एवं पतलीं देह की सुन्दरता वताने के लिए देह की उपमा प्रायः यष्टि (छड़ी या सीधी पतली लकड़ी) लता आदि से दी जाती है क्योंकि" हस्तयष्टि लतादयः प्रशंसा वचनाः" कहा गया है, प्रकृत में इसका अर्थ है—प्रशस्त शरीरावयव। **असम्भृतम्**—सम्भृत = धृत अर्थात् जिसे स्वयं धारण किया गया हो, अतः असम्भृत का अर्थ है जो स्वयं धारण न किया गया हो अर्थात् अयत्नसिद्ध या स्वाभाविक, न + सम्। भृ = क्त **मण्डनम्** अलङ्करण या प्रसाधन। **अनासवाख्यम्**—आसव = मदिरा या मद्य, सामान्यतः मद्यपान करने से मतवालापन छा जाता है पर देवी पार्वती की यौवनावस्था ऐसी थी जो कि आसव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

का नाम बिना लिये ही (आसव पीने के बात तो दूर रही) मतवालेपन का कारण बनी हुई थी, **मदस्य करणम्** मद = मतवालापन-का साधन या कारण "सम्मोहानन्द सम्भेदो मदिरादिकृतो मदः" करणमित्यत्र कृधातोः करणे ल्युट् कामस्य मदनस्य "कामः पञ्चशरः स्मरः" **पुष्पव्यतिरिक्तम्** विशेषेण अति रिक्तम् व्यतिरिक्तम् 'सहसुपेति' समासः-वि—अति + रिच् धातु + क्त — "अति रिक्तः समधिकः इत्यमरः" पुष्पेभ्यः व्यक्तिरिक्तम् तत्, कामदेव के पञ्चशर पुष्पों से बने माने गये हैं, वह पुष्पधन्वा भी कहलाता है, परन्तु देवी का यौवन इन पञ्च पुष्पशरों के अतिरिक्त था अर्थात् उनसे कुछ अधिक था, कामदेव के पञ्च पुष्पशर इन पुष्पों के होते है" अरविन्दमशोकञ्चचूतञ्च नवमल्लिका नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चवाणस्य सायकाः" जब कि युवावस्था का ऐसा प्रभाव सामान्य जनों में देखा जाता है तव दैवी आकृतियों के विषय में तो कहना ही क्या है। **वाल्यात्**—वालस्य भाव इत्यर्थेष्यञ् तस्मात्। परम= शैशव काल से बाद की अर्थात् उत्तरवर्तिनी या अनन्तरभाविनी अवस्था प्रपेदे प्र = पद + लिट्, प्राप्त की। यौवनागम के समय युवतियों के स्तन जघनादि अवयवों में स्वतः विकास होता है, अलंकरण प्रसाधन मद्यपानादि कृत्रिम साधन उसे और भी आकर्षक बना देते हैं, पर देवी पार्वती में यह सब स्वाभाविक ही था, कृत्रिम नहीं।

उन्मीलितं तूलिक येव चित्रं सूर्यांशुभि र्भिन्नमिवार विन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपु र्विभक्तं नव यौवनेन ॥३२॥

प्रसंग—शरीर शोभा का वर्णन।

अन्वय—नव यौवनेन विभक्तम् तस्याः वपुः तूलिकया उन्मीलितं चित्रम् इव सूर्यांशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्रशोभि वभूव।

शब्दार्थ—नव यौवनेन = नूतन तारुण्य से, विभक्तम् = अभिव्यञ्जित अर्थात् प्रस्फुटित या व्यक्तीकृत स्तनजघनादि शरीरावयव वाला, तस्याः वपुः = उस देवी पार्वती का शरीर, तूलिकया = कूँची से, उन्मीलितम् = समुल्लसित अङ्कित अथवा रञ्जन द्रव्य से उद्भासित किये गये, चित्रम् = आलेख्य, इव = के समान, सूर्यांशुभिः = सूर्य किरणों से, भिन्नम् = विकसित किये गये, अरविन्दम् इव = कमल के समान, चतुरस्रशोभि = सव प्रकार से सर्वावयव सुन्दर, वभूव = हो गया।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अनुवाद—नवीन यौवन से प्रस्फुटित स्तनजघनादि शरीरावयव संस्थान वाला उसका शरीर, (चित्रकार की रंग भरने की') कूर्चिका द्वारा (रञ्जन द्रव्य से) उद्भासित किये गये चित्र के समान (तथा) सूर्य किरणों से विकसित किये गये कमल के समान, सब प्रकार से सर्वावयव सुन्दर हो गया ।

भावार्थ—देवी पार्वती के यौवनागम काल की शरीर शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि नवीन यौवन के द्वारा उनका शरीर उसी प्रकार सर्वविध सर्वावयव सुन्दर बना दिया था जैसे चित्रकार अपने रंग भरने की कूँची के द्वारा रञ्जन द्रव्य से उद्भासित कर चित्र को सर्वावयव सुन्दर बना देता है और सूर्य अपनी किरणों के द्वारा विकसित कर कमल को सुन्दर बना देता है। तात्पर्य यह कि नव यौवनागम के कारण पार्वती की देह ऊपर-नीचे आगे-पीछे सर्वत्र शोभा मण्डित हो गई थी ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उनको चित्रित कर दिया गया हो अथवा सूर्य किरणों से कमल पूर्णरूपेण खिल गया हो ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **मालोपमा** अलंकार है क्योंकि यहाँ देवी के सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर की तुलना कूँची से अंकित चित्र से तथा सूर्य किरणों से विकसित कमल से की गई है चतुरस्रशोभित्व ही यहाँ साधारण धर्म है। उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—यूनो भावः यौवनम्, नवं च तद् यौवनम् तेन, नवयौवनेन, सूर्यस्य अंशवः तैः सूर्यांशुभिः, चतुरस्रशोभि = चतस्रः अस्रयः यस्य तत् चतुरस्रम् चतुरस्रं यथा स्यात्तथा शोभते तच्छीलं चतुरस्रशोभि ।

संस्कृत व्याख्या—नवयौवनेन = अभिनवतारुण्येन, विभक्तम् = अभिव्यञ्जितम्, तस्याः = देव्याः पार्वत्याः, वपुः = शरीरम्, तूलिकया = आलेख्यकूर्चिकया, उन्मीलितम् = उद्भासितम्, चित्रम् = आलेख्यम्, इव, सूर्यांशुभिः = सूर्य किरणैः, भिन्नम् = विकसितम्, अरविन्दम् = कमलम् इव, चतुरस्रशोभि = पूर्णतया सर्वावयव सुन्दरम्, बभूव = जातम् ।

संस्कृत सरलार्थ—प्राप्त तारुण्याया देव्याः पार्वत्याः शरीरशोभां वर्णयन् कविः कथयति यत् प्रत्यग्र-तारुण्येनाभि व्यक्तीकृतस्तन जघनाद्यवयव-संस्थानं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

देव्याः पार्वत्याः शरीरं चित्रतूलिकया रञ्जन-द्रव्येणोद्भासित मालेख्यमि रवि किरण विकासितं कमल मिव च पूर्णतया सर्वाङ्गसुन्दरं सञ्जातम् ।

टिप्पणी—नवयौवनेन—नवीन तरुणाई से अर्थात् चढ़ती हुई युवावस्था इस अवस्था में युवतियों के स्तनजघनादि अवयव संस्थान समुचित रूप विकसित होकर आकर्षक बन जाते हैं। **विभक्तम्** नवयौवन के द्वारा जिस स्तनादि अवयव संस्थान अभिव्यक्त कर दिये गये थे। **चित्रम्** 'आलेख्याश्च योश्चित्रम्" **सूर्यांशुभिः** सूर्य शब्द की दो प्रकार की व्युत्पत्ति देखी जाती सरति आकाशे इति सूर्यः सृ गतौ से कर्तरि क्यप् और निपातनात् उत्व हुआ अथवा षू प्रेरणे से सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति इस अर्थ में क्यप् प्रत्यय और रुट् का आगम होता है। अंशु=किरण। **चतुरस्रशोभि** चतुरस्र शब्द विल लक्षणा से समग्र अर्थ का वाचक है, चतुरस्र शोभि शब्द णिनि प्रत्ययान्त है और यह 'वयः' का विशेषण होने से नपुसंक लिङ में प्रयुक्त है, इसका अर्थ है पूर्णतया शोभाशाली।

अभ्युन्नताङ्गुष्ठ नख प्रभाभि र्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलार विन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥३३॥

प्रसंग—यहाँ से लेकर सप्तदश श्लोकों द्वारा पार्वती के विभिन्न शरीराव- यवों का वर्णन किया गया है।" देवतानां स्वरूपं पादाङ्गुष्ठप्रभृति वर्ण्यते, मानुषाणां केशादारम्येति" अर्थात् देवताओं के स्वरूप का वर्णन पादाङ्- गुष्ठ से लेकर क्रमश ऊपर केशों तक तथा मानवों का इसके विपरीत केशों से लेकर नीचे तक का वर्णन किया जाता है। इस नियम के अनुसार कवि प्रस्तुत श्लोक द्वारा देवी पार्वती के पादाङ्गुष्ठ नखों का वर्णन करता है।

अन्वय—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् उदिगरन्तौ इव तच्चरणौ पृथिव्याम् अव्यवस्थाम् स्थलारविन्दश्रियम् आजह्रतुः ।

शब्दार्थ—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः=ऊपर की ओर उठे हुए (अभ्युन्नत) (पैरों के) अंगूठों के नखों (अङ्गुष्ठ नख) की कान्तियों द्वारा, निक्षेपणात्= निर्भरतापूर्वक रखने के कारण, रागम्=लालिमा को, उद्गिरन्तौ इव= मानो बाहर निकालते हुए से, तच्चरणौ=उस देवी पार्वती के चरण, पृथिव्याम् =पृथ्वी पर, अव्यवस्थाम्=गतिशील अथवा अस्थिर सञ्चारिणी,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्थलारविन्दश्रियम् = स्थल कमल की शोभा को, आजह्रतुः = प्राप्त कर रहे थे अथवा अनुकृत कर रहे थे।

अनुवाद—ऊपर की ओर उठे हुए (पैरों के) अंगूठों के नखों की कान्तियों के द्वारा, निर्भरता पूर्वक रखने के कारण, लालिमा को मानो वाहर निकालते हुए से उसके दोनों चरण, पृथिवी पर, अस्थिर सञ्चारिणी, स्थल कमल की शोभा को धारण कर रहे थे।

भावार्थ—तारुण्य प्राप्त पार्वती के शरीरावयवों की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पार्वती के पैरों के अंगूठे ऊपर की ओर उठे हुए थे अर्थात् उन्नतोदर थे, इन अंगूठों के नखों से जो लाल-लाल कान्तियाँ निकल रही थीं उनके द्वारा, जव पार्वती निर्भरतापूर्वक पैरों को रखती थीं, तव ऐसा प्रतीत होता था कि मानो लालिमा को वाहर निकालते हुए से उनके चरण नखों की कान्तियों के पड़ने के कारण, पृथिवी पर चलती-फिरती, स्थल कमल की शोभा को धारण कर रहे थे। स्थल कमल चल नहीं सकता अतएव कवि ने अव्यवस्थाम् विशेषण द्वारा उसकी शोभा को सञ्चारिणी वतलाया है। तात्पर्य यह कि उनके अंगूठों से जो लाल कान्ति निकल रही थी उससे मानो उनके चरण स्थल कमल की अस्थिर शोभा धारण कर रहे थे।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **निदर्शना** अलंकार है क्योंकि यहाँ उपमान भूत अरविन्दश्री का उपमेमय भूत चरणों में आना असम्भव है अतः यहाँ "अरविन्द शोभा के समान शोभा" इस प्रकार प्रतिबिम्बीकरण का आक्षेप किया गया है अतः निदर्शानलंकार है जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने इसका लक्षण वताया है—

"सम्भवन्वस्तु सम्बन्धोऽसम्भवन्वापि कुत्रचित्।
यत्र विम्बानुविम्वत्वं बोधयेत् सा निदर्शना॥"

यहाँ यह निदर्शना सम्वन्ध में असम्वन्ध लक्षण अतिशयोक्ति से अनुप्राणित है और यहाँ उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—अङ्गुष्ठयोः नखौ अङ्गुष्ठनखौ, अभ्युन्नतौ, च तौ अंगुष्ठ नखौ अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखौ तयोः प्रभाः ताभिः—अभ्युन्नताङ्गुष्ठ नखप्रभाभिः। तस्याः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

चरणौ—तच्चरणौ । अविद्यमाना व्यवस्था यस्याः सा ताम्—अव्यवस्थाम् स्थलस्य अरविन्दम् स्थलारविन्दम् तस्य श्रीः ताम्—स्थलारविन्दश्रियम् ।

संस्कृत व्याख्या—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः = अभ्युदग्राङ्गुष्ठनख कान्तिभिः, निक्षेपणात् = निर्भरन्यासात्, रागम् = अन्तर्गतं लौहित्यम्, उद्गि रन्तौ = वहिर्निस्सारयन्तौ इव (स्थितौ) तच्चरणौ = पार्वती पादौ, पृथिव्या = भूमौ, अव्यवस्थाम् = व्यवस्था-विरहिताम् अस्थिराम् सञ्चारिणीं मिल स्थलार विन्दश्रियम् = स्थल कमल शोभाम्, आजह्रतुः = अनुचक्रतुः ।

संस्कृत सरलार्थ—स्वभावारुणैः स्वकीयैरभ्युदग्राङ्गुष्ठनखरमयूखैः भू निर्भरपादविन्यासाद्धेतुना स्वान्तर्गतं लौहित्य मुद्वमन्ताविव स्थितौ पार्वत्य श्चरणौ निरन्तरं गतिशीलां स्थल कमल शोभामनुचक्रतुः ।

टिप्पणी—अभ्युन्नतेति = ऊपर की ओर उठे हुये, अभ्युन्नत, अभ्युद उच्छ्रित, उच्च प्रांशु आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं । अङ्गुष्ठ = अँगूठे, य पैरों के अँगूठों से तात्पर्य हैं, नखप्रभा = नखरकान्ति ।" पुनर्भवः करर नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् इत्यमरः । पैरों के अँगूठों की उन्नतोदरा सौन्दर्याभिवर्धक मानी जाती है । निक्षेपणात्—नि + क्षिप् प्रेरणे ल्यु निर्भरतापूर्वक रखने अर्थात् पादविन्यास करने से, रागम् = स्वान्त लालिमा, पृथिवी पर पैर रखने से अँगूठों की भीतरी लालिमा दबने से बाह निकलने सी लगती थी । रञ्ज रागे घञ् रागः । उद्गरन्तौ = उदुपसर्गपूर्व गृ निगरणे धातु से शतृ प्रत्यय । अव्यवस्थाम्—जिसकी व्यवस्था अर्थात् एक स्थानस्थिति न हो जो गतिशील हो । स्थल कमल गतिशील नहीं होता । य वर्णन उस समय का है जब पार्वतीजी चल रही थीं और उनके अँगुष्ठ नखों लालिमा निकल रही थी, स्थल कमल की लालिमा स्थिर थी, अतः उसे इस विशेषण द्वारा गतिशील बताया गया है जिससे कि पार्वती के चलते हु चरणों द्वारा उसका अनुकरण किया जा सके, गतिशील पदार्थ से स्थि पदार्थ का अनुकरण नहीं हो सकता । स्थल विशेषण से नियतलौहित्य सूचित किया गया है । "यस्या रक्ततलौ पादावुन्नताग्रौ तलस्पृशौ निगूढगुल्फ निहितौ सा स्यान्नृपतिसम्मता" ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी, गतेषु लीलाञ्चित विक्रमेषु ।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सु भिर्नूपुर सिञ्जितानि ॥३४॥

प्रसङ्ग—उपर्युक्त नियमानुसार पादांगुष्ठों का वर्णन कर प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि भगवती के चरणगत सविलासगमन का वर्णन कर रहा है—

अन्वय—प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसिञ्जितानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नताङ्गी सा लीलाञ्चितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव ।

शब्दार्थ—प्रत्युपदेशलुब्धैः=उपदेश के बदले उपदेश के लोलुप, नूपुर-सिञ्जितानि=नूपुरों की मधुरध्वनियों को, (सिञ्जित=पादाभूषणों की रुनझुन, झनक या मधुरध्वनि) आदित्सुभिः=ग्रहण करने के इच्छुक, राजहंसैः =राजहंसों के द्वारा, सन्नताङ्गी=किञ्चित् झुके हुए अङ्गों वाली, सा=वह पार्वती, लीलाञ्चितविक्रमेषु=विलासपूर्वक शोभित पद-विन्यासों वाली, गतेषु =गतियों के विषय में, व्यनीयत इव=मानो शिक्षित की गई थी ।

अनुवाद—उपदेश के बदले उपदेश के लिए लालायित (अतएव) नूपुरों की मधुर ध्वनियों को ग्रहण करने के इच्छुक राजहंसों द्वारा, कुछ झुके हुए अंगों वाली वह पार्वती, सविलास सुन्दर पाद-विन्यासों वाले गमनों के विषय में मानो शिक्षित की गयी थी ।

भावार्थ—देवी पार्वती के चरणगत सविलासगमन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि राजहंस देवी पार्वती के चरणाभूषणों अर्थात् नूपुरों की मधुर रुनझुन ध्वनि को सुनकर, वैसी ही मधुर ध्वनि को मानो उनसे सीखने के लिए आकृष्ट होकर उनके पास आ जाते थे जिससे कि वे देवी से मधुर ध्वनि विद्या का उपदेश ग्रहण कर सकें, (वस्तुतः सब कुछ सुन्दर होते हुए भी हंसों की बोली कर्कश ही होती है, उनकी बोली, नूपुर ध्वनि जैसी मीठी नहीं होती अतएव वे इस विद्या को देवी से सीखना चाहते थे ।)

परन्तु विद्या पढ़ाने का शुल्क देने की सामर्थ्य उनमें न थीं, अतः उन्होंने विद्या के बदले अपनी गमन-विद्या को उसें बदले में देने के लिए सोचा जैसा कि कहा गया है" गुरु शुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा । अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपलभ्यते ।" अर्थात् विद्या प्राप्ति के तीन ही उपाय हैं—(१) गुरुसेवा (२) बहुत अधिक धन, (३) विद्या के बदले विद्या देना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हंसों के पास यह तीसरा ही उपाय था, अतः वे मधुर ध्वनि विद्या के बदले देवी को सविलासगमन विद्या देना चाहते थे। हंसों का गमन सबसे अधिक सुन्दर होता है, अतएव हंसगामिनी, हंसगति आदि शब्दों का प्रचलन है।

अतएव कवि आगे कहता है कि राजहंसों के द्वारा मानो देवी पार्वती को विलासालंकृत पादविन्यासपूर्ण गमनों के विषय में शिक्षित किया जा रहा था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **उत्प्रेक्षालंकार** है, क्योंकि यहाँ राजहंसों द्वारा देवी पार्वती को सविलासगमन सिखाने की उत्प्रेक्षा की गयी है—

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्" साथ ही देवी पार्वती से मधुर स्वर सीखने की इच्छा से ही राजहंसों ने उन्हें सविलासगमन सिखाया था अतः परिवृत्त भी है—

"परिवृत्ति विनिमयः समन्यूनाधिकै र्भवेत्"

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—उपदेशस्य प्रतिदानम् = प्रत्युपदेशः (आदि तत्पुरुषः) प्रत्युपदेशे लुब्धास्तैः = प्रत्युपदेशलुब्धैः। नूपुरयोः सिञ्जितानि नूपुरसिञ्जितानि तानि नूपुरसिञ्जितानि। आदातुम् इच्छवः = आदित्सवः, तैः = आदित्सुभिः। हंसानां राजानः = राजहंसाः तैः = राजहंसैः। सन्नतानि अङ्गानि यस्याः सा = सन्नताङ्गी। लीलाभिः अञ्चिताः विक्रमाः पादन्यासाः येषु तानि = लीलाञ्चित-विक्रमाणि तेषु = लीलाञ्चितविक्रमेषु।

संस्कृत व्याख्या—प्रत्युपदेशलुब्धैः = उपदेश प्रतिदान लोलुपैः, नूपुरसिञ्जि-तानि = मञ्जीरक्वणितानि, आदित्सुभिः आदातुमिच्छुभिः = राजहंसैः = हंस-विशेषैः, सन्नताङ्गी = किञ्चिन्नमिताङ्गी (स्तनभारादिति भावः) सा = पार्वती लीलाञ्चित- विक्रमेषु = सविलासालंकृतपादायासेषु, गतेषु = गमनेषु विषयेषु व्यनीयत = विनीता किमु।

संस्कृत सरलार्थ—उपदेशप्रतिदानाकृष्टाः मञ्जीरमञ्जुक्वणितोपदेश-मिच्छन्तः राजहंसाः स्तनकलशभारात् सम्यङ् नमितस्कन्धां देवीं पार्वतीं विलासालङ्कृतपादविन्यासेषु गमनेष्वशिक्षयन्निव।

टिप्पणी—**प्रत्युपदेशलुब्धैः**—उपदेश के बदले जो उपदेश दिया जाता है वह प्रत्युपदेश कहा जाता है—उप + दिश + घञ् + उपदेशः, लुभ + क्त =

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नुध्यः । नूपुरसिञ्जितानि—नूपुर (पैरों के आभूषण, जिनसे चलने में रुनझुन जैसी मधुर ध्वनि निकलती है) सिञ्जत—आभूषणों की ध्वनि को कहा गया है—"मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् । भूषणानान्तु सिञ्जितम् ।" आदित्सुभिः—आ पूर्वक सन्नत दा धातु का तृतीया बहुवचन । राजहंसैः—हंसानां राजानः = यहाँ समासोत्तर टच् प्रत्यय तथा 'राजदन्तादिषु परम्' सूत्र से राज शब्द का पूर्व प्रयोग होकर राजहंसाः होगा । राजहंस उन्हें कहा जाता है, जिनके चञ्चुचरण लाल होते हैं—

"राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणै र्लोहिताः सिताः ।"

सन्नताङ्गी—स्तनभार से कुछ झुका हुआ होना, युवतियों के सौन्दर्य का द्योतक माना जाता है । यहाँ 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्—से ङीप् प्रत्यय है । सम्यङ् नतमङ्गं यस्याः सा । लीलेत्यादि—अञ्चित' अञ्चु गतिपूजनयोः धातु से क्त, अञ्चेः पूजायामिति इडागमः । विक्रमाः = पादन्यासाः, "लीला-विलासक्रिययोः" इत्यमरः । गतेषु = गम्लृ + भावे क्त । अत्र वैषयिक सप्तमी । व्यनीयंत = वि णीञ् प्रापणे धातोः कर्मणि लङ् वि + अनीयत = व्यनीयत—वि + नी का अर्थ—सिखाना, या शिक्षित करना होता है ।' सार्वधातुके यक् से यक् प्रत्यय है ।

वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे, जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये ।
शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातु र्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ॥३५॥

प्रसंग—पादांगुष्ठ और चरणगत गमन के बाद प्रस्तुत श्लोक में कवि जङ्घाद्वय का वर्णन कर रहा है ।

अन्वय—वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे शुभे तदीये जङ्घे सृष्टवतः विधातुः शेषाङ्ग-निर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्नः आस इव ।

शब्दार्थ—वृत्तानुपूर्वे—वृत्त = वर्तुल गोलाकार, अनुपूर्वे = क्रमबद्ध अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर गोपुच्छाकार = क्रम-क्रम से पतला होते जाना अनतिह्रस्व न च अतिदीर्घे = और न अधिक लम्बे, शुभे = सुन्दर, तदीये = उनके, अर्थात् देवी पार्वती के, जङ्घे = जङ्घाओं को, सृष्टवतः = रचने वाले, विधातुः = ब्रह्मा का, शेषाङ्ग—निर्माणविधौ = शेष अर्थात् जङ्घाओं से भिन्न, अंगों के निर्माण कार्य के लिये, उत्पाद्ये = उत्पन्न करने योग्य, अर्थात् अपेक्षित लावण्ये = सौन्दर्य के विषय में, यत्नः आस इव = मानो यत्न करना पड़ा था ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अनुवाद—गोल एवं क्रमबद्ध अर्थात् अनतिह्रस्व, गोपुच्छाकार और अधिक लम्बी, सुन्दर उनकी जङ्घाओं को रचने वाले ब्रह्मा को, जङ्घातिरिक्त शरीराङ्गों के निर्माण कार्य के लिये, अपेक्षित सौन्दर्य के विषय में, मानो करना ही पड़ा था।

भावार्थ—कवि कहता है कि देवी पार्वती के जङ्घाद्वय को, जो कि गोल आकार के तथा क्रमबद्ध ऊपर से नीचे की ओर क्रम-क्रम से पतले गोपुच्छाकार थे, तथा न अधिक लम्बे और न अधिक छोटे थे एवं देखने में अधिक आकर्षक थे, बनाकर ब्रह्मा ने अपनी समस्त लावण्य सामग्री को समाप्त कर दिया था, अतः जब वे पुनः उनके शेष अंगों का निर्माण करने लगे, तब उनमें लावण्य का पर्याप्त प्रयोग करने के लिए उन्हें पुनः नये लावण्य की रचना प्रयत्नपूर्वक करनी पड़ी होगी अन्यथा शेष अंग-लावण्यमय न बन पाते।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **उत्प्रेक्षालंकार** है, क्योंकि ब्रह्मा ने जङ्घा के निर्माण में अपना समस्त सञ्चित लावण्य समाप्त कर दिया था, अतः मानो उन्हें शेष अंगों के निर्माण के लिये पुनः नया लावण्य बड़े यत्न से उत्पन्न करना पड़ा था।

इन्द्रवज्रा नामक छन्द है।

समासादि—पूर्वम् अनुगते अनुपूर्वे, वृत्ते च ते अनुपूर्वे वृत्तानुपूर्वे अत्यन्त दीर्घे-अतिदीर्घे, तस्याः इमे—तदीये ते=तदीये। असृजत् इति सृष्टवान् तस्य =सृष्टवतः। विदधातीति विधाता तस्य विधातुः। शेषाणि च तानि अङ्गानि शेषाङ्गानि शेषाङ्गानां निर्माणस्य विधिः तस्मिन्—शेषाङ्गनिर्माण विधौ। उत्पादितुं योग्यम्=उत्पाद्यम् तस्मिन् उत्पाद्ये।

संस्कृत व्याख्या—वृत्तानुपूर्वे=वर्तुलपूर्वानुगते गोपुच्छाकार इत्यर्थः, न च अति दीर्घे=न च अतिलम्बे न च अतिह्रस्वे मध्यप्रमाणे इत्यर्थः, शुभे=मङ्गलरूपे, तदीये=तस्याः, पार्वत्या इत्यर्थः, जङ्घे=प्रसृते, सृष्टवतः=निर्मितवतः विधातुः=ब्रह्मणः, शेषाङ्गनिर्माणविधौ=जङ्घातिरिक्ताङ्गरचना विधाने, उत्पाद्ये=उत्पादनीये, लावण्ये=सौन्दर्ये, यत्नः=प्रयत्नः आस इव=बभूव इव।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत सरलार्थ—देव्याः पार्वत्याः शरीरनिर्माण कार्याय समुत्पादितेषु समस्तेष्वपि लावण्यद्रव्येषु तदीयस्य वर्तुलस्य पूर्वानुरूपस्य नातिदीर्घस्य नातिह्रस्वस्य च जङ्घाद्वयस्य निर्मिति कर्मण्येव समाप्ति गतेषु सृष्टा विधाता तस्याः जङ्घातिरिक्त-शरीरावयवनिर्माणाय महता प्रयत्नेन पुनः लावण्यसामग्रीं सम्पाद्य शेषाङ्गनिर्मिति विदधौ ।

टिप्पणी—वृत्तानुपूर्वे वृत्तम् = वर्तुलम् "वर्तुलं निस्तलं वृत्तम्" पूर्वमनुक्रान्तेत्यत्र 'क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया 'इति समासः । अतिदीर्घे—अत्यन्तं दीर्घे इत्यर्थे सह सुपेति समासः । जङ्घाओं का सौन्दर्य उनके गोलाकार एवं ऊपर से नीचे की ओर पतले गोपुच्छाकार बने होने में होता है, फिर भी न तो उन्हें अधिक लम्बा और न अधिक छोटा ही होना चाहिये अर्थात् वे मध्यमप्रमाण के होने चाहिए । सामुद्रिक शास्त्र में दीर्घजङ्घा अथवा ह्रस्वजङ्घा स्त्री को त्याज्य कहा गया है । तदीये—तस्या इमे इत्यर्थे त्यदादीनि चेति तच्छब्दस्य वृद्ध संज्ञा, ततः वृद्धाच्छः इति छ प्रत्यये, तस्य ईय आदेशे । जङ्घे—जङ्घा तु प्रसृता' इत्यमरः । सृष्टवतः सृज् + क्तवतु, षष्ठी एकवचन, विधातुः—वि + धा + तृच, षष्ठी एकवचन "स्रष्टा प्रजापति वेंधा विधाता विश्वसृड्विधिः" उत्पाद्य —उत् + पद् + ण्यत् । आस—वभूव के अर्थ में तिङन्त प्रतिरूपक अव्यय है, ऐसा शाकटायन का मत है । किन्तु वल्लभ के मतानुसार कवियों का यह प्रामादिक प्रयोग ही है, क्योंकि अस् धातु को नियमतः लिट् लकार में 'भू' आदेश होता है, अतः इस प्रकार का तिङन्त प्रयोग मिलना संभव ही नहीं है। वामन के मत से यह 'अस गति दीप्त्यादानेषु' धातु का लिट् लकार का प्रयोग है, आस अर्थात् दिदीपे प्रवृत्तः इत्यर्थः ।

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्त शैत्यात्कदली विशेषाः ।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्त दूर्वो रूपमान वाह्याः ॥३६॥

प्रसंग—जङ्घाद्वय वर्णनान्तर प्रस्तुत श्लोक में कवि उरुद्वय का वर्णन करता है

अन्वय—नागेन्द्रहस्ताः त्वचि कर्कशत्वात्, कदलीविशेषाः ऐकान्त शैत्यात् लोके परिणाहि रूपम्—लब्ध्वा अपि तद् ऊर्वोः उपमान वाह्याः जाताः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

शब्दार्थ—नागेन्द्रहस्ताः = ऐरावत आदि गजराजों की सूंड़े (शुण्डा द… त्वचि कर्कशत्वात् = त्वचा में कठोर होने के कारण, कदली विशेषाः = राजर… आदि केलेके खम्भ, एकान्त शैत्यात् = नित्य शीतल होने के कारण, लोके = सं… में, परिणाहि रूपम् = विशाल आकार को, लब्ध्वा अपि = प्राप्त करके भी, तद… = उनके उरुस्थलों के, उपमान वाह्याः = उपमान वहिर्भुत हो गये उरु… उपमेय का उपमान बनने की योग्यता से बाहर हो गये, अरुस्थलों की तुलना… प्रृथक् हो गये।

अनुवाद—ऐरावतादि गजराजों के शुण्डादण्ड चर्म या खाल में क… (मसृणहीन) होने के कारण, राजरम्भा आदि कदली—स्तम्भ, नियत शी… होने के कारण, संसार में विशाल आकार प्राप्त करके भी, उनके उरु—स… की तुलना से बाहर हो गये, अर्थात् उरुरूप उपमेय के लिये नागेन्द्रहस्त… कदली विशेष (तुलना के लिये) उपमान कोटि में न आ सके।

भावार्थ—देवी पार्वती के उरुद्वय का वर्णन करता हुआ कवि कहता… कि देवी पार्वती के उरुद्वय की किसी अन्य पदार्थ से तुलना नहीं की… सकती अर्थात् वे अनुपमेय हैं। ऐरावतादि गजराजों के शुण्डादण्ड, त्वचा… मसृण और स्निग्ध न होकर कठोर और खुरदरे होते हैं, राजरम्भादि क… स्तम्भ नियत शीतल होते हैं, उनमें कभी भी उष्णता नहीं होती, जबकि… द्वय स्निग्ध, मसृण एवं रक्तप्रवाह वश उष्ण भी होते हैं, अतः यद्यपि… दोनों लोक में आकार-प्रकार में और बनावट की दृष्टि से समानता रख… और उन्हें क्वचित्-उपमान रूप में प्रस्तुत किया भी जाता है फिर भी वे… की दृष्टि से देवी के उरुद्वय के उपमान की कोटि में नहीं आ सकते हैं।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **व्यतिरेक** अलंकार है, क्योंकि यहाँ उप… भूत नागेन्द्रहस्त तथा कदली विशेष की अपेक्षा उपमेयभूत उरुयुगल में आधि… वतलाया गया है जैसा कि इसका लक्षण है—

"आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनताऽथवा।"

इन्द्रवज्रा छन्द है।

समासादि—नागानाम् नागेषु वा इन्द्राः नागेन्द्राः तेषां हस्ताः, कर्क… भावः कर्कशत्वम् त्वचि कर्कशत्वम् तस्मात् (अलुक् तत्पुरुष) कदल…

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेषा: = कदलीविशेषा: । शीतस्य भाव: शैत्यम् एकान्तं यथा स्यात्तथा शैत्यम् तस्मात्—एकान्त शैत्यात्, तदूर्वो: = तस्या ऊरू तदूरु = तयो: = तदूर्वो: । उपमाने वाह्या: = उपमानवाह्या: ।

संस्कृत व्याख्या—नागेन्द्रहस्ता: = ऐरावतादि गजराज शुण्डदण्डा:, त्वचि-कर्कशत्वात् = चर्मणि कठोरत्वात्, कदली विशेषा: = राजरम्भादय:,एकान्तशैत्यात् = नितान्त शीतलत्वात्, लोके = भुवने, परिणाहि = विशालम्, रूपम् = आकारम्, लब्ध्वा = प्राप्य, अपि, तदूर्वो: = पार्वती सक्थ्नों: उपमानवाह्या: = उपमानवहिर्भूता, जाता = अभूवन् ।

संस्कृत सरलार्थ—संसारे निर्मितिदृशा, विशालाकारं प्रभूतलावण्य च प्राप्यापि करीन्द्रशुण्डदण्डास्त्वचि कठोरत्वाद्धेतो: राजरम्भादयो नितान्त शैत्याच्च हेतो: गिरिजाया: ऊरुयुगलस्योपमितावनुपयोगिनोऽभूवन् ।

टिप्पणी—नागेन्द्रत्यादि—नागानां नागेषु वेति विग्रहे "यतश्च निर्धारण-मिति षष्ठी सप्तमी वा, अत: षष्ठी समास:, सप्तमी समासो वा त्वचीति त्वचि कर्कशत्वा दित्यत्र समासोत्तरं सप्तम्या अलुक्," कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढम् इत्यमर: । एकान्त शैत्यात् = शीतस्य भाव इत्यर्थे ष्यञि शैत्यम् एकान्त अर्थात् नितान्त शीतलता के कारण । तीव्रै कान्त नितान्तानि इत्यमर: । एकान्त शैत्यादित्यत्र विभाषा गुणोऽस्त्रिया मिति हेतौ पञ्चमी । परिणाहि = यह रूपम् का विशेषण है, परिणाहोऽस्येति = परिणाहि "परिणाहो विशालता" । उपमानवाह्या:—वहिर्भवा: वाह्या: = वहिश्शब्दात् "वहिषष्टि लोपो यञ्चेति यञ प्रत्यय: टिलोपश्च, आदि वृद्धि: वाह्या:, उपमितिरुपमानम् उप + मा = भावे = ल्युट् ।

एतावता नन्वनुमेय शोभि काञ्चीगुण स्थाननम निन्दिताया: ।
आरोपितं यद् गिरिशेन पश्चादनन्य नारीकमनीयमङ्कम् ॥३७॥

प्रसंग—ऊरुद्वय के वर्णनानन्तर कवि नितम्ब स्थल का वर्णन करता है ।

अन्वय—अनिन्दिताया: काञ्चीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि (अस्ति) यत् पश्चात् गिरिशेन अनन्यनारीकमनीयम् अङ्कम आरोपितम् ।

शब्दार्थ—अनिन्दिताया: = परिशुद्धचरित्रा पार्वती का, काञ्चीगुणस्थानम् = मेखलासूत्रस्थल, अर्थात् नितम्बमण्डल, एतावता = इसी से, अर्थात् इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हेतु से, ननु = निश्चय ही, अनुमेयशोभि = अनुमानयोग्य सौन्दर्य वाला (है) जो कि, पश्चात् इसके बाद अर्थात् विवाहानन्तर, गिरिशेन = भगवान् (शंकर द्वारा) अनन्यनारी कमनीयम् = अन्य रमणी द्वारा अवाञ्छनीय, अङ्कम् = (अंक) या गोद में, आरोपितम् = रखा या बिठाया।

अनुवाद—परिशुद्ध चरित्रा देवी पार्वती के मेखलासूत्र स्थल अर्थात् नि(तम्ब) बिम्ब, इसी हेतु से निश्चय ही अनुमान योग्य शोभा वाला है, (जिसे) विवाहान्तर भगवान् शंकर ने अन्य रमणी द्वारा अवाञ्छनीय (अपने) उत्स(ंग में) (उसे) स्थान दिया था।

भावार्थ—देवी गिरिजा के नितम्ब-बिम्ब के विश्वातिशायी सौन्(दर्य का) वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उन अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के (मेखला) सूत्रस्थल के सर्वातिशायी सौन्दर्य का तो निश्चयतः इतनी बात से ही अ(नुमान) किया जा सकता है कि सर्वथा उदासीन एवं निरीह भगवान् शं(कर ने) विवाहान्तर उसे अपने उत्सङ्ग में स्थान दिया था जो कि अन्य रमणी (द्वारा) सर्वथा अवांछनीय था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में अनुमान अलंकार है, क्योंकि यहाँ नि(तम्ब) नितम्बबिम्ब पक्ष विश्वातिशायी सौन्दर्य साध्य और गिरिशाङ्कारो(हण हेतु) है। इसका लक्षण है—

'अनुमानन्तु विच्छित्त्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्।'

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—न निन्दिता अनिन्दिता तस्याः—अनिन्दितायाः काञ्च्याः काञ्चीगुणाः तस्य स्थानम्—काञ्चीगुणस्थानम्। एतत् परिमाणस्य (ए) तेन एतावता, अनुमातुं योग्या अनुमेया, अनुमेया चासौ शोभा, अनुमेय(शोभा) सा अस्य अस्ति इति = अनुमेयशोभि, अथवा अनुमेया शोभा यस्य तद् अ(नुमेय) शोभि। गिरिः अस्यास्तीति गिरिशः अथवा गिरौ शेते गिरिशः तेन = गि(रिशेन)। अन्यश्च ताः नार्यः अन्यनार्यः, कामयितुं शक्यः कमनीयः, अन्यनारीणां क(मनीयः) स न भवतीति—अनन्यनारी कमनीयः तम् = अनन्यनारीकमनीयम्।

संस्कृत व्याख्या—अनिन्दितायाः = अनवद्यायाः पार्वत्याः, काञ्(चीगुण) स्थानम् = मेखलासूत्रस्थानम् नितम्बबिम्बमित्यर्थः, एतावता—इयता वि(...)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ननु = निश्चयेन, अनुमेयशोभि = अनुमानयोग्यकान्तिशील (अस्तीति शेषः) यत् = यस्मात् कारणात्, पश्चात् = विवाहानन्तरम् गिरिशेन = भगवता शिवेन, अनन्यनारीकमनीयम् = न पररमणीवाञ्छनीयम्, अङ्कम् = उत्सङ्गम्, आरोपितम् = अधिष्ठापितम् ।

संस्कृत सरलार्थ—अनवद्यायाः पार्वत्याः विश्वातिशायिसौन्दर्यशालिनो नितम्बबिम्बस्य शोभा एतावन्मात्रेणैव अनुमातुं शक्या वर्तते, यत् विवाहानन्तरं सर्वथोदासीनेन निरीहेणापि सता भगवता शिवेन तदितररमणीदुष्प्राप्यं स्वोत्सङ्गम् रागातिशयवशात् स्वयमेव तन्नितम्बबिम्बमारोपितम् ।

टिप्पणी—अनिन्दितायाः—निन्दा संजाता अस्याः सा निन्दिता तदस्य सञ्जातमिति इतच—प्रत्ययः सर्वाङ्ग सुन्दरी देवी पार्वती के शरीरावयवों में कहीं भी कोई दोष अथवा कोई न्यूनता न थी, अर्थात् वे शारीरिक सौन्दर्य एवं चारित्र्य शुद्धि की दृष्टि से सर्वथा अनवद्या थीं ।

काञ्चीति—काञ्ची = मेखला कटिसूत्र अथवा रशना "स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा" इत्यमरः । गुण = सूत्र, स्थान = वह स्थल जहाँ पर काञ्ची सूत्र काञ्ची की लड़ियाँ लटकती रहती हैं, अतएव काञ्ची गुण स्थान नितम्ब स्थल को कहा जाता है, यद्यपि काञ्ची कटि पर पहनी जाती है तथापि उसकी लड़ियों के नितम्ब स्थल पर लटकने के कारण उसे यह नाम दिया गया है काञ्ची विविध प्रकार की वनावट की होती है, कुछ की लड़ियाँ तोरणाकार उस स्थान पर लटकती रहती हैं ।

अनन्यनारीकमनीयम्—यह अङ्कम् का विशेषण है, भगवान् शिव का अङ्क भगवती पार्वती के अतिरिक्त अन्य किसी रमणी द्वारा वाञ्छित या प्रार्थित होने पर भी दुष्प्राप्य था, क्योंकि सती द्वारा शरीर त्याग के अनन्तर भगवान समाधिस्थ होकर तपोनिरत हो गये थे । गिरिशेन—गिरि रस्यास्तीति गिरिशः तेन गिरिशेन—इस विग्रह में गिरि शब्द से लोमादिपामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः' सूत्र से श प्रत्यय होकर गिरिशः रूप होगा, अथवा गिरौ कैलाश नाम्नि पर्वते शेते इस विग्रह में गिरि + शीङ् धातु से 'गिरोऽश्छन्दसि' इस वार्तिक से' भाषायामपि क्वचिदिष्यते' इस मत से ड् प्रत्यय और डित् सामर्थ्य से ईकार लोप होकर गिरिशः रूप बनेगा 'गिरीशो गिरिशो मृडः"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

इत्यमरः। दोनों ही व्युपत्तियों के अनुसार गिरिश भगवान् शिव का नाम है।

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोम राजिः।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ॥३८॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि रोमराजि का वर्णन कर रहा है।

अन्वय—नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रम् प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेः अर्चिः इव रराज।

शब्दार्थ—नीवीन्—कटि के वस्त्र की ग्रन्थि गांठ या वन्ध को, अतिक्रम्य=लाँघ कर, नतनाभिरन्ध्रम्=निम्न या गम्भीर गहरे नाभि के छिद्र प्रविष्टा=प्रविष्ट हुई, तन्वी=सूक्ष्म, तस्याः=उस देवी पार्वती की, नवलोमराजिः=नवीन लोमपङ्क्ति, सितेतरस्य=श्वेत से भिन्न अर्थात् नील की, तन्मेखला मध्यमणेः=उस (पार्वती) की करधनी की मध्यगत मणि अर्चिः=प्रभा या क्रान्ति, इव, रराज=की तरह सुशोभित हुई।

अनुवाद—कटिवस्त्र ग्रन्थि को लांघकर निम्न नाभि के छिद्र में प्रविष्ट हुई सूक्ष्म उसकी नवीन लोमपङ्क्ति, नीलवर्ण की उसकी मेखला की मध्य की प्रभा के समान शोभा पाती थी।

भावार्थ—नव लोम राजि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कटिवस्त्र की ग्रन्थि को पार कर निम्न—नाभि के छिद्र में प्रविष्ट सूक्ष्म उ नवीन लोमपंक्ति, नीलवर्ण की उसकी मेखला के बीच स्थित मणि की कान्ति समान शोभित हो रही थी। तात्पर्य यह कि देवी की नवीन निकली हुई पंक्ति जो कि नवीन होने के कारण कुछ अधिक नीलवर्ण की ही थी और को पार कर उनकी गम्भीरनाभि में प्रविष्ट हो रही थी, सूक्ष्म और ऊर्ध्वगामि थी, वे कटिमेखला भी धारण किये हुये थीं इस मेखला के मध्य भाग नीलमणि लगी हुई थी उसकी भी नीली प्रभा ऊपर की ओर जा रही थी कवि की सम्भावना है कि मानो वह नवलोम राजि उस मणि की नील के समान ही ऊर्ध्वगामिनी वनकर सुशोभित हो।

अलङ्कार—प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है, क्योंकि यहाँ नाभिप्र सूक्ष्म लोम राजि को, मेखलामणि की नील प्रभा से उत्प्रेक्षित किया गया है उपजाति छन्द है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सामासादि—नाभेः रन्ध्रम् नाभिरन्ध्रम् नतं च तद् नाभि रन्ध्रम् नतनाभिरन्ध्रम् तत् । नवानि च तानि लोमराजि तेषां (नवलोम्नाम्) राजिः—नवलोमराजिः । सितात् इतरः सितेतरः तस्य—सितेतरस्य । तस्याः मेखला तन्मेखला, मध्यश्चासौ मणिः मध्यमणिः तन्मेखलायाः मध्यमणिः तस्य—तन्मेखलामध्यमणेः ।

संस्कृत व्याख्या—नीवीम्=स्त्रीकट्यामधो वस्त्रग्रन्थिम्, अतिक्रम्य=उल्लंघ्य, नतनाभिरन्ध्रम्=निम्ननाभिविवरम्, प्रविष्टा=गता, तन्वी=सूक्ष्मा, तस्याः पार्वत्या इत्यर्थः, नवलोमराजिः=नूतनरोमपङ्क्तिः, सितेतरस्य=असितस्य नीलवर्णस्येत्यर्थः, तन्मेखलामध्यमणेः तद्रशनामध्यगतमणेः, अर्चिः इव=प्रभा इव, रराज शुशुभे ।

संस्कृत सरलार्थ—नीवीमतीत्य देव्या गम्भीरनाभिविवरं गता सूक्ष्मा यौवनारम्भ काल समुद्भवा नूतना अत एवेषन्नीलवर्णरोमपंक्तिः नीलवर्णस्य तदीयकाञ्ची मध्यमणेः कान्तिरिव शुशुभे ।

टिप्पणी—**नीवीम्**—स्त्री की कटि में बंधी हुई अधोवस्त्र की गांठ को नीवी कहा जाता है स्त्रीकटिवस्त्रबन्धेऽपि नीवीपरिपणेऽपि च' इत्यमरः । **अतिक्रम्य**—अतिपूर्वक क्रमु पादविक्षेपे+क्त्वा—ल्यप् । **तन्वी**—सूक्ष्म 'स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः । यौवनारम्भ काल में नवोदित अतएव एक रेखा के समान पतली । **नतनाभि-रन्ध्रम्**—नाभि का निम्न अर्थात् गहरा होना सौन्दर्य का परिचायक होता है, अतः काव्यों में निम्न—नाभि, शब्द स्त्रीसौन्दर्य वर्णन में प्रायः—सर्वत्र प्रयुक्त हुआ । कहाकवि बिल्हण ने यद्यपि इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है, तथापि एतत्तात्पर्य बोधक उनका भाव बड़ा ही सुन्दर है, और नाभिगाम्भीर्य की ही प्रशंसा करता है—"रोमावली विलासिन्या प्रतिष्ठा नाभिमण्डलम् । कियद् गाम्भीर्यमत्रेति तात्पर्यमिव बिभ्रती । नत अर्थात् निम्न अथवा गम्भीर । **नवलोम-राजिः**—स्त्री के उदर के मध्य भाग में ऊपर से नीचे की ओर वक्षः स्थल के नीचे बीचों-बीच जो एक बालों की पतली-सी रेखा यौवनारम्भ काल में निकलती है, उसे ही रोमावली रोमपङ्क्ति कहा जाता है, इस पद का 'नव' विशेषण यह द्योतित

SRI JagadGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

करता है कि यह रोमपंक्ति अभी पूर्णतः कृष्णवर्ण नहीं हो पाई थी अपितु वह कुछ कुछ हल्की काली या नील वर्ण की थी, अतएव वह काञ्ची के मध्य मध्यगरत्न की नीली प्रभा के समान प्रतीत होती थी। सितेतरस्य — सितादितरः यहाँ अन्यारादितर्ते" से पञ्चमी, और पञ्चमी तत्पुरुष समास है, यह पद मध्य-मणेः का विशेषण है, अतः मध्यमणि से तात्पर्य नीलमणि से है, अतएव यह नवलोभ — राजि के समान थी और उसकी प्रभा भी नीली थी, तन्मेखलेति तद् पद से यहाँ पार्वती का ग्रहण है, यही प्रायः सभी टीकाकारों ने माना है, पर यदि यह कहा जाय कि तस्याः की अनुवृत्ति से ही यह अर्थ हो जायेगा तब तद् पद व्यर्थ है तो इसको नीवी के लिये प्रयुक्त मान लिया जाना चाहिये अन्यथा वाक्यान्तर में प्रयुक्त होने से यहाँ यह कोई दोष भी नहीं है

यहाँ उपमालंकार का संदेह नहीं होना चाहिए, क्योंकि यहाँ वर्णसाम्यादि उत्प्रेक्षा के हेतु हैं अतः उत्पेक्षा मानना ही समीचीन है, काञ्ची की मध्यमणि नाभि के ठीक नीचे रहती है, नीलमणि होने के कारण उसकी नीलाभकान्ति, ऊर्ध्वगामिनी नील प्रभा-सी प्रतीत होती थी, नाभिप्रविष्ट नवलोमपंक्ति मानो काञ्चीगत नील मणि की कीलकान्ति ही हो, अतएव उत्प्रेक्षालंकार है।

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ३९ ॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में कवि वलित्रय का वर्णन कर रहा है।

अन्वय—वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारु वलित्रयम्, कामस्य आरोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तम् सोपानम् इव बभार।

शब्दार्थ—वेदिविलग्नमध्या = वेदिवत् कृशमध्य भाग वाली, सा = वह, षोडशवर्षीया, बाला = पार्वती, मध्येन = मध्य भाग से, अथवा उदर के मध्य भाग से, चारु = सुन्दर, वलित्रयम् = त्रिवलि को, कामस्य कामदेव के, आरोहणार्थम् = (स्तनमुखादि उच्च स्थान पर) चढ़ने के लिये, नवयौवनेन = नवं यौवन के द्वारा, प्रयुक्तम् विरचित, सोपानम्— = सीढ़ी, इव—के समान बभार = धारण करती थीं।

अनुवाद—वेदी के समान कृश मध्यभाग वाली अर्थात् कृशोदरी या तनुमध्या' वह षोडश वर्षीया बाला कुमारी पार्वती, उदर के मध्यभाग से,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दर त्रिवलि को, कामदेव के (स्तन मुख आदि उच्चस्थान पर) चढ़ने के लिये, यौवन द्वारा विरचित सीढ़ी के समान धारण करती थी।

भावार्थ—वेदिका (परिष्कृतभूमि) के समान क्षीण कटिभाग वाली उस डशवर्षीया कुमारी देवी पार्वती के उदर के मध्य भाग में उभरी हुई तीन ली रेखाएँ थीं, इससे कवि सम्भावना करता है कि मानो उसके नये यौवन कामदेव के ऊपर चढ़ने के लिये, तीन सीढ़ियाँ बना दी थीं।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में भी पूर्ववत् उत्प्रेक्षा अलंकार है, उपमा नहीं, योंकि यहाँ देवी के मध्योदर में स्थित सुन्दर त्रिवली मानो कामदेव के चढ़ने लिये नवयौवन द्वारा बनाई गई सीढ़ी थी, यही स्पष्टार्थ है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—वेदिः इव विलग्नः कृशः मध्यः यस्याः सा = वेदिविलग्नमध्या। ीनाम् त्रयम् = वलित्रयम् तत्—नवं च तद यौवनं तेन = नवयौवनेन, रोहणाय इदम् इति आरोहणर्थम्।

संस्कृत व्याख्या—वेदिविलग्नमध्या = वेदिवत्कृशमध्यभागा, सा वाला = डशवर्षीया कुमारी देवी पार्वती, मध्येन = मध्योदरेण, चारु = सुन्दरम्, वलि- यम् = उदरमध्यगत रेखात्रिकम्, कामस्य, मदनस्य, आरोहणार्थम् = स्तनमुखा- च्चप्रदेशोद् गमनार्थम् नवयौवनेन = नवीनतारुण्येन, प्रयुक्तम् = विरचितम् पानम् इव = आरोहणम् इव, बभार—धृतवती।

संस्कृत सरलार्थ—वेदिकावत्कृशोदरी सा षोडशवर्षीया कुमारी देवी पार्वती कीय मध्योदरेण मनोहारि उदररेखात्रिकम्, मदनस्य स्तनमुखाद्युच्च प्रदेशो मनाय नूतनतारुण्येण विरचितं सुन्दरमारोहण मिव धारयामास

टिप्पणी—वेदिविलग्नमध्या—"वेदिः परिष्कृता भूमिः" परिष्कृत भूमि को दि या वेदिका कहा जाता है। यह मध्य भाग में पतली और आसपास मोटी खाओं द्वारा बनाई जाती है, वेदिः इव विलग्नः कृशः वेदिविलग्नः विलग्न का र्थ है, कृश, क्योंकि विलगति ह्रसति इति विलग्नः, जो कृश होती है, वेदि लग्नः में उपमानि सामान्य वचनैः' से समान हुआ है, वेदि विलग्नः मध्यः ध्यभागः कटि प्रदेशः यस्याः सा, अतएव इसका तात्पर्य है कृशोदरीं या तनु ध्या। "मध्यमं चावलग्नं च मध्योऽस्त्री' इत्यमरः बाला—वाला शब्द का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अजादि गण में पाठ है, अतः इसमें 'वयसि प्रथमे से ङीप् न होकर टाप् प्रत्यय ही हुआ है। "बाला स्यात् षोडशाब्दा" सोलह वर्ष की कुमारी को बाला कहा जाता है।

वलित्रयम्—त्रयः अवयवाः यस्य तत् त्रयम् त्रि शब्द से तयप् प्रत्यय पुनः उसको अयच् आदेश होकर त्रयम्—बना है। वलि का अर्थ है रेखा। उदर के माध्यभाग में मान्यतः तीन रेखायें पड़ने से चर्म की तीन धारियां सी बन जाती हैं, इन्हें ही त्रिवली कहा जाता है, यह भी एक सौन्दर्य प्रतीक माना जाता है।

आरोहणार्थम्—आरोहणाय इदम् यहाँ चतुर्थी तत्पुरुष-समास है, यह पद सोपानम् का विशेषण है, अर्थेन नित्यसमासो विशेषलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। सोपानम् आरोहणम् "आरोहण स्यात् सोपानम्।"

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम्।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य, मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥४०॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में कुचद्वय का वर्णन है।

अन्वय—अन्योन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयम् तथा प्रवृद्धम् श्याममुखस्य तस्य मध्ये यथा मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् आसीत्।

शब्दार्थ—अन्योन्यम् = परस्पर एक दूसरे को, उत्पीडयत् = दबाते हुये अथवा एक दूसरे से टकराते हुये, पाण्डु = गौरवर्ण के, उत्पलाक्ष्याः = कमलाक्षी उस देवी के, स्तनद्वयम् दोनों स्तन, तथा प्रवृद्धम् = इतने बढ़ गये, श्याममुखस्य तस्य = कृष्ण अग्र भाग वाले उस स्तनयुगल के, मध्ये = बीच में, यथा = जिससे कि, मृणालसूत्रान्तरम् अपि = बिस तन्तु मात्र का अन्तर, भी अलभ्यम् = आसीत् = दुर्लभ था।

अनुवाद—परस्पर एक-दूसरे को पीडित करते हुये गौरवर्ण के उस कमलाक्षी पार्वती के स्तनयुगल इस प्रकार बढ़ गये जिससे कि उस कृष्ण अग्रभाग वाले स्तनयुगल के बीच में विष तन्तु मात्र का भी अन्तर दुर्लभ हो गया।

भावार्थ—देवी के स्तनयुगल की प्रवृद्धि का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि कमलनयना उस देवी का स्तनयुगल परस्पर में एक-दूसरे को दबाने वाला एवं गौर वर्ण का था, वह नवयौवन के प्रभाव से इतना बढ़ गया कि

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कि उन दोनों स्तनों के बीच में जिनका कि अग्रभाग कृष्ण वर्ण का था, विसतन्तु मात्र का अवकाश (स्थान) मिलना दुर्लभ था।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में सम्बन्ध में असम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति अलंकार है, क्योंकि यहाँ स्तनद्वय के पीवरत्वाति शय के लिये, अवकाश रूप सम्बन्ध के रहते हुये भी उनमें असम्बन्ध कथन किया गया है। विसतन्तु मात्र का अवकाश तो संभव ही था पर स्तनद्वय की अति-प्रवृद्धि शालिता बताने के लिये यहाँ अवकाशाभाव का कथन किया गया है। उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—उत्पीडयतीति उत्पीडयत्, उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा तस्याः=उत्पलाक्ष्याः, स्तनयोः द्वयम्। स्तनद्वयम् प्रकर्षेण वृद्धम्=प्रवृद्धम्। श्यामं मुखं यस्य तस्य=श्याममुखस्य। मृणालस्य सूत्रम् तस्य अन्तरम्=मृणाल—सूत्रान्तरम्। न लभ्यम्=अलभ्यम्।

संस्कृत व्याख्या—अन्योन्यम्=परस्परम्। उत्पीडयत्=उपरुन्धत्, पाण्डु=गौर-वर्णम्, उत्पलाक्ष्याः=कमलनयनायाः, स्तनद्वयम्, कुचद्वितयम्, तथा=तेन प्रकारेण, प्रवृद्धम्=प्रकर्षेण वृद्धिगतम्, घनीभूतम्, यथा=येनप्रकारेण, श्याममुखस्य=कृष्णाग्रभागस्य, तस्य=स्तनद्वयस्य, मध्ये=अन्तरे, मृणालसूत्रम् अपि=विसतन्तुमात्रावकाशः अपि, अलभ्यम्=लब्धुमशक्यम् (आसीत्)।

संस्कृत सरलार्थ—पङ्कजाक्ष्यास्तस्या देव्याः पार्वत्याः परस्परमुपरुन्धत् धवलं श्याममुखं कुचद्वयम् तेन प्रकारेण प्रकर्षेण वृद्धि गतमासीत् यथा किमदन्तरमनयोः इत्यवधारणाय तयो र्मध्यं प्रवेश्यमानस्य विसतन्तोरप्यवकाशो दुष्प्राप्य एवासीत्।

टिप्पणी—अन्योन्यमुत्पीडयत्—स्तनद्वय बढ़कर एक-दूसरे से इतने सट गये थे कि स्वभावतः उनका दबाव-एक दूसरे पर पड़ता था। उत्पलाक्ष्याः= यहाँ समासोत्तर बहुव्रीहावित्यादिना षच् प्रत्यय, तदनु, षिद्गौरादिभ्यश्चेति, ङीप् प्रत्यय। प्रवृद्धम्=प्रकर्षेण वृद्धम् सह सुपेति समास=वृधु वृद्धौ कर्तरि क्त। मृणालेति—'मृणालं विषम्, अलभ्यम्—न लभ्यम् अलभ्यम्, लभ्+ शक्यार्थे, पोर दुपधादिति यत् प्रत्ययः। उत्पीडयत्=उत्+पीडि्=शतृ।

शिरीषपुष्पाऽधिक सौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥४१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में पार्वती के वाहुद्वय का वर्णन है।

अन्वय—यौ (वाहू) पराजितेन अपि मकरध्वजेन हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ (अतः) तदीयौ वाहू शिरीषकुसुमाधिक सौकुमार्यौ, इति मे वितर्कः (अस्ति)।

शब्दार्थ—यौ = जिन दोनों को, पराजितेन अपि = निर्जित हुये भी, मकरध्वजेन = कामदेव ने, हरस्य = शिव के, कण्ठपाशौ कृतौ = गले की बन्धनरज्जु वनाया, तदीयौ (तौ) वाहू = उसकी (वे) भुजायें, शिरीषपुष्पाधिक सौकुमार्यौ = शिरीष के पुष्प से भी अधिक कोमल, (स्तः = हैं) इति मे वितर्कः = ऐसा मेरा अनुमान (अस्ति = है)

अनुवाद—(शिव से) निर्जित हुये भी कामदेव ने जिन दोनों को, शिव के गले की वन्धनरज्जु वनाया, उस पार्वती की (वे) दोनों भुजायें (अतिकोमल भी) शिरीषपुष्प से भी अधिक कोमल (हैं) ऐसा मेरा अनुमान (है)।

भावार्थ—विश्वविजयी कामदेव जव दर्पवशात् शिव समाधि को भंग करने के लिये, अपने सुकुमार शिरीष पुष्पादि साधनों से सज्जित होकर उनके पास आया और उनसे पराजित हो गया तव उसने पार्वती के वाहुरूप वन्धनरज्जु से उन्हें गले में वाँध कर अपने वशीभूत कर लिया, अतः ज्ञात होता है कि पार्वती के वाहु, शिरीषपुष्प से भी अधिक कोमल थे, अर्थात् उनकी कमनीयता अनुपमेय थी।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में **परिणामालंकार** है, क्योंकि यहाँ कामदेव द्वारा पार्वती की भुजाओं पर जो कि शिरीष पुष्प से भी अधिक कोमल है, कण्ठपाश का आरोप कर उनका अपने वैर-निर्यातन के लिये उपयोग किया गया है, कुछ टीकाकारों ने यहाँ **व्यतिरेक** अलंकार भी माना है, क्योंकि यहाँ उपमानभूत शिरीषपुष्प की अपेक्षा उपमेयभूत भुजाओं में अधिक सौकुमार्य वतलाया गया है।

"विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थो पयोगिनि परिणामः ॥"

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—मकरः ध्वजः यस्य तेन = मकरध्वजेन। कण्ठस्य पाशौ = कण्ठपाशौ। शिरीषस्य पुष्पं शिरीषपुष्पम्, शिरीषपुष्पात् अधिकम् शिरीषपुष्पाधिकम्, सुकुमारस्य भावः सौकुमार्यम्, शिरीषपुष्पाधिकं सौकुमार्यम् ययोः

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तौ—शिरीषपुष्पाधिक सौकुमार्यौ । विशिष्टः तर्कः—वितर्कः । तस्याः इमौ =तदीयौ ।

संस्कृत व्याख्या—यौ पार्वती भुजौ, पराजितेन अपि निर्जितेन दाहाभिभूते नापीत्यर्थः, मकरध्वजेन=कामेन, हरस्य=शिवस्य कण्ठपाशौ=गलबन्धन-रज्जू, कृतौ=विहितौ, कण्ठालिङ्गनं प्रापिता वित्याशयः, अतः तदीयौ पार्वती-सम्बन्धिनौ, बाहू=भुजौ, शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ=शिरीषकुसुमाधिक-कोमलौ, (स्त इति शेषः) इति मे वितर्कः=एवम्भूतः=मम ऊहः (अस्ति)।

संस्कृत सरलार्थ—विश्वजित् पुष्पधन्वा दर्पाद् यदा शिव-समाधि भङ्गाय दसुकुमारतरशिरीषकुसुमादिविजयसाधनोपेतस्त मुपाययौ, अथ च तेन पराजितः स स्ववैरनिर्यातनाय पार्वतीभुजबन्धनरज्ज्वा तं कण्ठे गृहीत्वा पशुमिव तं पशुपतिमात्मवशी चकार । एतेनानुमीयते यत् पार्वत्या बाह्वोः सौकुमार्यं शिरीषकुसुमादप्यधिक मनुपमेयम्वासीत् ।

टिप्पणी—**शिरीषेत्यादि**—शिरीषपुष्प सबसे अधिक कोमल होता है, इसीलिए वह कामदेव का सबसे प्रबल बाण माना जाता है । पर जब भगवान् शिव पर वह बाण भी विफल हो गया और कामदेव को पराजित ही नहीं अनङ्ग भी बनना पड़ा, तब उसने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए, शिरीष पुष्प से भी अधिक कोमल पार्वती की भुजाओं को उनके कण्ठ का हार बना दिया अर्थात् कामदहन के बाद भगवती उमा की तपस्या से सन्तुष्ट होकर शिव ने उनसे विवाह कर लिया । यहाँ सुकुमार से तात्पर्य है अनुपमेय अर्थात् जिसके लिए कोई उपमान ही न हो, सुकुमारस्य भावः इत्यर्थे ष्यञ् प्रत्ययः सौकुमार्यम् । **वितर्कः** "अध्याहारस्तर्क ऊहः इत्यमरः । **हरस्य**—हृञ् धातोः पचाद्यच् ।

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ता कलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योऽन्यशोभा जननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥४२॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में कण्ठ का वर्णन है ।

अन्वय—स्तनबन्धुरस्य तस्याः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योन्य शोभाजननात् साधारणः भूषणभूष्यभावः बभूव ।

शब्दार्थ—स्तनबन्धुरस्य=स्तनों से उन्नत, तस्याः=उस पार्वती के, कण्ठस्य गले के, निस्तलस्य=वर्तुल या गोलाकार, मुक्ताकलापस्य च=और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मौक्तिक आभूषण के अर्थात् मौक्तिक कण्ठहार के, अन्योन्यशोभाजननात्=परस्पर की शोभा बढ़ाने के कारण, साधारणः=समान, भूषणभूष्यभावः=अलङ्कारालङ्कार्यभाव, बभूव=हो गया ।

अनुवाद—कुचोन्नत उन पार्वती के कण्ठ का तथा वर्तुलाकार मौक्तिक कण्ठाभरण का परस्पर की शोभा बढ़ाने के कारण समान अलङ्कारालङ्कार्य भाव हो गया ।

भावार्थ—पार्वती द्वारा अपने स्तनोन्नत कण्ठ में धारण किया गया वर्तुलाकार मौक्तिककण्ठहार, उनके कण्ठ की जिस प्रकार शोभा बढ़ाता था उसी प्रकार उनका कण्ठ भी उस कण्ठहार की शोभा बढ़ाता था। इस प्रकार कण्ठ और कण्ठहार दोनों समान रूप से एक-दूसरे की शोभा बढ़ाने के कारण परस्पर अलङ्कार और अलङ्कार्य भी थे । अलङ्कार या भूषण कहा जाता है जो शोभा बढ़ाता है, और अलङ्कार्य या भूष्य वह कहा जाता है, जिसकी शोभा बढ़ाई जाती है, अतः इन दोनों में परस्पर भूषणभूष्य भाव था ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **अन्योन्यालंकार** है, क्योंकि यहाँ शोभा क्रिया द्वारा कण्ठ से मुक्ताकलाप की और मुक्ताकलाप से कण्ठ की शोभा बढ़ाई जा रही है, अतः ये दोनों परस्पर शोभाजनक है, अन्योन्यमुभयोरेकक्रियायाः कार मिथः ।"

उपजाति नामक छन्द है ।

समासादि—स्तनाभ्यां बन्धुरः तस्य-स्तनबन्धुरस्य, मुक्तानां कलापः तस्य मुक्ता कलापस्य । अन्योन्ययोः शोभा तस्या जननं तस्मात् अन्योय शोभा जननात् भूषणञ्च भूष्यश्च भूषणभूष्यौ तयोः भावः=भूषणभूष्यभावः ।

संस्कृत व्याख्या—स्तनबन्धुरस्य=कुचोन्नतस्य, तस्याः—पार्वत्याः, कण्ठस्य गलस्य, निस्तलस्य=वर्तुलस्य, मुक्ताकलापस्य=मौक्तिककण्ठाभरणस्य, अन्योन्य शोभा जननात्=परस्पर कान्त्युत्पादनात्, भूषणभूष्यभावः=अलंकारालङ्कार्यभावः, साधारणः=समानः बभूव=अभूत् ।

संस्कृत सरलार्थ—कुचोन्नतस्य भगवत्याः पार्वत्याः कण्ठस्य, वर्तुलाकारस्य तस्या मौक्तिककण्ठाभरणस्य च परस्परशोभोत्पादकत्वाद् अलङ्कारालङ्कार्य भावः समान एव जातः, उभावपि परस्परस्य भूषणे भूष्यौ च संजातौ ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

टिप्पणी—स्तनवन्धुरस्य—स्तनों के उत्सेध के कारण ग्रीवा और स्तनों के ऊपरी भाग की रचना स्वभावतः नतोन्नत शङ्खाकार जैसी हो जाती है "वन्धुरं तून्नतानतम्" निस्तलस्य "वर्तुलं निस्तलं वृत्तम् इत्यमरः। **मुक्ताकलापस्य**—कपाल शब्द का सामान्य अर्थ समूह होता है किन्तु यहाँ इसका अर्थ भूषण है "कलापो भूषणो वर्हे तूणीरे संहतावपि' इत्यमरः।

अन्योन्यशोभेत्यादि—जनी प्रादुर्भावे ल्युट-जननम्, परस्पर की शोभा उत्पन्न करने के कारण, भूषणेति भूष्+ल्युट्=भूषणम्, भूष्+यत्=भूष्यः "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकं सम्बध्यते" इस न्याय से यहाँ भूषणभाव और भूष्यभाव अर्थ ग्रहीत होगा। Remember

चन्द्रगता पद्मगुणान्नभुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला, द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥४३॥

प्रसंग—प्रस्तत श्लोक में भगवती के मुख का वर्णन है।

अन्वय—लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता (सती) पद्मगुणान् न भुङ्क्ते, पद्माश्रिता (सती) चान्द्रमसीम् अभिख्याम् (न भुङ्क्ते) उमामुखम् प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयाम् प्रीतिम् अवाप्।

शब्दार्थ—लोला—चञ्चला, लक्ष्मीः=शोभा, श्री। चन्द्रगता (सती) चन्द्रमा के पास गई हुई (होकर) पद्मागुणान्=कमल के गुणों को अर्थात्, सुगन्धि आदि तद्गत् गुणों को, न भुङ्क्ते=नहीं प्राप्त करती है। पद्माश्रिता (सती) कमल पर समाश्रित हुई (होकर) चान्द्रमसीम्=चन्द्रमा की, अभिख्याम् =शोभा को अमृततवत् आनन्ददायिनी शोभा को (न भुङ्क्ते=प्राप्त नहीं करती है) उमामुखं प्रतिपद्य तु=किन्तु पार्वती के मुख को प्राप्त होकर, द्विसंश्रयाम्=चन्द्रमा और कमल दोनों के गुणों पर आश्रित अर्थात् चन्द्रमा और कमल दोनों में पाये जाने वाले। प्रीतम्=आनन्द को, अवाप=प्राप्त किया।

अनुवाद—सामान्यतः चञ्चला परिभ्रमणशीला लक्ष्मी, चन्द्रमा के पास गई होकर कमल के सुगन्धि आदि गुणों को नहीं पाती है, और कमलाश्रिता होकर चन्द्रमा की (अमृतवत् आनन्ददायिनी) शोभा को नहीं पाती है किन्तु उमा के मुख को पाकर (उसने) चन्द्रमा और कमल दोनों में पाये जाने वाले आनन्द को प्राप्त किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भावार्थ—चञ्चला लक्ष्मी रात्रि में पूर्णचन्द्र को प्राप्तकर, प्रातः विक[सित] होने वाले कमल के सुगन्धि आदि गुणों का अनुभव नहीं कर पाती और [?] दिन में कमल को प्राप्त कर रात्रि में उदित होने वाले चन्द्रमा के आह्ला[द]कत्वादि गुणों का अनुभव नहीं कर पाती, क्योंकि चन्द्रमा और कमल [एक] समय में एक साथ उदित और विकसित नहीं होते, किन्तु उमामुख[को] पाकर लक्ष्मी ने चन्द्र और कमल दोनों में प्राप्त होने वाले आनन्द को [एक] साथ प्राप्त कर लिया क्योंकि उमामुख सर्वकाल आह्लादक एवं स्वाभा[वि]क सौगन्ध्य से अभिराम था। तात्पर्य यह है कि उमामुख चन्द्र और कमल, [जो] कि सामान्यतः मुख के उपमान बनते हैं, दोनों से बढ़कर था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार है क्योंकि इसमें उपमान[भूत] चन्द्र और कमल की अपेक्षा उपमेयभूत उमामुख में अधिक गुण बताये गये [हैं।] चन्द्रमा में केवल आह्लादक गुण एवं कमल में केवल सौरभ्य गुण होता है [पर] उमामुख में ये दोनों गुण एक साथ और सदा एक साथ रहने वाले थे। उपजा[ति] नामक छन्द है।

समासादि—पद्मस्य गुणाः तान्—पद्मगुणान्। पद्मम्आश्रिता पद्माश्रिता। चन्द्रमसः इयम् चान्द्रमसी ताम्—चान्द्रमसीम्। द्वे चन्द्रपद्म आश्रयः यस्याः [ताः] ताम्—द्विसंश्रयाम्। उमायाः मुखम्—उमामुखम्।

संस्कृत व्याख्या—लोला = चञ्चला भ्रमणशीलेत्यर्थः, लक्ष्मीः = [?] कान्त्यभिमानिनी देवतेत्यर्थः। चन्द्रम् = शशिनम्, गता = प्राप्ता (सती) पद्मगुणान् = सौगन्ध्यादीन् कमल गुणान्, न भुङ्क्ते = नानुभवति, निशि कम[ल] विकासाभावादित्यर्थः पद्माश्रिता (सती) = कमला श्रिता, चान्द्रमसीम् = चन्द्र[स]म्बन्धिनीम्, अभिख्याम् = शोभाम्, (न भुङ्क्ते) दिवसे चन्द्रमसोऽदर्शनादित्य[र्थः] उमामुखम् = पार्वतीवदनम्, प्रतिपद्य = समधिगम्य तु, द्विसंश्रयाम् = उभयगु[णा]श्रयाम्, प्रीतिम् आनन्दम्, अवाप = सम्प्राप।

संस्कृत सरलार्थ—सर्वदा सम्भ्रमणशीला कान्त्यभिमानिनी देवता लक्ष्मी रात्रौ पूर्णचद्रं प्राप्ता सती कमलगतान् सौरभ्यादीन् गुणान् नानुभवति, निशि कमलविकासाभावेन तद्गत सौरभ्यादेरप्यभावत्, अथ च कमलाश्रिता सती [?] चन्द्रगतान् आह्लादकत्वरमणीयत्वादिकान् गुणान्नानुभवति, दिवसे चन्द्रमसोऽदर्[शनात्]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नात्। सर्वकालरमणीयं नैसर्गिकं सौरभ्याभिरामं पार्वतीवदनमधिगम्य तु सा चन्द्रकमलोभयजन्यानन्दानुभूतिं प्राप।

टिप्पणी—लोला = चञ्चला "चलनं = कम्पनं कम्पं चलं लोलम् इत्यमरः। चन्द्रतीति चन्द्रः चदि आह्लादने से औणादिक रक् प्रत्यय। चान्द्रमसीम्—चन्द्रमस् शब्दात् तस्येद मित्यण टिड्ढाणञिति ङीप्। अभिख्याम्—शोभाम्" अभिख्या नामशोभयोः इत्यमरः। प्रतिपद्य = प्रति + पद – क्त्वाल्यप्, अवाप—अव + आप् लिट्। भुङ्क्ते = भुजोऽनवने इत्यात्मनेपदम् = अनुभवतीत्यर्थः। प्रीतिम् = प्रीञ तर्पणे क्तिन्।

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुट विद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥४४॥

प्रसंग—मुखावयवों के वर्णनावसर पर पहले मन्दस्मित का वर्णन है।

अन्वय—पुष्पं प्रवालोपहितम् स्यात् यदि मुक्ताफलम् वा स्फुट विद्रुमस्थम् स्यात्, ततः विशदस्य ताम्रौष्ठ पर्यस्तरुचः तस्याः स्मितस्य अनुकुर्यात्।

शब्दार्थ—पुष्पम् = श्वेतकुसुम पुण्डरीक आदि, प्रवालोपहितम् = बालपल्लव अर्थात् कोंपलों पर रखा हुआ, यदि स्यात् = अगर हो, वा = अथवा, मुक्ताफलम् = मौक्तिक मोती (यदि) स्फुट विद्रुमस्थम् स्यात् = निर्मल या उज्जवल लाल मूँगे पर स्थित हो, ततः = तब, विशदस्य = श्वेत वर्ण के, ताम्रौष्ठ पर्यस्त्रुचः = लाल वर्ण के ओठों पर फैली हुई कान्ति वाले, (पर्यस्त = फैले हुये, रुचः = कान्ति वाले) तस्याः = उस पार्वती के, स्मितस्य = मन्द मुस्कान का, अनुकुर्यात् = अनुकरण कर सकता है।

अनुवाद—यदि श्वेत पुष्प नई कोंपलों के बीच रखा हो, अथवा यदि मोती, लाल मूँगे पर स्थित हो तब (दोनों में से कोई एक) श्वेत वर्ण के, तथा लाल ओष्ठों पर फैली हुई कान्ति वाले इस पार्वती के मन्दस्मित का अनुकरण कर सकता है।

भावार्थ—पार्वती के मन्दहास का वर्णन करता हुआ, कवि कहता है कि वस्तुतः उनका मन्द हास अनुपमेय एवं अनुकरणीय है, उनके लाल-लाल ओष्ठों पर जिसकी कान्ति फैली हुई है ऐसे उनके श्वेत मन्दहास का सम्भवतः वह श्वेत पुष्प ही जो कि नई निकली हुई लाल-लाल कोंपलों के बीच स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हो, अनुकरण कर सकता है, अथवा वह श्वेत मोती ही, जो कि उज्ज्व विद्रुम अथवा लाल मूँगे के बीच स्थित हो, उसका अनुकरण कर सकता है साधारण स्वाभाविक अवस्था में स्थित कोई भी पदार्थ उनके स्मित का अनु-करण नहीं कर सकता है।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूपा अतिशयोक्ति अलंकार है। क्योंकि पुष्प और प्रवाल में, मुक्ता तथा विद्रुम में सम्बन्ध होने पर भी यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना की गई है और व कल्पना यद्यर्थद्वारा भी की गई है अतः उक्त अलंकार है।

वस्तुतः यहाँ पुष्प और मुक्ताफल उपमान हैं और पार्वती का स्मि उपमेय है किन्तु इस श्लोक में पुष्प और मुक्ताफल को उपमेय मानकर, पार्व के स्मित को उपमान माना गया है, अर्थात् दोनों को विपरीत दशा में वर्णि किया गया है अतः यहाँ **प्रतीप** नामक अलंकार है जैसा साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण लिखा है :—

"प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥

इस दृष्टि से यहाँ असम्बन्धेऽपि सम्बन्धोक्तिरूपा अतिशयोक्ति से अनु प्राणित प्रतीप अलंकार मानना चाहिए।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—प्रवाले उपहितम्-प्रवालोपहितम्। मुक्ता एव फलम्—मुक्ता फलम् (मयूरव्यंसकादिसमासः) स्फुटश्चासौ विद्रुमः स्फुट विद्रुमः स्फुटविद्रुमे तिष्ठतीति स्फुटविद्रुमस्थम् (उपपद तत्पुरुषः), ताम्रश्चासौ ओष्ठः ताम्रौष्ठः तत्र पर्यस्ता रुक् यस्य तत् तस्य-ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः।

संस्कृत व्याख्या—पुष्पम्—श्वेतकुसुमम्, प्रवालोपहितम् = वालपल्लवे निहितम्, यदि = चेत्, स्यात्—भवेत्, मुक्ताफलम् = मौक्तिकम् वा, स्फु विद्रुमस्थम् = निर्मल प्रवाल स्थितम्, (स्यात्) ततः = तर्हि, विशदस्य = उज्जवलस्य, ताम्रौष्ठ पर्यस्तरुचः = अरुणाधरप्रसृत कान्तेः, तस्याः—पार्वत्याः स्मितस्य = मन्दहासस्य, अनुकुर्यात् = सादृश्यमाप्नुयात्।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत सरलार्थ—यदि कुत्रचित् कथमपि नववालपल्लवविनिहितं श्वेत कुसुमम्, निर्मल प्रवाल-स्थितं मौक्तिकं वा समुपलभ्येत तदैवानयोरुपमान भूतयोरन्यतरत्, समधिक धवलस्य अरुण-दन्तच्छदप्रसृत कान्ते रुपमेय भूतस्योमामन्दहासस्यानुपमेय कान्ति मनुकर्तुं पारयेत् ।

टिप्पणी—प्रवालोपहितम् "प्रवालो वल्लकी दण्डे विद्रुमे वालपल्लवे" उप +धा+क्त=उपहितम् । "दधातेर्हि" इति धा इत्यस्य हि, **पुष्पम्**—यद्यपि यहाँ सामान्य पुष्प शब्द का ही प्रयोग है तथापि उपमानोपमेय भावानुरोध से यहाँ इसका अर्थ श्वेत पुष्प ही ग्रहण किया जायेगा **स्फुटविद्रुमस्थम्**—स्फुट=निर्मल अथवा उज्जवल, विद्रुम=लाल मूँगा या प्रवाल 'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुन्नपुसकम्" इत्यमरः । विद्रुमे तिष्ठतीति विग्रहे 'सुपिस्थः' इति क प्रत्यये आकारलोपे विद्रुमस्थम् । मूँगा गोल एवं कुछ लम्वा लाल रंग का होता है, उमा के ओष्ठ भी इसी प्रकार लाल थे, अभिनय पल्लवों का रंग भी लाल होता है मौक्तिक या मोती श्वेत वर्ण का होता है, अतएव यहाँ पुष्प को श्वेत माना गया है । हास या मन्दहास का रंग साहित्य में श्वेत माना जाता है, वह सम्भवतः इसीलिये क्योंकि मन्दहास के समय श्वेत दाँत कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने लगते हैं और उनकी श्वेत कान्ति ओठों पर पड़ने लगती है **ताम्रौष्ठेति**—ताम्रचासौ ओष्ठः ताम्रौष्ठः ताम्रोष्ठो वा 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' से विकल्पतः पर रूप होता है । "ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी **स्मितस्य** स्मिङ् ईषद्धसने क्त "ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरम्" साहित्य दर्पण । अन्यत्र तु "ईषद्विकसितैर्दन्तैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितम् । अलक्षित द्विज द्वारमुत्तमानां स्मितं भवेत्" **स्मितस्य अनुकुर्यात्** यहाँ तुल्यार्थैरित्यादिना पाक्षिक षष्ठी विभक्ति है ।

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजात वाचि ।
अप्यन्य पुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥४५॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में वचनों का वर्णन है ।

अन्वय—अभिजातवाचि तस्याम् अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायाम् (सत्याम्) अन्यपुष्टा अपि ताड्यमाना वितन्त्री इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा (भवति)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

शब्दार्थ—अभिजातवाचि=मधुर वाणी बोलने वाली, तस्याम्=उ पार्वती के, अमृतस्रुता=अमृत-स्रावी, इव=के समान, स्वरेण=स्वर के द्वारा प्रजल्पितायाम्=बात करती हुई, (सत्याम्=) होने पर, अन्यपुष्टा अपि= =कोयल भी, ताड्यमाना=बजाई जाती हुई, वितन्त्री: इव=विषमवद्ध वीणा के समान, श्रोतु:=सुनने वाले को, प्रतिकूल शब्दा=कर्णकटु ना वाली (भवति=होती है)।

अनुवाद—मधुर वाणी बोलने वाली उस पार्वती के, अमृतस्रावी जैसे स्व से बातचीत करने पर, कोयल भी (अनभिज्ञ) लोगों द्वारा बजाई जाती हु विषमवद्ध वीणा के समान, सुनने वाले को कर्ण कटु नाद वाली लगती है।

भावार्थ—पार्वती स्वभावत: मधुर भाषिणी थीं अतएव जब वे अ अमृतस्रावी जैसे स्वर से बातचीत करने का उपक्रम करती थीं तो उस सम कोयल भी, अनभिज्ञ लोगों द्वारा बजाई जाती हुई वीणा के समान, सुन वाले के लिए कठोर स्वर वाली जान पड़ने लगती थी।

मधुर स्वर के लिये कोयल का स्वर ही उपमान माना गया है, कि पार्वती का स्वर इससे भी अधिक मधुर था अतएव उनके बोलने पर कोय का स्वर, उसी प्रकार कर्कश प्रतीत होता था जिस प्रकार एक विषमब वीणा का स्वर कर्कश प्रतीत होता है जबकि वीणा वादन में अनभिज्ञ लो द्वारा वह बजाई जाती है। वीणा का स्वर भी मधुर होता है जबकि उसके ता स्वरों के अनुकूल मिले हुए हों और वह वीणा वादन में कुशल व्यक्ति द्वा बजाई जा रही हो, अन्यथा उसका भी स्वर कर्कश ही लगेगा।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में उपमालङ्कार है, क्योंकि यहाँ पार्वती मधुर स्वर की तुलना में कोकिल स्वर को भी विस्वरतन्त्री के समान कर्ण बतलाया गया है।

वस्तुत: यहाँ व्यतिरेकालंकार है, क्योंकि यहाँ उपमानभूत कोकिल कू से भी उत्कृष्ट उपमेय भूत पार्वती के स्वर को बतलाया गया है।

उपजाति छन्द है।

समासादि—अभिजाता वाक् यस्या: सा तस्याम्—अभिजातवाचि। अ स्रवतीति अमृतस्रुत् तेन अमृतस्रुता (उपपद तत्पुरुष) प्रकर्षेण जल्पिता तस्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रजल्पितायाम् (प्रादितत्पु०) अन्यैः पुष्टा अन्य पुष्टा । विषमवद्धा तन्त्रीः— वितन्त्रीः (मध्यपदलोपितत्पु०) प्रतिकूलाः शब्दाः यस्याः सा—प्रतिकूल शब्दा ।

संस्कृत व्याख्या—अभिजातवाचि = मधुरवाण्याम्, तस्याम् = पार्वत्याम्, अमृतस्रुता = पीयूषनिस्यन्दिना, इव, स्वरेण = ध्वनिना, प्रजल्पितायाम् = प्रवदन्त्याम् (सत्याम्) अन्यपुष्टा = कोकिला अपि, ताड्यमाना....आहन्यमाना (तन्त्रीवादनानभिज्ञैरित्यर्थः, वितन्त्रीः = विषमवद्धा वीणा, इव, श्रोतुः = आकर्णयितुः, प्रतिकूलशब्दा = कर्णकटुनादा (भवति) ।

संस्कृत सरलार्थ—सुमधुरभाषिण्यां तस्यां पार्वत्यां पीयूषस्राविणेव नादेन वक्तुमुपक्रान्तायां सत्याम्, वीणावादन कलानभिज्ञैर्जनैरभि हन्यमाना विषमवद्धा वीणेव स्वरमाधुर्यगुणातिशयविशिष्टापि कोकिला श्रोतुः कर्णकटुनादा भवति ।

टिप्पणी—अभिजातिवाचि—अभिजात शब्द का, सामान्यतः प्रयोग उच्चकुलोत्पन्न अथवा उदात्त एवं सुन्दर उत्पत्ति वाले व्यक्ति के लिये होता है और ऐसे व्यक्ति प्रायः मधुरभाषी होते भी हैं। इसी आशय से सम्भवतः यहाँ इस शब्द का प्रयोग मधुर अर्थ में किया गया है। क्योंकि पर्वतराजपुत्री पार्वती मधुरभाषिणी थीं। **अमृतस्रुता**—अमृतं स्रवतीत्यर्थे क्विप् प्रत्ययः तुगागमश्च । **प्रजल्पितायाम्**—प्र + जल्प् + क्त इट स्त्रीत्वे टाप्, **अन्यपुष्टा**—दूसरों अर्थात् कौवों द्वारा पालिता, यह प्रसिद्धि है कि कोयल अपने अण्डों या बच्चों को कौवों के घोंसलों में चुपचाप रख आती है, कोयल और कौवों के बच्चों का रंग एक-सा ही होता है, इस भ्रम से कौवे उसके बच्चों का पालन करते रहते हैं, बड़े होने पर कोयल के बच्चे अपने झुण्ड में मिल जाते हैं, इसी कारण अन्यपुष्टा शब्द कोकिल के अर्थ में रुढ हो गया है। **ताड्यमाना**—ताड्यते इति ताड्यमाना ताड्—य + शानच् + टाप् । **वितन्त्रीः**—उणादि ई प्रत्ययान्त होने के कारण ङीबन्त न होने से यहाँ प्रथमैक वचन में सुलोप नहीं होगा। तारों से निर्मित होने के कारण ही तन्त्री कहा जाता है। श्रोतुः—श्रु + तृच् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेष मधीर विप्रेक्षित मायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः॥४

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में कटाक्षविक्षेप का वर्णन है।

अन्वय—प्रवातनीलोत्पल निर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयता[क्ष्या] तया मृगाङ्गनाभ्यः गृहीतम् नु, मृगाङ्गनाभिः ततो गृहीतम् नु।

शब्दार्थ—प्रवातनीलोत्पल निर्विशेषम्=उत्कृष्ट वायु (प्रवा[त]) वाले स्थान पर, नीलकमल के समान (निर्विशेषम्=अभिन्न या सम[ान]) अधीरविप्रेक्षितम्=अस्थिर या चञ्चल अवलोकन, अथवा चकितविलो[कन] आयताक्ष्या=विशाल नेत्रों वाली (आयत=दीर्घ या विशाल) तया=[उस] पार्वती के द्वारा, मृगाङ्गनाभ्यः=मृगियों से, गृहीतम् नु=ग्रहण किया [गया] अथवा अभ्यस्त किया गया या सीखा गया क्या (नु=वितर्क—[क्या]) मृगाङ्गनाभिः=हरिणियों द्वारा ततः=उस पार्वती से, गृहीतं नु=सी[खा] गया क्या।

अनुवाद—समुचित या चारु वायुस्थल में (स्थित) नीलकमल के स[मान] चकित विलोकन को विशालाक्षी उस पार्वती ने, क्या हरिणियों से सीखा अथवा हरिणियों ने ही पार्वती से सीखा था?

भावार्थ—पार्वती के नेत्र विशाल एवं उस नील कमल के सदृश [थे] कि किसी ऐसे स्थल पर स्थित हों जहाँ कि उसे अपेक्षित वायु इधर-[उधर] हिला रही हो। पार्वती के ये नेत्र स्वभावतः चञ्चल थे उसी प्रकार [जैसे] मृगियों के नेत्र चञ्चल एवं चकित विलोकन वाले होते हैं। पार्वती के [इस] स्वाभाविक चकित विलोकन के लिये कवि कहता है कि क्या पार्वती ने [इसे] मृगियों से सीखा था अथवा मृगियों ने ही इसे पार्वती से सीखा था, [वस्तुतः] कुछ नहीं कहा जा सकता कि किसने किससे सीखा था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में परस्पर ग्रहण की उत्प्रेक्षा या सम्भा[वना] की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है, परन्तु अन्त में इस बात को सन्देहास्[पद] छोड़ दिया गया है कि किसने किससे चकित विलोकन ग्रहण किया था—[अतः] सन्देहालंकार भी है। इस प्रकार एकाश्रय में उक्त दोनों अलंकारों का अ[ङ्गा]ङ्गीभाव होने से संकर है, यथा—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अङ्गाङ्गित्वेऽलंकृतीनां तद्वदेकाश्रय स्थितौ ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः ॥

उपेन्द्रवज्रा नामक छन्द है ।

समासादि—प्रकृष्टा वाताः यत्र स्थले तत् प्रवातम् नीलं च तदुत्पलं नीलोत्पलम्, प्रवाते नीलोत्पलं प्रवात नीलोत्पलम्, विशेषात् निर्गत निर्विशेषम्, प्रवातनीलोत्पलात् निर्विशेषम् इति प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम्, । न धीरम् अधीरम्, प्रकृष्टम् ईक्षितम्-प्रेक्षितम् विशिष्टं च तत् प्रेक्षितं विप्रेक्षितम् अधीरं च तत् विप्रेक्षितम्—अधीर विप्रेक्षितम् । आयते अक्षिणी यस्याः सा तया—आयताक्ष्या, मृगाणाम् अङ्गनाः ताभ्यः मृगाङ्गनाभ्यः, मृगाणामङ्गनाः ताभिः—मृगाङ्नाभिः ।

संस्कृत व्याख्या—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् = प्रकृष्ट वायुस्थल स्थित कुवलय सदृशम्, अधीर विप्रेक्षितम् = चकितविलोकितम्, आयताक्ष्या = विशाललोचनया, तया = पार्वत्या, मृगाङ्नाभ्यः = मृगीभ्यः, गृहीतम् नु = अभ्यस्तं नु, मृगाङ्नाभिः = हरिणीभिः, ततः = पार्वत्याः, गृहीतं नु = अभ्यस्तं नु ।

संस्कृत सरलार्थ—प्रकृष्टपवनावधूयमानत्वादतिचञ्चलकुवलयसदृशं चञ्चल कटाक्षविक्षेपणं विशाललोचनया पार्वत्या किं मृगीसकाशादभ्यस्तम-थवा मृगीभिरेव तस्याः पार्वत्याः सकाशदभ्यस्तमिति न जानीमो वयम् ।

टिप्पणी—प्रवातेति—टीकाकारों ने प्रायः प्रवात का अर्थ प्रभूत वायु लिया है, पर मेरी दृष्टि से यदि इसका अर्थ प्रभूत वायु या आँधी अर्थ लिया जायेगा तो इस पद का सारा भाव सौन्दर्य ही समाप्त हो जायेगा, उपमानोपमेय भाव भी न बन पायेगा, अतः प्रवात का अर्थ प्रकृष्ट वायु जानकर अर्थ करना ठीक होगा, प्रकृष्ट वायु से आशय है वह वायु जो स्वच्छन्द निरवरोध गतिमान हो और जो कि खुले विस्तार में जल या स्थल में नातिमन्द और नातितीव्र गति से बहता हुआ नीलोत्पलों को चारों ओर हिला रहा हो । जल या स्थल पर विकसित नीलोत्पल पर्याप्त वायुस्पर्श से स्वतः चञ्चल हो हिलने डुलने लगते हैं । कवि ने इस पद से पार्वती के नेत्रगत स्वाभाविक चाञ्चल्य की ओर संकेत किया है । उत्पल शब्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

का प्रयोग सामान्यतः नीलकमल के ही अर्थ में देखा जाता है फिर भी नीलविशेषण सम्भवतः देवी के नेत्रगत नीलाधिक्य द्योतनार्थ है जिससे नेत्रों में श्यामता स्निग्धता एवं चञ्चलता का बोध हो सके। अधीरविप्रेक्षि मृगियाँ इधर-उधर से कोई शब्द सुनकर या आहट पाकर तुर इधर-उधर चकित दृष्टि से देखने लगती हैं उनके इस प्रकार के देखने में के साथ-साथ अनोखा भोलापन भी रहता है जो कि आकर्षक होता है। में इस प्रकार का चञ्चल दृष्टिपात स्वाभाविक था। युवतियों के चञ्च कटाक्ष विक्षेपण के लिये कवि ने अनेक स्थलों पर चकितमृगीप्रेक्षण प्रयोग किया है—भवभूति का "त्रस्तैकहायनविलोलकुरङ्गदृष्टेः" पद यही भाव प्रदर्शित कर रहा है। निर्विशेषम् इसका अर्थ अभिन्न सदृश आदि होता है यहाँ विशेषात् निर्गतम् इस अर्थ में निरादय—वार्तिक से तत्पुरुष है। आयताक्ष्या में समामान्त षच् प्रत्यय के वाद षित्वात् ङीप् प्र है, "दीर्घमायतम्"।

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयो र्या।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचाप सौन्दर्यमदं मुमोच ॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में भ्रूलताओं का वर्णन है।

अन्वय—आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाञ्जननिर्मिता इव कान्तिः लीलाचतुराम् ताम् वीक्ष्य अनङ्गः स्वचाप सौन्दर्यमदम् मुमोच।

शब्दार्थ—आयतलेखयोः = दीर्घ रेखा वालीं, तस्याः = उस पार्वती भ्रुवोः = भौंहों की, शलाकाञ्जननिर्मिता इव = तूलिका या कूर्चिका कज्जल से विरचित सी मानो, या कान्तिः = जो शोभा (थी) लीलाच = विलाससुभगा, ताम् = उस (कान्ति) को, वीक्ष्य = देखकर, अनङ्ग कामदेव ने, स्वचाप सौन्दर्यमदम् = अपने धनुष के सौन्दर्याभिमान को, = छोड़ दिया।

अनुवाद—दीर्घ रेखा वालीं उस पार्वती की भौंहों की, कूर्चिका या सलाई) के कज्जल से विरचित जैसी मानो जो शोभा (थी) विलास उस शोभा को देखकर कामदेव ने अपने धनुष् के सौन्दर्य के गर्व को दिया था।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

भावार्थ—युवतियों की भ्रूलता की तुलना प्रायः कामधनुष् से की जाती है, क्योंकि दोनों में वक्रता सौन्दर्य होता है, पुष्पधन्वा कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा मधुकरमयी होती है। पार्वती आयताक्षी थीं अतएव उनकी भ्रूलता आयत रेखा वाली थी जिसको कि मानो सलाई (शलाका) युक्त काजल से बनाया गया था अतएव वह कृष्णवर्ण पतली लम्बी और काले वालों तथा धनुष के समान वक्र थी, इसकी जो विशेषकान्ति थी उसे देखकर कामदेव ने भी अपने धनुष के सौन्दर्यमद को त्याग दिया था। अर्थात् देवी की भ्रूलता कामदेव के धनुष् से भी अधिक सुन्दर थी।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक के "शलाकाञ्जन निर्मितेव" में उत्प्रेक्षा तथा सम्पूर्ण श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है।

उपजाति छन्द है।

समासादि—आयता लेखा ययोस्ते आयतलेखे तयोः—आयतलेखयोः शलाकायाः अञ्जनम् अथवा शलाकायुक्तम् अञ्जनम् शलाकाज्जनम् तेन निर्मिता —शलाकाञ्जननिर्मिता। लीलाभिः चतुरा ताम्—लीलाचतुराम्। अविद्य-मानम् अङ्गम् यस्य सः अनङ्गः। स्वस्य चापः स्वचापः, सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्, स्वचापस्य सौन्दर्यम् स्वचापसौन्दर्यम् तस्य मदः तम्-स्वचाप-सौन्दर्यमदम्।

संस्कृत व्याख्या—आयतलेखयोः—दीर्घरेखयोः, तस्याः=पार्वत्याः, भ्रुवोः —नेत्रोर्ध्वरोमराज्योः, शलाकाञ्जननिर्मिता=तूलिकाकञ्जलविरचिता, इव (स्थिता) या कान्तिः=या शोभा (सञ्जाता) लीलाचतुराम्=विलास सुभगाम्, ताम् कान्तिम्, वीक्ष्य=अवलोक्य, अनङ्गः=कामः, स्वचाप-सौन्दर्यमदम्=आत्मधनुर्लावण्याभिमानम्। मुमोच=त्यक्तवान्।

संस्कृत सरलार्थ—आयतरेखयोः पार्वत्या भ्रुवोः तूलिकाया अञ्जनेन विरचितेव या शोभा आसीत्। विलास सुभगां तां शोभां समीक्ष्य पुष्पधन्वा कामः स्वधनुषो मनोहारित्वगर्वं परित्यक्तवान्।

टिप्पणी—आयतलेखयोः—पार्वती आयताक्षी थीं अतएव उनकी भ्रूलतायें भी तदनुकूल आयतरेखा वालीं थी। **शलाकाञ्जननिर्मिता इव**=प्रायः सभी टीकाकारों ने शलाका का अर्थ तूलिका कूर्चिका कूंची आदि ही किया है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यह उनके मत से वही तूलिका है जिससे चित्रों पर रंग भरा जाता है। पर मेरी दृष्टि से शलाका का अर्थ सलाई है जिससे नेत्रों में कज्जल या अञ्जन लगाया जाता है, जो कि चिकनी, गोल, पतली और लम्बी होती है और किसी उत्तम धातु की बनी होती है, अतः इसका अर्थ है कि जैसे शलाका द्वारा अञ्जन लगाने से आँखों में श्यामता गहरी हो जाती है उसी प्रकार मानो शलाका के अञ्जन से रंगने के कारण उनकी भौंहों में श्यामता गहरी हो गई थी, वस्तुतः युवतियों की भौंहों के बाल स्वतः काले और आंखों की लम्बाई के बराबर धनुषाकार होते ही हैं, उनमें रंग भरने की आवश्यकता नहीं होती। **लीलाचतुराम्**—लीला = विलास, चतुरा = सुन्दर, **वीक्ष्य**—वि + ईक्ष् + क्त्वा ल्यप्, **आयत**—आ — यम् + क्त। **स्वचापेति**—भौंहों की वक्रता के सौन्दर्य की कामदेव के धनुष् की वक्रता के सौन्दर्य से तुलना की है, एक टीकाकार ने 'स्वचाप-सौन्दर्य' का अर्थ स्व धनुः पराक्रम किया है उनका आशय यह है कि वस्तुतः पुष्प धन्वा कामदेव अपने धनुष् के पराक्रम से ही त्रिलोक विजयी बना है उसको अपने धनुष् के इस पराक्रम का ही गर्व है, धनुषाकार भौंहों में भी ऐसा ही वशीकरण पराक्रम होता है, और कभी-कभी तो इससे भी बढ़ कर, अतएव युवतियों की भौंहें काम-धनुष का और उनके कटाक्ष काम के पुष्पबाणो का काम करते हैं। कालिदास ने स्वयं इसी भाव को उत्तरमेघ के "प्रायश्चापं न वहति भयादित्यादि श्लोक में दिखलाया है।

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्यु र्वालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ॥४८॥

प्रसंग—इस श्लोक में देवी के केशपाश का वर्णन है।

अन्वय—तिरश्चाम् चेतसि लज्जा स्यात् यदि, असंयम् पर्वतराजपुत्र्याः तम् केशपाशम् प्रसमीक्ष्य चमर्यः बालप्रियत्वम् शिथिलम् कुर्युः।

शब्दार्थ—तिरश्चाम् = तिर्यक् (टेढी) गति वाले पशु-पक्षी आदि के, चेतसि = चित्त में, लज्जा = लाज, यदि = अगर, स्यात् = होती, तो, असंयम् = निःसन्देह, पर्वतराज पुत्र्याः = पर्वतराज हिमालय की पुत्री अर्थात् पार्वती के,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तं केशपाशम् = उस प्रसिद्ध केशकलाप को, प्रसमीक्ष्य = देखकर, चमर्यः = चमरी नाम की विशेष प्रकार की हरिणियाँ, वालप्रियत्वम् = अपने वालों की प्रियता को, शिथिलम् कुर्युः = कम कर देतीं।

अनुवाद—यदि तिर्यक योनि के जीवों—पशुपक्षियों के चित्त में लज्जा होती तो वे निःसन्देह, पर्वतराजपुत्री पार्वती के उस प्रसिद्ध केशपाश को देखकर चमरी मृगियाँ अपनी वालप्रियता को कम कर देतीं।

भावार्थ—चमरी मृगी अथवा गायें, इनके पूँछ के वाल सघन चिकने एवं लम्बे होते है इनसे ही चँवर बनते हैं, स्त्रियों के सघन, लम्बे एवं काले केश सौन्दर्याधायक माने जाते हैं। कवि का अभिप्राय है कि तिर्यग्गति वाले जीवों में लज्जा नहीं होती, यदि उनके चित्त में लज्जा होती तो निःसन्देह वे पार्वती के केशपाश को देखकर और लज्जित होकर अपने वालों के सुन्दर होने का गर्व अथवा उनका प्यार छोड़ देते, पर वे ऐसा नहीं करते तो इसमें उनकी निर्लज्जता ही कारण है।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है, क्योंकि यहाँ पार्वती के केशपाश के सामने रहते हुये भी मृगियों का स्ववालप्रियत्व न छोड़ना उनकी निर्लज्जता के कारण ही है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—असंशयम् = संशयस्य अभावः इति असंशयम् (अव्ययी भावः) पर्वतानां राजा पर्वतराजः तस्य पुत्री तस्याः पर्वतराज पुत्र्याः। केशानाम् पाशः तम्—केशपाशम्। प्रीणन्ति इति प्रियाः, बालाः प्रियाः यासाम् ताः वालप्रियाः तासाम् भावः बालप्रियत्वम्।

संस्कृत व्याख्या—तिरश्चाम् तिर्यग्गतीनाम् पशु-पक्ष्यादीनाम्, चेतसि = चित्ते, यदि चेत्, लज्जा = त्रपा, स्यात् भवेत्। असंशयम् = निःसन्देहम्, पर्वतराजपुत्र्याः = पर्वतराजस्य हिमालयस्य सुतायाः पार्वत्याः, केशपाशम् = कुन्तलकलापम्, प्रसमीक्ष्य = विलोक्य, चमर्यः = मृगीविशेषाः, वालप्रियत्वम् = प्रियकुन्तलत्वम्, शिथिलम् = अल्पं न्यूनम् वा, कुर्युः = विदध्युः।

संस्कृत सरलार्थ—मानवानामिव तिर्यग्गतीनां पशुपक्ष्यादीनामपि चेतसि स्वगुणापेक्षयान्यत्र गुणाधिक दर्शनेन यदि लज्जाभावोदयो भवेत्तर्हि चमर्यः मृग्यः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पार्वतीकेशपाशावलोकनानन्तरं तत्केशपाशगतस्वाभाविक सौरभ्यादिगुणा... स्ववालेष्व भावमालक्ष्य लज्जया स्ववालप्रियतादरं न कुर्वीरन् ।

टिप्पणी—**तिरश्चाम्**—तिरःअञ्चति इति तिर्यङ् तेषाम् तिरश्चाम्—मनुष्यातिरिक्त पशु पक्षियों की गति टेढ़ी होती है, अतएव इन्हें तिर्यगा... कहा जाता है। **असंशयम्**—संशयस्य अभावः इत्यर्थे "अव्ययं विभक्तीत्यादिना समासे, अव्ययीभावश्चेति नपुंसकत्वम्। **पर्वतराजपुत्र्याः**—पर्वतानां राजा इति पर्वतराजः समासान्तष्टच्, तस्य पुत्री, पुत्रशब्दात् "शार्ङ्गखाद्यञोङीन्" ङी... प्रत्यये पुत्री, तस्याः। **केशपाशम्**—केशानां पाशस्तम्, पाश अर्थात् कलाप=कुन्तल कलाप "चिकुरःकुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः" **वालप्रियत्व**... वालाः प्रियाः यासां ताः तासां भावः वालप्रियत्वम् अर्थात् प्रियवालत्व, बहुव्रीहि समास में प्रिय शब्द का प्रयोग पूर्व तथा पर दोनों ही स्थानों पर हो सकता है, "त्वतलोर्गुणवचनस्य" के अनुसार पुंवद्भाव भी हो जाता है अतः वाल...यत्वम् एवं प्रियवालस्य दोनों ही प्रयोग होते हैं।

सर्वोपमाद्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्ना देकस्थसौन्दर्य दिदृक्षयेव ॥४९॥

प्रसंग—यहाँ तक देवी के प्रधान अङ्गावयवों का वर्णन कर प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि अब इस प्रकृत वर्णन का उपसंहार करता है।

अन्वय—सा विश्वसृजा एकस्थ-सौन्दर्यदिदृक्षया इव प्रयत्नात् यथा प्रदेशं विनिवेशितेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता ।

शब्दार्थ—सा=वह पार्वती, विश्वसृजा=विश्व की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा, एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव=एक ही स्थान पर सौन्दर्य देखने की इच्छा से मानो, प्रयत्नात्=प्रयत्नपूर्वक, यथाप्रदेशम्=क्रम-... से उचित अङ्गावयवों पर, विनिवेशितेन=संस्थापित या विन्यस्त किये गये, सर्वोपमाद्रव्य समुच्चयेन=समस्त उपमानभूत पदार्थ समूह से, निर्मिता=बनाई गई थी।

अनुवाद—वह पार्वती, विश्व रचयिता ब्रह्मा द्वारा, मानो एक ही स्थान पर सौन्दर्य देखने की इच्छा से, प्रयत्नपूर्वक, उचित शरीरावयवों पर विन्यस्त किये गये समस्त उपमानभूत पदार्थ समूह से निर्मित की गई थी।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भावार्थ—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की मानो यह इच्छा थी कि वे एक ही स्थान पर सम्पूर्ण सौन्दर्य राशि को देख सकें अतएव उन्होंने बड़े प्रयत्नपूर्वक समस्त उपमानभूत पदार्थों को समुचित शरीरावयवों पर विन्यस्त करते हुये देवी को निर्मित किया था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में फलोत्प्रेक्षालंकार है, क्योंकि ब्रह्मा ने मानो एक ही स्थान पर समस्त सौन्दर्य को देखने की इच्छा से पार्वती को बनाया था।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—विश्वं सृजतीति विश्वसृट्‌तेन—विश्वसृजा (उपपद तत्पुरुष) एकस्मिन् तिष्ठतीति एकस्थम् सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्, एकस्थं च तत् सौन्दर्यम् एकस्थ सौन्दर्यम्, द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा, एकस्थ सौन्दर्यस्य दिदृक्षा तया-एकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षया। प्रकृष्टः यत्नः प्रयत्नस्तस्मात्-प्रयत्नात् (प्रादि-समासः) प्रदेश मनतिक्रम्य-यथा प्रदेशम्। विशेषेण निवेशितः विनिवेशितः (सुप्सुपेति समासः) तेन-विनिवेशितेन। उपमायाः द्रव्याणि उपमा द्रव्याणि सर्वाणि च तानि उपमा द्रव्याणि सर्वोपमाद्रव्याणि तेषां समुच्चयस्तेन—सर्वोपमा-द्रव्य समुच्चयेन।

संस्कृत व्याख्या—सा = पार्वती, विश्वसृजा = विधात्रा, एकस्थ सौन्दर्य-दिदृक्षया = एकत्रस्थित लावण्यावलोकनाभिलाषेण, इव, प्रयत्नात्—प्रकृष्टोद्य-मात्, यथा—प्रदेशम् = क्रमशः यथास्थानम्, विनिवेशितेन = संस्थापितेन विनि-हितेन वा, सर्वोपमाद्रव्य समुच्चयेन = समस्तोपमानभूतपदार्थसमाहारेण, निर्मिता = सृष्टा।

संस्कृत सरलार्थ—जगत्सृष्टिविधात्रा ब्रह्मणा एकस्थानगतसमस्तोपमान भूतलावण्यस्य द्रष्टुमिच्छयेव समुद्योगमाश्रित्य समुचितमुखनयनादिषु शरीरा-वयवेषु विन्यस्तेन चन्द्रकुवलयादि प्रसिद्धोपमानद्रव्यसमाहारेण सा देवी पार्वती निर्मितासीत्।

टिप्पणी—**विश्वसृजा**—"स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः" इत्यमरः। **एकस्थेति**—वस्तुतः पूर्णरूप से दिव्य सौन्दर्य का वर्णन सम्भव नहीं हो सकता, पार्वती का सौन्दर्य अनिर्वचनीय था, इसीलिये कवि को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gi

कल्पना है मानो सम्पूर्ण सौन्दर्य को एक स्थान पर देखने के लिये ही ब्रह्मा ने प्रयत्नपूर्वक पार्वती को बनाया था। अभिज्ञान शाकुन्तल के "चित्रे-निवेश्येत्यादि श्लोक में भी कवि का यही भाव है। **प्रयत्नात्**—यहाँ ल्यब्लोपे पञ्चमी है अर्थात् इसका अर्थ है—प्रयत्नमवलम्ब्य। यथा प्रदेशम् = जिस अंग में जिस ओर जितना और जैसा सौन्दर्य अपेक्षित था उसके अनुरूप ही। **विनिवेशितेन** = वि + नि + ण्यन्त विश् + क्त। **सर्वोपमेति**—समस्त उपमान-भूत पदार्थ समूह जैसे चन्द्र कमल आदि।

तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैक वधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥५०॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक से प्रकरणोपयोगी कथानक का आरम्भ करता हुआ कवि नारदागमन की सूचना देता है।

अन्वय—कामचरः नारदः कदाचित् पितुः समीपे कन्याम् ताम् प्रेक्ष्य किल, प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धहराम् एक वधूम् भवित्रीम् समादिदेश।

शब्दार्थ—कामचरः = स्वेच्छया विचरणशील, नारदः = नारद मुनि ने, कदाचित् = कभी एक वार, पितुः समीपे = पिता के पास, कन्याम् ताम् = उस कन्या पार्वती को, प्रेक्ष्य = देख कर, किल = निश्चय ही, प्रेम्णा = प्रेम से, हरस्य = शिव की, शरीरार्धहराम् = अर्धाङ्गिगी, एकवधूम् = अद्वितीय पत्नी, भवित्रीम् = होने वाली, समादि देश = बतलाया।

अनुवाद—स्वेच्छाचारी नारद मुनि ने एक वार पिता के पास उस कन्या पार्वती को देख कर प्रेम-पूर्वक उसे भगवान शिव की अर्धाङ्गिनी होने वाली, अद्वितीय पत्नी बतलाया अर्थात् यह भविष्यवाणी की यह कन्या भगवान् शिव की एकमात्र अर्धाङ्गिनी होगी।

भावार्थ—स्वेच्छया विचरणशील नारद जी जब एक बार गिरिराज हिमालय के पास पहुँचे और उन्होंने वहाँ अपने पिता के पास भगवती पार्वती को देखा तब उन्होंने बड़े प्रेम से यह भविष्यवाणी की कि यह कन्या निश्चय ही भगवान् शिव की एकमात्र अर्धाङ्गिनी होने वाली है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में 'क' वर्ण की पुनरावृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासः—कामेन चरतीति कामचरः (उप पद समास) अर्धहरतीति अर्धहरा शरीरस्य अर्धहरा ताम्=शरीरार्धहराम्। एका चासौ वधूः ताम्-एकवधूम्।

संस्कृत व्याख्या—कामचरः=स्वेच्छाचारी, नारदः=ब्रह्म-पुत्रः नारदो मुनिः, कदाचित्=कस्मिश्चित् काले, पितुः=जनकस्य हिमालयस्येत्यर्थः, समीपे=पार्श्वे, कन्याम्=कुमारीम्, ताम्=पार्वतीम्, प्रेक्ष्य=समवलोक्य, किल असंशयम्, प्रेम्णा=स्नेहेन, हरस्य=शिवस्य, शरीरार्धहराम्=अर्धाङ्गिनीम्, एकवधूम्=सपत्नीरहिताम् पत्नीम्, भवित्रीम् भाविनीम्, समादिदेश समादिष्टवान्।

संस्कृत सरलार्थ—स्वेच्छया विचरणशीलो नारदो मुनिः कदाचित् तां कुमारीं पार्वतीं, तज्जनकस्य हिमालस्य पार्श्वे समवलोक्य महता स्नेहेन तां शिवस्यार्धाङ्गिनीम् भाविनी मसपत्नी पत्कांनीं समादिष्टवान्।

टिप्पणी—कामचरः चर्धातोः ट प्रत्ययः। प्रेक्ष्य=प्र=ईक्ष क्त्वा—ल्यप्। शरीरार्धहराम्—अर्धं हरतींति विग्रहे अर्धं=हृ धातोः अच्+टाप। पत्नी को अर्धाङ्गिनी कहा गया है क्योंकि पति के आधे शरीर पर विशेषतया वामाङ्ग, पर उसका अधिकार होता है अतएव विना पत्नी के कोई भी पुण्य कार्य सफल नहीं होता, अतएव यज्ञादि पुण्य कार्यों में पत्नी को वाम भाग में बैठाया जाता है, भगवान् शिव को तो अर्धनारीश्वर कहा ही जाता है। एकवधूम्, इस पद के प्रयोग के द्वारा कवि ने यह सूचित किया है कि पार्वती की कोई सपत्नी न थी। एक वधू शब्द में "पूर्व-कालैकेत्यादिना" समास है। "वधू जाया स्नुषा स्त्री"।

भवित्रीम्—भूधातोस्तृच् ततः ङीप्—होने वाली।

समादिदेश—सम्+आ पूर्वक दिश् धातु से लिट् लकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः"
ऋते कृशानो र्नहि मन्त्रपूत मर्हन्ति तेजांस्य पराणि हव्यम् ॥५१॥

प्रसंग—नारद के समादेशा नन्तर हिमालय की प्रवृत्ति का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है

अन्वय—गुरुः अतः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराभिलाषः (सन्) तस्थौ मन्त्र पूतम् हव्यम् कृशानोः ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति।

शब्दार्थ—गुरुः = पिता अर्थात् हिमालय, अतः = इसलिये अर्थात् नारद के वचनों के कारण, अस्याः—इसके अर्थात् पार्वती के, प्रगल्भे वयसि अपि = यौवनावस्था में भी, निवृत्तान्यवराभिलाषः = अन्य वर की लालसा को त्यागे हुये, तस्थौ = बैठे रहे। कृशानोः ऋते = अग्नि के विना, मन्त्र पूतम् हव्यम् = मन्त्रों द्वारा पवित्रीकृत हवनीय पदार्थ को, अपराणि = अन्य, तेजांसि = तेज, सूर्य चन्द्रादि, न अर्हन्ति = ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं।

अनुवाद—पिता हिमालय, नारद जी के वचनों के कारण, पार्वती के यौवनावस्था में होने पर भी अन्य वर की अभिलाषा को त्यागे हुये बैठे रहे। अग्नि के बिना अन्य कोई तेज अर्थात् सूर्य चन्द्रादि, मन्त्रों से पवित्रीकृत हवनीय पदार्थ को ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं।

भावार्थ—नारद जी के इस कथन के कारण कि पार्वती शिव की अर्धाङ्गिनी होगीं, गिरिराज हिमालय, पार्वती के यौवनारुढ हो जाने पर भी, अन्य वर की अभिलाषा को छोड़े हुये बैठे रहे'। नारद जी के वचनों पर उन्हें पूर्ण विश्वास था अतएव वे पार्वती के यौवनारूढ होने पर भी निश्चिन्त बने रहे, पार्वती के लिये किसी अन्य वर की अभिलाषा नहीं की। कवि कहता है कि जैसे मन्त्र पूर्वक दी गई आहुति को केवल अग्नि देव ही ग्रहण कर सकते हैं अन्य सूर्य चन्द्रादि नहीं, उसी प्रकार भगवती पार्वती का पाणिग्रहण भी भगवान् शिव ही कर सकते हैं अन्य कोई नहीं।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में **अर्थान्तरन्यास** अलंकार है क्योंकि यहाँ वैधर्म्य द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है।

उपजाति नामक छन्द है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

समासादि—अन्यश्चासौ वरः अन्यवरः, अन्यवरे अभिलाषः अन्य वराभिलाषः निवृत्तः अन्यवराभिलाषः यस्य सः—निवृत्तान्यवराभिलाषः। मन्त्रेण पूतम्—मन्त्रपूतम्।

संस्कृत व्याख्या—गुरुः = पिता हिमालय इत्यर्थः, अतः = अस्मात् कारणात् नारद वचनादित्यर्थः। अस्याः = पार्वत्याः प्रगल्भे वयसि अपि = युवावस्थायाम् सत्यामपि, निवृत्तान्य वराभिलाषः = अपगतापरवरकामः (सन्) तस्थौ = स्थितः नान्यं वर मन्विष्टवानित्यर्थः। मन्त्रपूतम् = मन्त्रेण पवित्री-कृतम्, हव्यम् = हवनीयम् आज्यादिकम्, कृशानोः = पावकात्, ऋते = विना, अन्यानि = अपराणि, तेजांसि = सूर्य चन्द्रादीनि, न अर्हन्ति = गृहीतुं न योग्यानि भवन्ति।

संस्कृत सरलार्थ—नारदवचनेषु दृढविश्वासाद्धेतोः, पार्वती-पिता हिमालयः पार्वत्याः युवावस्थायां वर्तमानायां सत्या मपि तदर्थं शिवाद तिरिक्तं, नान्यं वर मन्विष्टवान् अपितु शान्तिमवलम्ब्य स्थितवान्। यतो मन्त्रसंस्कृतं हवनीयद्रव्य माज्यादिकं पावकाद् विना सूर्यचन्द्रादीन्य पराणि तेजां स्युपभोक्तुं न योग्यानि भवन्ति। मन्त्र पूतं हव्यं यथाग्नि रेवोप भोक्तु मर्हति तथैव पार्वतीं शिव एव नान्य इति भावः।

टिप्पणी—प्रगल्भे वयसि—युवावस्था प्राप्त कर लेने पर भी, विवाह योग्य हो जाने पर भी,

निवृत्तान्यवराभिलाषः—शिव के अतिरिक्त अन्य किसी वर की इच्छा त्याग देने वाले, अर्थात् हिमालय ने नारद जी के वचनों पर पूर्ण विश्वास करके पार्वती के लिये शिव को ही वर मान लिया था अतएव उन्होंने अन्य वर के लिये प्रयास नहीं किया। नि + वृत् + क्त = निवृत्त। **तस्थौ** ष्ठा धातु से लिट्। **पूतम्** — पू + क्त, **हव्यम्** — हूयते यत् तद, हू धातु से यत्। **कृशानोः**—ऋते के योग में पंञ्चमी विभक्ति।

अयाचितारं न हि देवदेव मद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे॥५२॥

प्रसंग—नारद वचनों से विश्वस्त होकर भी हिमालय ने भगवान् शिव से तदर्थं अभ्यर्थना क्यों नहीं की, इसी का कारण वतलाता हुआ कवि कहता है:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्वय—अद्रि: अयाचितारम् देवदेवम् सुताम् ग्राहयितुम् न शशाक साधु: अभ्यर्थनाभङ्गभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थ्यम् अवलम्बते ।

शब्दार्थ—अद्रि: = हिमालय, अयाचितारम् = न माँगने वाले, देव देवम् = महादेव को, सुताम् = अपनी पुत्री पार्वती को, ग्राहयितुम् = स्वीकार कराने के लिये, न शशाक = समर्थ नहीं हुये। साधु: = सज्जन पुरुष, अभ्यर्थनाभङ्गभयेन = प्रार्थना के विफल हो जाने के भय से, इष्टे अपि अर्थे = अभीष्ट पदार्थ के विषय में भी, माध्यस्थ्यम् = तटस्थता या उदासीनता को, अवलम्बते = ग्रहण करता है।

अनुवाद—हिमालय, न मांगने वाले देवाधिदेव महादेव को, अपनी पुत्री पार्वती को स्वीकार कराने के लिये समर्थ न हो सके, क्योंकि सज्जन प्रार्थना के विफल होने के भय से अभीष्ट वस्तु के विषय में भी उदासीनता ही ग्रहण करता है।

भावार्थ—यद्यपि हिमालय नारद जी के कथनानुसार, अपनी पुत्री पार्वती को भगवान् शिव को पत्नी रूप में देना चाहते थे किन्तु शिव ने पार्वती को उनसे मांगा नहीं था, अत: वे विना मांगे, पार्वती को उन्हें न दे सके थे। सज्जनों का यह स्वभाव होता है कि वे अपनी प्रार्थना के असफल होने के डर से अपने चाहे हुए पदार्थ के विषय में भी तटस्थ ही रहते हैं, उसे प्राप्त करने का स्वयं प्रयास नहीं करते, जब तक कि कोई स्वयं उनसे याचना न करे।

अलंकार—प्रस्तुत पद्य में **अर्थान्तरन्यास** अलंकार है क्योंकि यहाँ उत्तरार्द्धगत सामान्यार्थ से पूर्वार्द्धगत विशेषार्थ का समर्थन किया गया है।

उपजाति नामक छन्द है,

समासादि—न याचिता अयाचिता तम्—अयाचितारम्, देवानां देव: देवदेवस्तम्—देव देवम्। अभ्यर्थनाया: भङ्ग:अभ्यर्थनाभङ्ग: तस्मात् भयम् तेन—अभ्यर्थनाभङ्गभयेन।

संस्कृत व्याख्या—अद्रि: = पर्वत: हिमालय इत्यर्थ:, अयाचितारम् = अयाचमानम्, देव देवम् = देवाधिपतिम् महादेवम्, सुताम् = स्वपुत्रीं पार्वतीं ग्राहयितुम् = स्वीकारयितुम्, न शशाक = न समर्थोऽभूत्। साधु: = सत्पुरुष: अभ्यर्थनाभङ्ग भयेन = स्वकीय प्रार्थनावैफल्यभीत्या याचना निराकृतिभयेन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

या वा, इष्टे अपि अर्थे = अभीप्सितेऽपि प्रयोजनविषये, माध्यस्थ्यम् = औदासीन्यम्, अवलम्बते = स्वीकुरुते ।

संस्कृत सरलार्थ—नारदसमादेशात् स्वपुत्रीं पार्वतीं भगवते शिवाय दातुकामोऽपि हिमवान् अयाचमानाय तस्मै देवाधिदेवाय शिवाय तां दातुं नोत्सेहे । यतो हि मानिनः सत्पुरुषाः स्वाभीप्सितेऽपि प्रयोजन विषये स्वकीयप्रार्थना प्रत्याख्यानभीत्या औदासीन्यं भजन्ते नहि तदर्थं प्रयतन्ते ।

टिप्पणी—अयाचितारम्—याचते इति याचिता-याच् धातोस्तृच् आर्धधातुकत्वादिडागमः । **देवदेवम्**—दीव्ययतीति देवः दिव् धातोरच् प्रत्यय, देवानां देवः तम् देवदेवम् अर्थात् महादेव को । **ग्राहयितुम्**—णिजन्तात् ग्रह्धातो तुमुन् = स्वीकार कराने के लिए, **शशाक**—शक् धातो लिट् । हिमालय चाहते हुये भी अपनी पुत्री पार्वती को विना माँगे शिवजी को न दे सके, क्योंकि कहा गया है कि दानी भी पुरुष को इन तीन पदार्थों को विना मांगे किसी को न देना चाहिये :—

> अयाचितानि देयानि सर्वद्रव्याणि भारत ।
> अन्नं विद्या तथा कन्या अनर्थिभ्यो न दीयते ।

साधुः साध्नोति परकार्यमिति साधुः-साध् धातोः उण् प्रत्ययः । **अभ्यर्थना**—याचना या प्रार्थना । **भङ्ग** = निराकरणा हिमालय को यह डर था कि कहीं शिव उनकी प्रार्थना को ठुकरा न दें, यदि ऐसा हुआ तो इससे उनका बड़ा अपमान होगा अतः उन्होंने इस विषय में उदासीन रहना ही उचित समझा । **माध्यस्थ्यम्**—मध्ये तिष्ठतीति मध्यस्थः तस्य भावः माध्यस्थ्यम् तत्-ष्यञ् प्रत्यये वृद्धिः ।

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात्‌ सुदती ससर्ज ।
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्‌ ॥५३॥

प्रसंग—यहाँ तक पार्वती का चरित्र वर्णन कर कवि प्रस्तुत श्लोक से शिव के चरित वर्णन को आरम्भ करता है ।

अन्वय—सुदती सा पूर्वे जनने यदा दक्षरोषात् शरीरम् ससर्ज तदा प्रभृति एव पशूनाम् पतिः विमुक्त सङ्गः सन् अपरिग्रहः अभूत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

शब्दार्थ—सुदती = सुन्दर दाँतों वाली, सा उस पार्वती ने, पूर्वे जनने = पूर्व जन्म में, (किन्हीं पुस्तकों में "पूर्वज्वलने" भी पाठ है वहाँ इसका अर्थ पूर्व जन्म में ज्वलने अर्थात् अग्नि में) यदा = जव, दक्षरोषात् = दक्ष प्रजापति के प्रति क्रोध से, शरीरम् ससर्ज = शरीर को त्याग दिया था। तदा प्रभृत्येव = उसी समय से ही लेकर, पशूनाम् पतिः = पशुपति शिव, विमुक्तसङ्गः सन् = लोक विषयासक्ति को त्यागे हुए होकर, अपरिग्रहः अभूत् = पत्नी रहित हो गये थे।

अनुवाद—सुन्दर दाँतों वाली पार्वती ने पूर्वजन्म में जव दक्ष प्रजापति के प्रति क्रोध से (अपने) शरीर का त्याग कर दिया था तव से ही लेकर भगवान् पशुपति शिव लोक विषयासक्ति को त्यागकर पत्नी विहीन हो गये थे।

भावार्थ—भगवान् शिव के अपमान को न सहन कर पूर्वजन्म में जब भगवती सती ने अपने पिता दक्ष के प्रति क्रोधवश अपने शरीर को त्याग दिया था, उसी समय से लेकर भगवान् शिव ने सभी लौकिक विषयों का परित्याग कर दिया था और पुनः विवाह न कर पत्नी विहीन ही रहते थे।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिङ्ग अलंकार है, क्योंकि यहाँ सती के शरीर त्याग का कारण तथा शिव के अपरिग्रह होने का कारण वतलाया गया है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—शोभना दन्ताः यस्याः सा सुदती। दक्षे रोषस्तस्मात्—दक्षरोषात्। विमुक्तः सङ्गः येन सः—विमुक्तसङ्गः। अविद्यमानः परिग्रहः यस्य सः—अपरिग्रहः।

संस्कृत व्याख्या—सुदती = सुदशना, सा = पार्वती, पूर्वे जनने = पूर्वस्मिन् जन्मनि, यदा = यस्मिन् काले, दक्षरोषात् = दक्षाख्यं स्वपितरं प्रति क्रोधात् शरीरम् = स्वदेहम्, ससर्ज = त्यक्तवती। तदा प्रभृत्येव = तदारभ्यैव, पशूनां पतिः = पशुपतिः शिवः, विमुक्तसङ्गः = परित्यक्तलोक विषयासङ्गः अपरिग्रहः अभूत् = अपत्नीकः अभवत्।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत सरलार्थ—सुन्दरदशना पार्वती, स्वपूर्वजन्मनि यस्मिन् काले स्वपति शिवापमानिनं स्वपितरं दक्षं प्रति क्रोधवशाद् योगाग्नौ स्वदेहं परितत्याज, तत आरभ्यैव भगवान् पशुपतिः शिवः लोकविषयव्यावृत्तात्मा सन् नान्यां स्त्रियं पत्नीत्वेन स्वीकृतवान् एवं स ततः अपत्नीक एवातिष्ठत् ।

टिप्पणी—सुदती—शोभना दन्ताः यस्याः सा सुदती, अत्र "वयसि दन्तस्य दतृ" इति दत्रादेशः 'उगितश्चेति ङीप्, सुदती—सुन्दर दाँतों वाली; दन्त को दतृ आदेश, आयु का संकेत होने पर ही होता है अन्यथा नहीं, पर प्रस्तुत प्रयोग में यद्यपि आयु का संकेत नहीं है तथापि शोभना दन्ता अस्याः समस्ताः जाताः न तु न्यूनाः इस प्रकार अर्थ करने पर वयः संकेत प्राप्त हो जाता है अतः यह प्रयोग व्याकरण सम्मत ही माना जायेगा। **पूर्वजन्मनि**—सप्तमी एक वचन में पूर्व शब्द से परे ङि. को स्मिन् आदेश विकल्पतः होता है "पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा" अतः पूर्वे प्रयोग भी ठीक है। **पशूनाम् पतिः**—यद्यपि "शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः" इस कोश वचन के अनुसार पशुपति शब्द शिव का पर्याय ही है तथापि प्रस्तुत प्रसंग में इसी शब्द का उसके व्यस्त रूप में प्रयोग करने से कवि का क्या विशेष अभिप्राय है, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता, सम्भवतः विमुक्तसङ्ग और अपरिग्रह शिव को दृष्टिगत रखकर ही कवि ने यहा इस शब्द का प्रयोग किया है, पशुओं में कौटुम्बिक भावना का प्रायः अभाव सा ही रहता है और वे लोक विषयासङ्ग से भी वितृष्ण रहकर किसी भी स्थान पर बने रहते हैं, अथवा प्रागैतिहासिक किसी योगी की मूर्ति को जो कि पशुओं से घिरी हुई दिखाई गयी है, ध्यान में रख कर ऐसा प्रयोग किया गया है। **विमुक्तेति**—विशेषण मुक्तः विमुक्तः वि+मुच्+क्त। **परिग्रहः**—परिग्रह शब्द का प्रयोग पत्नी के अर्थ में होता है।

यद्यपि यहाँ शिव का विमुक्तसङ्ग होकर अपरिग्रह होना उनके शान्त रस की ओर संकेत करता है और यह शान्त रस पूर्व प्रवृत्त श्रृंगार रस का विरोधी तथापि देवी के शरीर त्याग से सूचित करुण रस के बीच में आ जाने से यहाँ रस विरोध नहीं रह जाता है।

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षित देवदारु।
प्रस्थं हिमाद्रे मृगनाभिगन्धि किञ्चित् क्वणत्किन्नर मध्युवास ॥५४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रसंग—विमुक्त सङ्ग शिव की प्रवृत्ति का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में कि गया है।

अन्वय—कृत्तिवासाः यतात्मा सः तपसे गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदा मृगनाभिगन्धि, क्वणत्किन्नरम् किञ्चित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास।

शब्दार्थ—कृत्तिवासाः=गज चर्म वस्त्रधारी, गजासुर के चर्म को अ शरीर पर वस्त्र रूप में धारण करने वाले, यतात्मा=यत अर्थात् संयत इन्द्रि वाला अर्थात् जितेन्द्रिय, सः=वह शिव, तपसे=तपस्या के लिये, गङ्ग प्रवाहोक्षितदेवदारु=गंगा के प्रवाह से जहाँ देवदारुओं का सिञ्चन हो था (उक्षित=सिञ्चित) मृगनाभिगन्धि=कस्तूरी की गन्ध वाले अर्था जहाँ पर मृगनाभि अर्थात् कस्तूरी की सुगन्धि फैली रहती थी, क्वण किन्नरम्=जहाँ पर किन्नर गाया करते थे ऐसे, किञ्चित्=किसी, हिमा =हिमालय के, प्रस्थम्=शिखर पर, अध्युवास=निवास करने लगे।

अनुवाद—गज चर्म वस्त्रधारी जितेन्द्रिय वह भगवान् शिव तप के लि हिमालय के किसी ऐसे शिखर पर रहने लगे जहाँ गंगा के प्रवाह से देवदा वृक्षों को सींचा जाता था, और जहाँ कस्तूरा की सुगन्धि व्याप्त रहती तथा जहाँ किन्नर गाया करते थे।

भावार्थ—विमुक्तसङ्ग तथा अपरिग्रह होकर भगवान् शिव तपस्या के लि हिमालय के किसी एक ऐसे शिखर पर निवास करने लगे, जहाँ पर हुए देवदारु के वृक्ष गंगा के प्रवाह से सदा सिञ्चित रहते थे और वहाँ शिलायें कस्तूरी मृगों के बैठने से कस्तूरी की सुगन्धि से सुरभित रहती और जहाँ किन्नर (एक देवयोनि) गाया करते थे।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने परिकर अलंकार है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—कृत्तिः वासः यस्य सः कृत्तिवासाः। यतः आत्मा यस्य यतात्मा, गङ्गायाः प्रवाहः गङ्गाप्रवाहः तेन उक्षिताः देवदारवः यस्मि तत्, तत्—गङ्गाप्रवाहोक्षित देवदारु, मृगनामेः गन्धः मृगनाभिगन्धः सोऽस्मि अस्य तत् मृगनाभिगन्धि, क्वणन्तः किन्नराः यस्मिन् तत्—क्वणत्किन्नर हिमस्य अद्रिः तस्य-हिमाद्रेः।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत व्याख्या—कृत्तवासाः = गजाजिनाम्बरधरः, यतात्मा = जितेन्द्रियः, सः = शिवः, तपसे = तपश्चरणाय, गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु = भागीरथी-प्रवाहसिक्त देवदारु, मृगनाभिगन्धि = कस्तूरीगन्धवत्, क्वणत् किन्नरम् = गायत्किम्पुरुषम्, किञ्चित् = किमपि, हिमाद्रेः = हिमालयस्य, प्रस्थम् = शिखरम्, अध्युवास = अधिष्ठितवान् ।

संस्कृत सरलार्थ—गजाजिनाम्बरधरः जितेन्द्रियः शिवः तपश्चरणाय हिमालयस्य तादृशं किमपि शिखरस्थान मधिष्ठितवान् यत् भागीरथ्याः प्रवाहेण सिक्त देवदारु कस्तूरी गन्धवत् तथा च गायत्किम्पुरुषमासीत् ।

टिप्पणी—**कृत्तिवासाः**—कृत्ति = गजचर्म, कहा जाता है कि भगवान् शिव ने गजासुर का वध कर उसी की प्रार्थनानुसार उसके रक्त-रञ्जित चर्म को ओढ़ लिया था, कालान्तर में यह शब्द शिव का पर्याय बन गया, वासस् शब्द सकारान्त नपुंसक लिङ्ग है "वस्त्रमाच्छादनं वासश्चेलं वसन मंशुकम्, बहुव्रीहि समासोत्तर कृत्तिवासस् शब्द से "सान्तमहतः" सूत्र से दीर्घ होकर कृत्तिवासाः प्रथमैक वचन का रूप होगा । वस्यतेऽनेनेति वासः वस् आच्छादने धातु से औणादिक असुन् प्रत्यय । **गङ्गेति**—गङ्गा प्रवाहेण उक्षिताः, उक्ष सेचने धातु से क्त प्रत्यय तथा इडागम होकर उक्षित बनता है । इस पद-प्रयोग से उस स्थान की पवित्रता एवं जलाधिकता तथा छायासौख्य को सूचित किया गया है, **मृगनाभिगन्धि**—कस्तूरी, कस्तूरी मृगों की नाभि से प्राप्त होती है, कालान्तर में मृगनाभि शब्द ही कस्तूरी के अर्थ में रूढ़ हो गया है "मृगनाभि मृगमदः कस्तूरी" ये शब्द पर्याय हैं । गन्धः अस्त्यस्य इस अर्थ में गन्ध शब्द से 'अतइनिठनौ' से इनि प्रत्यय होकर नपुंसक लिङ्ग में गन्धि बनेगा **क्वणत् किन्नरम्**—कुत्सिता नराः किन्नराः, यह एक देवयोनि है, यह भी गन्धर्वों की तरह ही गाने वाले होते हैं, किन्तु इनके मुख अश्व जैसे होते हैं, शरीर मानवों जैसा, अतएव इन्हें कुत्सित नर कहा गया है । क्वणन्तीति क्वणन्तः क्वण् शब्दे से तृच् प्रत्यय । इन दोनों विशेषणों के प्रयोग से कवि ने उक्त स्थान की रमणीयता की सूचना दी है । **अध्युवास**—अधि + वस् लिट्, अधि के योग में प्रस्थम् में द्वितीया विभक्ति है ।

गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवती र्दधानाः ।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ।।५५।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में प्रमथादि शिव गणों का तपोव्रती शिव की सेवा में रहने का वर्णन है।

अन्वय—गणाः नमेरुप्रसवावतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वचः दधानाः मनः शिलाविच्छुरिताः (सन्तः) शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः।

शब्दार्थ—गणाः शिव के प्रमथादि गण, नमेरु प्रसवावतंसाः=सुरपुन्नाग के पुष्पों का शिरोभूषण धारण करने वाले, स्पर्शवतीः=सुखस्पर्श वाली अर्थात् कोमल, भूर्जत्वचः=भोजपत्र के वल्कलों को, दधानाः=धारण किये हुए, मनःशिलाविच्छुरिताः=मनःशिला=मैनशिल एक धातु विशेष से अनुलिप्त अर्थात् रंगे हुए (सन्तः=होकर) शैलेयनद्धेषु=शैलेय=शिलाजीत से व्याप्त अर्थात् भरे हुए, शिलातलेषु=शिलातलों पर, निषेदुः=बैठे हुये थे।

अनुवाद—शिव के प्रमथ आदि गण, सुरपुन्नाग के पुष्पों का शिरोभूषण धारण करने वाले, (तथा) सुखस्पर्श वाले कोमल भोजपत्र के वल्कलों को धारण किये हुये एवं मैनशिल नामक धातु से रंगे हुए होकर (उस स्थान पर) शिलाजीत से व्याप्त शिलातलों पर बैठे हुए थे।

भावार्थ—हिमालय के जिस शिखर पर भगवान् शिव तपश्चरण में प्रवृत्त थे, वहीं पर शिलाजीत नामक सुगन्धित धातु से भरे हुए शिलातलों पर शिवजी के प्रमथ आदि सेवक गण बैठे हुए थे, ये शिव गण सुरपुन्नाग पुष्पों के शिरोभूषण धारण किये हुये थे तथा भोजपत्रों के कोमल वल्कलों को पहने हुए थे, और इन्होंने अपने शरीर को मैलशिला या मनोगुप्ता नामक एक धातु से रंग रखा था।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में **स्वभवोक्ति** नामक अलंकार है क्योंकि यहाँ उक्त पदार्थों का स्वप्रकृति क्रिया रूप यथार्थ वर्णन है।

उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—नमेरुणां प्रसवाः नमेरुप्रसवाः ते अवतंसाः येषान्ते नमेरुप्रसवावतंसाः। प्रशस्तः स्पर्शः अस्त्यासां ताः स्पर्शवत्यः ताः—स्पर्शवतीः, भूर्जानाम् त्वचः ताः—भूर्जत्वचः। मनश्शिलाभिः विच्छुरिताः मनःशिला विच्छुरिताः। शैलेयेन नद्धानि तेषु—शैलेय नद्धेषु। शिलानां तलं तेषु—शिलातलेषु।

संस्कृत व्याख्या—गणाः=प्रमथादयः शिवगणाः, नमेरुप्रसवावतंसाः=सुरपुन्नागाख्यपुष्पशिरोभूषणाः। स्पर्शवतीः=सुखस्पर्शाः कोमला इत्यर्थः, भूर्जत्वचः

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

=भूर्जवल्कलानि, दधानाः=धारयन्तः, वसाना वेत्यर्थः, मनःशिला-विच्छुरिताः=मनश्शिलेति धातु विशेषानुलिप्तदेहाः (सन्तः) शैलेयनद्धेषु—शिलाजतुव्याप्तेषु, शिलातलेषु—प्रस्तरखण्डेषु, निषेदुः उपविविशुः।

संस्कृत सरलार्थ—हिमवतो यस्मिन् शिखरे भगवान् शिवस्तपश्चरणप्रवृत्त आसीत् तत्रैव शिलाजतुव्याप्तेषु प्रस्तरखण्डेषु प्रमथादयः शिवगणास्तत्सेवार्थमुपविविशुः, गणाश्चेमे सुरपुन्नागपुष्पशिरोभूषणधराः कोमलभूर्जवल्कलानि परिदधानाः मनःशिलाधात्वनुरञ्जितदेहाश्चासन्।

टिप्पणी—गणाः—प्रमथादि शिवगण बहुत बड़ी संख्या में शिव की सेवा के लिए सदैव उनके साथ रहते हैं। "षट् त्रिशत्कोट्यश्चैते हरस्य सकला गणाः" इस कथन के अनुसार इन गणों की ३६ श्रेणियाँ हैं, कहीं पर कोटि का अर्थ करोड़ मानकर इनकी संख्या ३६ करोड़ बतलाई गयी है। इस समय सेवा में तत्पर ये गण नमेरु के पुष्पों के शिरोभूषण धारण किये हुये थे "नमेरुः सुरपुन्नागः" नमेरु का दूसरा नाम सुरपुन्नाग है। अवतंस का अर्थ सामान्यतः भूषण होता है पर प्रायः इसका प्रयोग शिरोभूषण के अर्थ में मिलता है। प्रसव=पुष्प। **स्पर्शवतीः**—यहाँ स्पर्श शब्द से प्रशंसार्थ में मतुप् प्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर स्पर्शवती बना है अर्थात् स्पर्श करने योग्य कोमल। **भूर्जत्वचः** भोज पत्रों के वल्कल वस्त्र पहने हुये थे। **मनःशिलाविच्छुरिताः**—"मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्वका, मनः शिला या मैनशिल एक पर्वतीय धातु होता है, इसे वे गण अपने शरीर पर पोते हुए थे, विच्छुरित का अर्थ अनुरञ्जित या अनुलिप्त। **शैलेयनद्धेषु**—शिलायां भवं शैलेयम् एक सुगन्धित औषधि, शिला शब्द से भवार्थ में ढक् और ढ को एय् आदेश होकर शैलेय शब्द बनता है' 'शिलाजतु च शैलेयम्" अर्थात् शैलेय का अर्थ शिलाजतु या शिलाजीत है, यह पर्वतीय शिलाओं से उत्पन्न सुगन्धित द्रव्य होता है, कुत्रचित् औषधियों में भी इसका प्रयोग किया जाता है, इसका रंग काला होता है। नद्ध अर्थात् व्याप्त। **निषेदुः**=नि+सद्—लिट्।

तुषारसङ्घातशिलाः खुराग्रैःसमुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान्।
दृष्टः कथञ्चिद् गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद ॥५६॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में शिववाहन नन्दी का वर्णन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्वय—तुषारसङ्घातशिला: खुराग्रैः समुल्लिखन्, दर्पकल: विविग्नै: गवयै: कथञ्चिद् दृष्टः, ककुद्मान् असोढ सिंहध्वनि: सन् उन्ननाद ।

शब्दार्थ—तुषारसङ्घातशिला: = बर्फ की जमी हुई कठोर चट्टानों को, खुराग्रैः = खुरों के अग्र भागों से, सुमुल्लिखन् = खण्डित करता हुआ, दर्पकल: = मद से मधुर ध्वनि वाला, विविग्नै: = भयभीत हुए, गवयै: = गो सदृश वन्य पशुओं द्वारा, कथञ्चिद् दृष्टः = किसी भी प्रकार देखा गया, ककुद्मान् = नन्दी वृषभ, असोढसिंहध्वनि: सन् = सिंहनाद को न सहन करने वाला (होकर) उन्ननाद = गर्जता था ।

अनुवाद—बर्फ की जमी हुई कठोर चट्टानों को अपने खुरों के अग्रभाग से विदीर्ण करता हुआ, मद से मधुर ध्वनि वाला, भयभीत हुये गो सदृश वन्य पशुओं द्वारा किसी भी प्रकार देखा गया (शिव वाहन नन्दी नामक) वृषभ सिंहनाद को न सहन करने वाला होकर गर्जता था ।

भावार्थ—जहाँ शिव तपश्चरण में प्रवृत्त थे, वही उनका वाहन नन्दी वृषभ अपने खुरों के अग्रभाग से बर्फ की जमी हुई कठोर चट्टानों को तोड़ रहा था, वह मद से हुंकार भरता था और भयभीत हुये गवय कभी- भी उसे देख लेते थे । जब वन में सिंह दहाड़ता था तब वह उसकी गर्जना को न सहता हुआ स्वयं गर्जने लगता था । बलवानों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरों की क्रोध भरी बात नहीं सुन सकते ।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति, अलंकार है क्योंकि यहाँ वृषभ के स्वभाव रुप एवं क्रियाओं का वर्णन है "स्वभावोति, दुंरुहार्थस्व क्रिया रूप वर्णनम्" ।

उपजाति छन्द है ।

समासादि—तुषाराणाम् सङ्घाता: तुषारसङ्घाता: तुषारसङ्घाता एव शिला: ता:-तुषारसङ्घात-शिला: । खुराणाम् अग्राणि तै:-खुराग्रैः, दर्पेण कल: = दर्पकल:, न सोढ: असोढ: सिंहानां ध्वनि: सिंहध्वनि: असोढ: सिंहध्वनि यैन स: असोढसिंहध्वनि: ।

संस्कृत व्याख्या—तुषारसङ्घातशिला: = हिमघनप्रस्तरान्, खुराग्रैः = शफा-ग्रभागैः, समुल्लिखन् = विदारयन् खण्डयन् वा, दर्पकल: = मदमधुरध्वनि:

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विविग्नैः = भयभीतैः, गवयैः = गोसदृश वन्य पशुभिः, कथञ्चित् = कृच्छ्रेण, दृष्टः = अवलोकितः, ककुद्मान् = ककुद्युक्तः वृषभः = असोढसिंहध्वनिः = अक्षान्त-मृगराजगर्जितः सन्, उन्ननाद = उच्चैर्नाद मकरोत् जगजेत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ—यत्र शिस्तपश्चरण प्रवृत्त आसीत्तत्रैव तस्य वाहनभूतो मदमधुरध्वनिः वृषभः तद्दे शोद्भवं भीषणं सिंहध्वान मसहमानः तत एव स्व-कीयैः खुराग्रैः कठोरहिमघनप्रस्तरान्यै खण्डयन् भयचकितै र्गयै र्विलोक्यमानः उच्चै र्जगर्ज ।

टिप्पणी—तुषारसङ्घातशिलाः—हिमालय की ऊँची चोटियों पर बर्फ जमकर ऐसी कठोर चट्टानों के रूप में हो जाता है, कि वह शिलाखण्ड जैसा दुर्भेध बन जाता है, सूर्य ताप भी इन्हें पिघला नहीं पाता और ये उत्तरोत्तर कठोर एवं मोटी होती जाती हैं, सिंहध्वनि को न सहकर शिव वृषभ नान्दी इन्हीं चट्टानों को अपने खुरों से तोड़ रहा था । बलवान जीव दूसरे की गर्जना को सहन नहीं कर सकते अतएव वृषभ सिंहध्वनि को न सह कर पैरों को शिलाओं पर पटकता हुआ गरज रहा था । इससे अन्य वन्य पशु भी भयभीत हो गये थे । **खुराग्रैः** खुर का पर्याय शफ है, "शफं क्लीवे खुरः पुमान्" **समुल्लिखन्**-सम् + उत् + लिख् + शतृ — नुम् समुल्लिखतीति समुल्लिखन् । **दर्पकलः** मद से मधुर-ध्वनि वाला "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः" । **ककुद्मान्**—बैल के कन्धों के पास जो गोलाकार मांसपिण्ड होता है उसे ककुद् कहा जाता है, ककुद मस्ति अस्य सः ककुद्मान् "प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्" । **असोढेति** षहमर्षणे घातोः क्त प्रत्यये 'सहवहोरोदवर्णस्य' इति ओत्वम् । हिनस्तीति सिंहः हिसि धातोः पचाद्य च पृषोदरादित्वात् वर्ण विपर्ययः **उन्ननाद** उत् + णद् धातोः लिट् ।

तत्राग्नि माधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः ।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चकार ॥५७॥

प्रसंग—इसमें भगवान् शिव के तप का वर्णन है ।

अन्वय—तपसः फलानाम् स्वयं विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वम् एव मूर्त्यन्त-रम् समित्समिद्धम् अग्निम् आधाय केन अपि कामेन तपः चकार ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

शब्दार्थ—तपसः = तप के, फलानाम् = फलों के, स्वयं विधाता = स्वयं देने वाले, अष्टमूर्तिः = अष्टमूर्तियाँ वाले शिव की आठ मूर्तियाँ या उनके आठ स्वरूप हैं "सूर्योजलं मही वह्नि र्वायुराकाशमेव च, दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः" अर्थात सूर्य, जल, पृथ्वी अग्नि वायु आकाश यज्ञकर्ता तथा चन्द्रमा, ये शिव के अष्ट स्वरूप या उनकी अष्ट मूर्तियाँ हैं अतएव उन्हें अष्टमूर्ति कहा जाता है। तत्र = वहाँ उस शिखर पर, स्वम् एव मूर्त्यन्तरम् = अपने ही स्वरूप भेद रूप, समित्समिद्धम् = समिधाओं से प्रज्जवलित, अग्निम् = अग्नि को, आधाय = स्थापित करके, केनापि का . : = किसी अज्ञात फल की इच्छा से, तपः चकार = तप करने लगे।

अनुवाद—तप के फलों के स्वयं देने वाले अष्टमूर्ति शिव वहाँ उस शिखर पर, अपने ही स्वरूप भेद रूपी, समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि को स्थापित कर किसी अज्ञात इच्छा से तप करने लगे।

भावार्थ—सूर्यचन्द्राग्नि आदि भगवान् शिव की अष्टमूर्तियाँ हैं अतएव उन्हें अष्टमूर्ति कहा जाता है इन अष्टमूर्ति भगवान् शिव ने वहाँ समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि को स्थापित किया, यह अग्नि शिव का दूसरा रूप ही था कोई अन्य नहीं। भगवान् शिव स्वयं तप के फलों के दाता हैं। फिर भी वे इस समय अग्नि संस्थापित कर तप कर रहे थे, कवि कहता है कि इस तप से वे किस फल की आकांक्षा कर रहे थे यह नहीं कहा जा सकता, वह फल सर्वथा अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय है।

अलंकार—अनुप्रास·उपजाति छन्द है।

समासादि—अष्टौ मूर्त्तयः यस्य सः—अष्टमूर्तिः। अन्यामूर्तिः—मूर्त्यन्तरम् तत्—मूर्त्यन्तरम्। समिद्भिः समिद्धः, तम्—समित्समिद्धम्।

संस्कृत व्याख्या—तपसः = तपस्यायाः, फलानाम् = स्वर्गापवर्गादिफलानाम्, स्वयम् = आत्मना, विधाता = जनयिता दातेत्यर्थः। अष्टमूर्तिः, अष्टदेहः परमेश्वर इत्यर्थः, तत्र = तस्मिन् शिखरे, स्वम् एव = आत्मीयम् एव, मूर्त्यन्तरम् = मूर्तिभेदम्, समित्समिद्धम् = कष्ठप्रदीप्तम्, अग्निम् = पावकम् आधाय = प्रतिष्ठाप्य, केनापि कामेन = केनापि अदृष्टाज्ञातप्रयोजनेन, तपः = तपस्याम्, चकार = चक्रे।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत सरलार्थ—तपः फलत्वेन विख्यातानाम लौकिकानां स्वर्गैश्वर्यापवर्गादीनां लौकिकानाञ्च पुत्रकलत्राद्यैश्वर्यं विशेषाणाञ्च फलाना मात्मनैव प्रदाता भूत्वापि अष्टमूर्तिर्भगवान् शिवःस्वकीयमेव मूर्तिभेदं समिभिद्ः प्रदीप्तं पावकं हिमवत्प्रस्थे प्रतिष्ठाप्य कयाप्यनिर्वचनीयया फलकामनया तपश्चक्रे ।

टिप्पणी—अष्टमूर्ति—भगवान् शिव के अष्ट स्वरूप है जिन्हें ऊपर बताया जा चुका है, इनमें अग्नि भी एक है। कवि ने अभिज्ञान शाकुन्तल एवं मालविकाग्निमित्रम् नामक नाटकों में भी अष्टमूर्ति शिव की स्तुति की है। यद्यपि इन अष्टमूर्तियों की गणना पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है तथापि इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है सूर्य चन्द्राग्नि आदि सभी में परिगणित है। **मूर्त्यन्तरम्**—अन्यामूर्त्तिः मूर्त्यन्तरम् 'मयूरव्यंसकादयश्च' से समास हुआ है, अग्नि भगवान् शिव का ही दूसरा स्वरूप है, उनसे भिन्न नहीं। **समित्समिद्धम्**—समिधाओं से प्रदीप्त "यज्ञाग्नि में निम्नलिखित समिधायें (हवन की लकड़ियाँ) ही प्रयुक्त होती हैं जो कि इन पवित्र वृक्षों से उपलब्ध होती है" अर्क पलाश खदिर न्यग्रोध पिप्पल उदुम्बर शमी और दूर्वा तथा कुश। **समिद्धम्** सम्यक् इद्धः समिद्धःतम्, कुगति प्रादयः समास, ञिइन्धी दीप्तौ+क्त। **आधाय**—आ+धा+क्त्वा=ल्यप्। **केनापि कामेन**—सभी प्रकार के तपः फल को देने वाले भगवान् किस फल की इच्छा से तप कर रहे थे, यह सर्वथा अज्ञात एवं अदृष्ट था अतएव कवि ने 'केनापि कामेन' ही लिखा है, पर विना प्रयोजन के कोई भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता। अतः यहाँ भी कुछ प्रयोजन मानना ही पड़ेगा, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के तो सभी कार्य इच्छामात्र से सिद्ध हो जाते हैं तो यहाँ सम्भवतः भगवती के प्रेम की परीक्षा और लोकरक्षणार्थ तारकासुर का वध ही तपश्चरण का फल हो सकता है अथवा भक्तोपदेशानुग्रह ही प्रयोजन हो सकता है।

अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनायास्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम् ॥५८॥

प्रसंग—प्रस्तुत प्रकरण में उपयोगी पार्वती द्वारा शिवाराधना का वर्णन है।

अन्वय—अद्रिनाथः अनर्घ्यम् स्वर्गौकसाम् अर्चितम् तम् अर्घ्येण अर्चयित्वा अस्य आराधनाय सखीसमेताम् प्रयताम् तनूजाम् समादिदेश।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

शब्दार्थ—अद्रिनाथः = पर्वतराज हिमालय ने, अनर्घ्यम् = अमूल्य, स्वर्गौकसाम् अर्चितम् = देवताओं द्वारा पूजित, तम् = उन शिव को, अर्घ्येण = अर्घजल से, अर्चयित्वा = पूजित करके, अस्य = इन शिव की, आराधनाय = आराधना के लिये, सखीसमेताम् = सखियों सहित, प्रयताम् = नियमवती, तनूजाम् = पुत्री को, समादिदेश = आज्ञा दी।

अनुवाद—पर्वतराज हिमालय ने अमूल्य एवं देवताओं द्वारा पूजित उन शिव की अर्घोदक से अर्चना करके, इन शिव की आराधना के लिये सखियों सहित नियमवती अपनी पुत्री पार्वती को आज्ञा दी।

भावार्थ—भगवान् शिव स्वर्गवासी देवताओं द्वारा भी पूजित है और एक अमूल्य तथा अप्रतिम तत्व हैं अतः हिमालय ने अर्घोदक से पहले स्वयं उनकी पूजा की, तदनु उनकी आराधना के लिये सखियों सहित परम नियमवती अपनी पुत्री को भी आज्ञा दी।

अलंकार—अनुप्रास—उपजाति नामक छन्द है।

समासादि—अद्रीणाम् नाथः अद्रिनाथः। न अर्घ्यः अनर्घ्यःतम्-अनर्घ्यम्। स्वर्गः ओकः येषान्ते स्वर्गौकसः तेषाम्—स्वर्गौकसाम्। सखीभ्यां समेता ताम्—सखीसमेताम्।

संस्कृत व्याख्या—अद्रिनाथः = पर्वतराजः हिमालयः, अनर्घ्यम् = अमूल्यम् अनुपमम् वा, स्वर्यौकसाम्—स्वर्गवासिनां देवानाम्, अर्चितम् = पूजितम्, तम् = शिवम्, अर्घ्येण = पूजार्थोदकेन, अर्चयित्वा = पूजयित्वा, अस्य = परमेश्वरस्य शिवस्य, आराधनाय = सेवायै, सखीसमेताम् = वयस्योपेताम्, प्रयताम् = नियमवतीम्, तनूजाम् = पुत्रीं पार्वतीम् समादिदेश = आज्ञापयामास।

संस्कृत सरलार्थ—शिवानुग्रहोपलब्धस्वर्गादिलोका देवा अपि यं सर्वं सर्वकर्त्तारं सर्वं सर्वावभासकं सर्वावलम्बनं शान्तं शिवमर्चयन्ति तं परमेश्वरं स्वस्यैव प्रस्थस्योपरि विद्यमान मुपलभ्य पर्वतराजो हिमालयस्तमप्रतिमम् परमेश्वरं पूजार्थोदकेन पूजयित्वा तदनु तदर्चनाविच्छेदाय श्रद्धाभक्त्यादिगुणान्वितां सखीसमन्वितां स्वपुत्रीं पार्वतीमपि तत्र नियुक्तवान्।

टिप्पणी—अनर्घ्यम्—अर्घं मूल्यम् अर्हतीति अर्घ्यः "मूल्ये पूजाविधावर्घः इत्यमरः" अत्रदण्डादिभ्यो यत्, इति अर्घ शब्दात् यत् प्रत्ययः। न अर्घ्यः अनर्घ्यः

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तम्, अमूल्य अप्रतिम या अनुपमेय। **स्वर्गौकसाम्**—ओकस्=स्थान या निवास स्थान, स्वर्गवासी देवता स्वर्गौकस् कहे जाते हैं। **अर्घ्येण**—किसी महापुरुष के स्वागतार्थ जो सर्वप्रथम किसी पात्र में जलभर कर उसे उसके सामने दिया जाता है उसे अर्घ्य कहते हैं। इसमें निम्नलिखित आठ वस्तुयें होती हैं अतएव इसे अष्टाङ्गअर्घ्य भी कहते हैं। आपः क्षीरं कुशाग्रञ्च दधि सर्पिः सतण्डुलम्। यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टङ्गोऽर्घ्यः प्रकीर्तितः अर्घः पूजा तदर्थं जलम् अर्घ्यम् पादार्घाभ्यां चेति यत्।

सखीसमेताम्—पार्वती की दो प्रधान सखियाँ जया विजया भी उनके साथ गई थीं। **अर्चितम्** अर्च धातु से "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से वर्तमान में क्त प्रत्यय है अतएव क्तस्य च वर्तमाने से स्वर्गौकसाम् में षष्ठी है। **प्रयताम** "पवित्रः प्रयतः पूत इत्यमरः" यहाँ इसका अर्थ है श्रद्धादि गुणों से युक्त होने के कारण परमपवित्र। **तनूजाम्**—तन्वा जाता तनुजा ताम् तनूजाम्।

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने।
विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः॥

प्रसंग—भगवान् शिव ने पार्वती को सेवा के लिये अनुमति देदी, इसी बात का उल्लेख है।

अन्वय—गिरिशः समाधेः प्रत्यर्थिभूताम् अपि शुश्रूषमाणाम् ताम् अनुमेने, विकार हेतौ सति येषाम् चेतांसि न विक्रियन्ते ते एव धीराः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—गिरिशः=शिव ने, समाधेः=तपः समाधि की, प्रत्यर्थिभूताम्=विघ्नभूता=परिपन्थिनी या शत्रुरुपिणी, अपि=भी, शुश्रूषमाणाम्=सेवा करती हुई, ताम्= उस पार्वती को, अनुमेने=स्वीकार कर लिया अर्थात् उसे रोका नहीं। विकार हेतौ सति=मनोविकार का कारण होने पर भी, येषाम्+जिनके, चेतांसि=चित्त, न विक्रियन्ते=विकृत नहीं होते, ते एव=वही, धीराः=धैर्यशाली, भवन्ति=होते हैं।

अनुवाद—भगवान् शंकर ने, तपः समाधि अर्थात् चित्त की एकाग्रता की विघ्नरूपिणी भी सेवा करने की इच्छा रखने वाली उस पार्वती को (सेवा से) रोका नहीं अर्थात् उसे स्वीकार कर लिया। मनोविकार के कारण के होने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते वे ही धैर्यशाली होते हैं, अन्य नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भावार्थ—यद्यपि पार्वती, चित्तैकाग्रता रूप तपःसमाधि में, जिसका कि शिव इस समय अनुष्ठान कर रहे थे, विघ्न स्वरूपिणी होने से शत्रुरूपिणी ही थीं, फिर भी शिव ने, अपनी सेवा की इच्छा रखने वाली उन्हें स्वीकार कर लिया, सेवाकार्य से रोका नहीं। इसी बात की पुष्टि करता हुआ कवि कहता है, कि मनोविकार के कारण के रहते हुये भी जिनके चित्त विकारग्रस्त नहीं होते हैं उन्हें ही वस्तुतः धैर्यशाली समझना चाहिये, विकार के कारण के अभाव में तो सभी धैर्यशाली देखे जाते हैं।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास अलंकार है क्योंकि यहाँ उत्तरार्धगत सामान्यार्थ से पूर्वार्द्धगत विशेषार्थ का समर्थन किया गया है। उपजाति छन्द है।

समासादि—प्रत्यर्थिनी भूता प्रत्यर्थिभूता (सुप्सुपेति समासः) ताम्-प्रत्यर्थिभूताम्। विकारस्य हेतुः तस्मिन्-विकार हेतौ। गिरौ शेते गिरिशः।

संस्कृत व्याख्या—गिरिशः = शिवः, समाधेः = चित्तैकाग्रता रुप-तपः समाधेः-प्रत्यर्थिभूताम् = प्रतिपक्षभूताम् अपि शुश्रूपमाणाम् = सेवमानाम्, ताम् = पार्वतीम्, अनुमेने-अङ्गीकृतवान् न निषेधयामास। विकार हेतौ = मनोविकारकारणे, सति = विद्यमानेऽपि, येषाम् = प्राणिनाम्, चेताँसि = चित्तानि, न विक्रियन्ते = विकृतिं न यान्ति, ते एव = एतादृशा एव जना नान्ये, धीराः = धैर्यशालिनः (भवन्ति)।

संस्कृत सरलार्थ—शिव इति जानन्नपि यत् पार्वती समाधि नियमस्य प्रतिपक्ष भूतास्ति, सेवापरायणां ताम् न निषेधयामास, यतश्चित्तवृत्तिविकृतिप्रधानभूते स्त्रीसन्निधानादिहेतौ विद्यमानेऽपि येषां प्राणिनां चित्तानि न विकारं नीयन्ते त एव नान्ये जना धीराः कथ्यन्ते।

टिप्पणी—गिरिश—गिरिरस्यास्तीति गिरिशः लोमादीत्यादिना शप्रत्ययः। अथवा गिरौ कैलासे शेते इति गिरिशः "गिरौऽश्छन्दसि" इति वार्तिकेन "भाषायामपि क्वचिदिष्यते" इति मतान्तरानुरोधेन ड प्रत्यये टिलोपे गिरिशः "गिरीशो गिरिशो मृडः इत्यमरः। **समाधेः** इसका अर्थ यहाँ योग दर्शन द्वारा निर्दिष्ट संप्रज्ञात या असंप्रज्ञात समाधि नहीं अपितु इसका यहाँ सामान्य अर्थ ध्यान या तपश्चर्या है। **प्रत्यर्थिभूताम्**—प्रतिकूलमर्थयते तच्छीला प्रत्यर्थिनी,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रत्यर्थिनी भूता प्रत्यर्थिभूता ताम्, अत्र सुप्सुपेति समासः। प्र+अर्थ धातोः ताच्छील्ये णिनि स्त्रीत्वे ङीप्, प्रत्यर्थि भूता अर्थात् परिपन्थिनी विघ्नस्वरूपा वा "अभिघाति पराऽराति प्रत्यर्थि परिपन्थिनः इत्यमर"। तपश्चरण में युवती स्त्रियों को विघ्न रूप या शत्रुरूप माना गया है। शुश्रूषमाणाम् श्रोतुमिच्छन्तीति शुश्रूषमाणा, श्रु श्रवणे धातोरिच्छायां सन् प्रत्ययः ततः शानच्। यद्यपि शुश्रुषा का अर्थ श्रवणेच्छा हैं, तथापि यह परिचर्या अर्थ में रुढ हो गया है क्योंकि सेवक सदा अपने स्वामी की आज्ञा पाने के लिये उस पर कान लगाये रहता है अर्थात् उसकी आज्ञा सुनने को कान लगाये बैठा रहता है इसीलिये शुश्रूषा का प्रयोग सेवार्थ में होने लगा है। अनुमेने—अनु पूर्वक मनु अववोधने लिट्। **विक्रियन्ते** वि+कृ कर्मणि लट्। धीराः-धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः" इससे कवि ने भगवान् शिव को धीर बताकर आगे होने वाले काम दहनादि वृत्तान्त की तथा शिव के अरूपहार्यत्वादि की सूचना दी है।

अवचितवलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा,
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिश मुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी,
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥६०॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में पार्वती का सेवा प्रकार बतलाया गया है।

अन्वय—सुकेशी सा अवचितवलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा, नियमविधिजलानाम् बर्हिषाम् च उपनेत्री (सती) तच्छिरश्चन्द्रपादैः नियमितपरिखेदा (सती) प्रत्यहम् गिरिशम् उपचचार।

शब्दार्थ—सुकेशी=सुन्दर केशों वाली, सा=वह पार्वती, अवचितवलिपुष्पा=देवोपहार के लिये पुष्पों को चुनने वाली, वेदिसम्मार्गदक्षा=वेदी की सफाई में निपुण (वेदि=तपोवेदी, सम्मार्ग=सम्मार्जन=सफाई में, दक्ष=निपुण) नियमविधिजलानाम्=नित्य कर्मानुष्ठान के लिये जलों की, बर्हिषाम् च=और कुशों की, उपनेत्री=ले आने वाली (सती=होकर) तच्छिरश्चन्द्रपादैः=उनके अर्थात् शिव के सिर पर विद्यमान चन्द्रमा की किरणों से (पाद=किरण) नियमित परिखेदा=थकावट को दूर करने वाली (नियमित=प्रतिबन्धित या अवरुद्ध किया गया, परिखेद=थकावट) (सती=होकर) प्रत्यहम्=प्रतिदिन, गिरिशम्=शिव की, उपचचार=सेवा करने लगीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अनुवाद—सुन्दर केशों वालीं वह पार्वती, देवोपहार के लिये पुष्पों को चुनने वालीं, तपोवेदी की सफाई में निपुण, नित्यकर्मानुष्ठान के जलों तथा कुशों को लाने वाली (होकर) उनके अर्थात् शिव के सिर पर विराजमान चन्द्रमा की किरणों से थकावट को दूर करने वाली (होकर) प्रतिदिन शिव की सेवा करने लगीं।

भावार्थ—सुकेशी पार्वती प्रतिदिन शिव की सेवा में संलग्न रहने लगीं। वे देवोपहार के लिए पुष्पों को चुनकर लातीं थीं तथा परिष्कृत की हुई तपोभूमि की बड़ी निपुणता से सफाई करती थीं एवं नित्य कर्म के लिये जल तथा कुशों को लातीं थीं। इन कार्यों में संलग्न रहने के कारण जो उन्हें थकावट होती थी वह भगवान् शंकर के सिर पर विराजमान चन्द्रमा की शीतल किरणों से दूर हो जाती थी।

अलंकार—प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त विशेषणों के साभिप्राय होने से यहाँ परिकर अलंकार है। "उक्ति विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः"।

छन्द—प्रस्तुत पद्य में मालिनी नामक छन्द है। इसका लक्षण है "न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः" अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण, के क्रम से पाँच गण एवं १५-वर्ण हों वह मालिनी छन्द कहा जाता है।

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ
अ व चि,	त व लि	पु ष्पा वे,	दि सम्मा,	गंद क्षा ।१५ वर्ण

इसी प्रकार इसके चारों ही चरणों में क्रमशः उक्त ५ गण एवं १५ वर्ण होंगे।

समासादि—बलेः पुष्पाणि बलिपुष्पाणि अवचितानि बलिपुष्पाणि यया सा=अवचितबलिपुष्पा। वेदेः सम्मार्गः तस्मिन् दक्षा वेदिसम्मार्गदक्षा। नियमस्य विधिः नियमविधिः नियमविधेः जलानि तेषाम्—नियमविधिजलानाम्। तस्य शिरः तच्छिरः, चन्द्रस्य पादाः चन्द्रपादाः, तच्छिरसि चन्द्रपादाः तैः—तच्छिरश्चन्द्रपादैः। नियमितः परिखेदः यस्याः सा—नियमितपरिखेदा। शोभनाः केशा यस्याः सा—सुकेशी।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कृत व्याख्या—सुकेशी = शोभनकुन्तला, सा = पार्वती, अवचितबलिपुष्पा = लूनदेवोपहारकुसुमा, वेदिसम्मार्गदक्षा = तपोवेदिकासम्मार्जन निपुणा, नियमविधिजलानाम् = नित्यकर्मानुष्ठान सलिलानाम्, बर्हिषाम् = कुशानाम् च, उपनेत्री = आनेत्री (सती) तच्छिरश्चन्द्रपादैः = गिरिशशिरश्शशिरश्मिभिः, नियमित परिखेदा = निर्वर्तितपरिश्रमा (सती) प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, गिरिशम् = शिवम्, उपचचार = असेवत ।

संस्कृत सरलार्थ—शोभनकुन्तला सा पार्वती, देवोपहारार्थं कुसुमानयनेन, तपोवेदिकायाः सुनिपुणतया सम्मार्जन कार्येण, नित्यकर्मानुष्ठानाय, जलाहरणेन कुशानामानयनेन च शिवशिरःस्थशशिरश्मिभिः निर्वर्तितश्रमा सती प्रतिदिनम् शिवस्य सेवाञ्चक्रे ।

टिप्पणी—सुकेशी अत्र "स्वाङ्गादित्यादिना ङीप् प्रत्ययः, अवचितेत्यादि—बलि जो देवताओं को उपहार स्वरूप भेंट की जाय, सामान्यतः इसका प्रयोग पूजा में अर्थ भी होता है, बलिपुष्प = देवोपहारार्थ पुष्प, अवचित = अव + चिञ् + क्त, चुने गये या तोड़े गये, अवचितानि बलिपुष्पाणि यया सा । जिसने देवोहार के पुष्पों को चुना था । वेदीत्यादि—"वेदिः परिष्कृता भूमिः" तपः साधना के लिए परिष्कृत भूमि वेदि या वेदिका कही जाती है । सम्मार्ग = सम्मार्जन—झाड़ना, धोना, पोंछना आदि, नियमविधिजलानाम्—नियमविधि नित्यकर्म का करना, नित्यकर्मानुष्ठानार्थ जल, उपनेत्री—उपनयतीति उपनेत्री, ले आने वाली, उप + णीञ् प्रायणे धातु से तृच्, स्त्रीत्वे ङीप् । तच्छिरः इति—यहाँ त पद शिव के लिये प्रयुक्त हुआ है । तस्य शिवस्य शिरः तच्छिरः । चन्द्रपादैः—चन्द्ररश्मिभिः पाद का अर्थ यहाँ रश्मि है । प्रत्यहम् अहनि अहनि इति प्रत्यहम् "अव्ययं विभक्तीत्यादिना अव्ययी भावः, नपुंसकादन्यतरस्यामिति समासान्तोऽच् प्रत्ययः ।

तपोवेदिका का सम्मार्जन, देवोपहारार्थ पुष्प चयन, जल कुशसमिधादि लाना यही सब एक तपस्वी के लिये सेवा के कार्य हैं, इन सभी सेवा कार्यों के करते-करते भगवती को जो थकावट होती थी वह भगवान् शंकर के शिरःस्थ चन्द्र की शीतल किरणों से उसी प्रकार शान्त हो जाती थी जैसे कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

एक कूपखनन करने वाले व्यक्ति की थकावट उस कूप से निकलने वाले शीतल जल से शान्त हो जाती है।

"तच्छिरश्चन्द्रपादैः नियमित परिखेदा" से यह ध्वनित होता है कि भगवती पार्वती को शिव का सतत सान्निध्य प्राप्त था।

इति प्रथमः सर्गः

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

ublic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon